फरवरी,
१९५५
नया
समाज
HERBERT COLLEGE
LIBRARY
KOTAH.

संचालक
नया समाज-ट्रस्ट

नया समाज

(स्वतन्त्र विचारोंका सचित्र हिन्दी-मासिक

विषय-सूची : फरवरी, १९५५

विषय	लेखक
मजबूत ईंट (कविता)	श्री बालकृष्ण राव
समाजवादी व्यवस्था (सचित्र)	श्री जवाहरलाल नेहरू
निर्माण कार्य और नाग्रमगन (सचित्र)	श्रीमती सावित्री निगम
पंचवर्षीय योजना और उसकी प्रगति (सचित्र)	श्रीमाया गुप्ता
दौधके पत्थर (कहानी)	श्री भीष्मकुमार
न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
स्वावलम्बी स्त्रियोंकी समस्या	श्रीमती उमा राव, एम० ए०
स्व० बाबूराव विष्णु पराड़कर (सचित्र)	पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी
परात्पर ब्रह्म	श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
अर्नेस्ट हेमिंग्वे	श्री कृष्णशंकर व्यास
शेक्सपीयरके नाटक	श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
नया मकान (कहानी)	श्री का० ना० सुब्रह्मण्यम्
प्रेमचन्दजीका बचपन (सचित्र)	श्री नरोत्तम नागर
गज़ल	श्री शम्भूनाथ 'शेष'
तुलसी रामायणकी रचना	श्री ए० पी० बारान्निकोव
हिन्दी और कलकत्ता	श्री भँवरमल सिंघी
मृत्युका भय	प्रो० लालजीराम शुक्ल
धन, क्षमा करो (कविता)	श्री भगवतीचरण वर्मा
अपना-अपना दृष्टिकोण	
कला, साहित्य और जीवन	
नया साहित्य	
दस दिशा	

र्ष ७ खड २]   कलकत्ता : फरवरी, १९५५   [अक २ पूर्णांक ८०

मज़बूत ईंटें

श्री बालकृष्ण राव

पाँवके नीचे जमा कर ईंट हमने,
देख लो ऊँचा किया आसन तुम्हारा ।
पर न कोई जान पायेगा कि क्या है,
जो विछा नीचे तुम्हे ऊँचा उठाने—
क्योकि हमने एक चमकीली, सुनहरी,
कीमती चादर विलायतसे मँगाकर
डाल दी है ईंट नजरोसे छिपाने !

भेद कोई जान ले लेकिन अगर यह
पूछ बैठे "क्या छिपा है वस्त्रके नीचे बता दो ?"
तो दिखाना गर्वसे चादर उठाकर
और कहना—"ये बडी मजबूत ईंटें है,
हमारे गाँवके अपने पजावमे पकी है !"

पूछनेवाला न हो सतुष्ट, फिर भी
बात कहकर तुम बहुत सतुष्ट होगे ।

समाजवादी व्यवस्था

जवाहरलाल नेहरू

कई लम्बे बरसोंके बाद आज हम फिर तमिलनाडमें जमा हुए हैं। इस बातकी मुझे खास तौरपर खुशी है और मुझे उम्मीद है कि कांग्रेसका अवाडी-अधिवेशन न सिर्फ कांग्रेसके, बल्कि देशके इतिहासमें एक उल्लेखनीय घटना साबित होगी। मुझे उम्मीद है कि इससे देशको एक ऐसी रहनुमाई मिलेगी, जिससे उसकी बिखरी हुई शक्तियाँ एक होंगी और सभी सदाशयी लोगोंको नए हिन्दुस्तानके निर्माणके लिए प्रेरित करेगी।

बहुत जल्द हम दूसरी पंचवर्षीय योजना शुरू करनेवाले हैं और हर आदमी यह महसूस करता है कि यह काम पिछली योजनाके मुकाबलेमें कहीं बड़े और व्यापक पैमानेपर होना चाहिए। अब हम इस कामका ज्यादा तजरुबा हो गया है और हमारे पास आँकड़े भी काफी जमा हो गए हैं। इसलिए अब इस मसलेको हम इस नजरसे देखना है कि हमें हर चीज का उत्पादन बढ़ाना है, जिससे ज्यादा-से-ज्यादा लोगोंको काम दिया जा सके। ये दोनों काम साथ-साथ चलने चाहिएँ। और मुझे पूरा यकीन है कि हम ऐसा कर सकते हैं। मगर ऐसा करनेके लिए हमारे सारे देशको कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। ऐसा तभी हो सकता है जबकि हम सब मिलकर और अनुशासित ढंगसे प्रयत्न करें और अपनी शक्तिको छोटी-छोटी बातोंमें या ऐसे कामोंमें खामखा नष्ट न करें, जिनसे हमारा मकसद या रास्ता धुँधला होता हो।

कांग्रेसकी अहमियत

कांग्रेसने न सिर्फ मुल्कको आजाद ही किया है, बल्कि उसकी एकताको ठोस रूप देने और उसे राजनीतिक, अर्थनीतिक तथा सामाजिक तरक्कीकी तरफ बढ़ानेका भी काम किया है। आज ज्यादातर राजनीतिक काम तो होता है, पर सामाजिक और अर्थनीतिक काम काफी होना है। इन सभी मोर्चोंपर सच्ची तरक्की होनी चाहिए। किसी एक दिशामें तरक्की उस वक्त तक नहीं हो सकती, जब तक कि दूसरी दिशाओंकी तरक्कीकी उपेक्षा की जाय। कांग्रेस हिन्दुस्तानमें एक ऐतिहासिक ताकतके रूपमें रही है। आज

वक्तसे लेकर आज तक मेरा
दीकी सम्बन्ध रहा है। कोई
मैं इसका जनरल सेक्रेटरी बना
मुझे इसका जनरल सेक्रेटरी
इस तरह मैं भी कांग्रेसके साथ
लोगोंके साथ कन्धे-से-कन्धा मि
मुझे मिला है। इस रूपमें क
उसे मैं कभी भी अदा नहीं
मुझे जनताकी सेवा करनेके ऐसे
कम ही लोगोंको नसीब होते
सबधके इन लम्बे वर्षोंपर जब
एक तरहका फख्र और कृतज्ञता
जरिए मेरा यह लम्बा सबध
बहुत ज्यादा स्नेह मुझे मिला है
मैं अपने देशवासियोंके इस स्नेह
चीज नहीं है।

बड़ी-बड़ी स

आखिर हमें कामयाबी मि
जैसा कि हम समझ रहे थे।
और तकलीफ भी लाई और
समस्याएँ आ खड़ी हुईं, जिन
नहीं की थी। पिछले साढ़े स
से जूझते रहे हैं। हमारा
बड़े ही अहम वक्तकी एक क
याबियों या नाकामयाबियोंका
क्योंकि वे सबको मालूम हैं।
चाहूँगा कि इन पिछले साढ़े स
में भारतकी तरक्की काफी
इज्जत बढ़ी है और भारतीय
नींव भी रखी गई है। ऐसे
नहीं हुआ, बल्कि उन बेशुमार
जिन्होंने इसके लिए काम

मुल्कमें काफी बेकारी है—जाहिरा और छिपी हुई दोनों तरहकी। हमारे रहन-सहनका स्तर बहुत नीचा है और मुल्कके सारे बाशिन्दोंको हम जिन्दगी बसर करनेकी जरूरियात भी नहीं मुहय्या कर पा रहे। ताहम जो तरक्की हम कर चुके हैं और जो ताकत हमने हासिल की है, वह भविष्य के लिए हममें काफी आशा जगाता है।

विदेशोंकी अवाछनीय नकल

हमारे मुल्कके कुछ लोगोंको यह एतराज है कि हम बहुत धीरे चल रहे हैं और साफ-साफ यह घोषणा नहीं करना चाहते कि हम जल्द ही कोई इन्कलाबी परिवर्तन लाना चाहते हैं। मगर सचाई यह है कि हमारे मुल्कके राजनीतिक, अर्थनीतिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें बिना लड़ाई संघर्ष या खून-खराबेके इन्कलाबी परिवर्तन हुए हैं। लेकिन कुछ लोग इनकी अहमियतको महसूस ही नहीं कर पा रहे क्योंकि वे बिना खून-खराबेके बड़े-बड़े परिवर्तनोंकी कल्पना ही नहीं कर सकते। और इसलिए वे संघर्ष और हिंसा के रास्ते खोज रहे हैं। यह सच है कि दूसरे देशोंको अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए खूनके दरिया पार करने पड़े हैं, मगर इतना ही यह भी सच है कि उन्हें ऐसा परिस्थितियोंकी मजबूरी या इतिहासकी आकस्मिक घटनाके रूपमें ही करना पड़ा है। इसके लिए उन्हें बहुत महँगा मूल्य चुकाना पड़ा है और इसके नतीजेके रूपमें झगड़ों और कटुताका तो जैसे कोई अन्त ही नहीं है। सौभाग्यसे हिन्दुस्तानमें वैसी परिस्थितियाँ या ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि ही नहीं रही और इसका राजनीतिक विकास दूसरे ही ढंगसे हुआ। इसलिए यह महज बेवकूफी ही है कि हम दूसरे देशोंके उन अवाछनीय पहलुओंको भी अपनायें, जो भले ही कभी अच्छे इरादों या सही मकसदसे सम्बद्ध रहे हों।

सत्य अहिंसा, शान्ति, समाजवाद, और

साधन बनाम साध्य

गांधीजीने हमें जो बुनियादी सबक सिखाया, वह यही था कि साध्य हमेशा साधनोंसे नियन्त्रित है। इसलिए हमें कभी भी सही साध्यके लिए गलत साधन नहीं अपनाने चाहिएँ, भले ही हम इस आदर्शपर पूरी तरह अमल न कर सकें, पर इसके बुनियादी उसूलपर मेरा सच्चा और पक्का विश्वास है। कोरे नैतिक सिद्धान्तके ही रूपमें नहीं, बल्कि आत्म हितके अधिकाधिक व्यावहारिक विवेक की दृष्टिसे भी गांधीजीका मार्ग सही साबित हुआ है। हमने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें, जहाँतक भी संभव था इस उसूलको कायम लाकर देखा है और मेरा खयाल है कि फूट और लड़ाईपर आमादा आजकी विघटित दुनियाके लिए भारतने राहतका-सा असर किया है और इससे दूसरे मुल्कोंमें भारतकी इज्जत बढ़ी है। अपने मुल्की मामलोंमें भी हमने इसी उसूलको अपनाया है। हम यह जानते हैं कि हमारे यहाँ वर्ग विभाजन और संघर्ष हैं और कायमी स्वार्थवाले कोई भी ऐसा परिवर्तन मंजूर करनेको तैयार नहीं जिनसे उन्हें कुछ नुकसान होता हो। कोई भी राजनैतिक या सामाजिक सुधार करनेकी कोशिश करनेके मानी हैं इन परस्पर विरोधी स्वार्थोंके संघर्षमें आना। लेकिन हम इन्हें न तो प्रोत्साहन देते हैं और न इन्हें बढ़ाते ही हैं क्योंकि हमें यह यकीन है कि इनका सबसे बेहतर हल शांतिपूर्ण और दोस्ताना ढंगसे ही मुमकिन है। जहाँ कहीं भी दो स्वार्थोंका संघात हो, वहाँ जनताका हित ही पहले रखा जाना चाहिए। पर जहाँ ऐसा होना चाहिए, वहाँ यह जरूरी नहीं है कि विपक्षी को आघात ही पहुँचाया जाय अथवा उनके खिलाफ घृणा और हिंसाकी भावना फैलाई जाय। आखिरकार घृणा और हिंसासे कभी भी अच्छाई पैदा नहीं हो सकती।

एशियाका नवजागरण

भारत फिर अपना खोया रूप प्राप्त कर रहा है। दूसरे मुल्कोंसे वह बहुत-कुछ सीख रहा है; पर उसकी जड़ें अपनी मिट्टीमें हैं और उसीसे वे पोषण पा रही हैं। हमारा किसी संकीर्ण राष्ट्रीयतावादमें कोई विश्वास नहीं और हम यह समझते हैं कि आजकी दुनियामें उसकी कोई जरूरत भी नहीं। इसलिए हमने हर तरहसे दूसरे देशोंसे दोस्ताना संबंध ही स्थापित करनेकी कोशिश की है। हमने यह भी महसूस किया है कि अगर हिन्दुस्तानको सच्ची तरक्की करनी है, तो उसे दूसरे मुल्कोंकी नकल न कर अपने प्रति ही सच्चा रहना चाहिए। पिछली कुछ शताब्दियोंसे हम इतने अलग और एकान्तमें पड गए हैं कि मानव-विकासकी धारा से एकदम हट-से गए हैं। फिर भी हममें अभी तक एक पुरानी जातिका अनुभव और बुद्धि-बल मौजूद है और हम इस प्रकार नष्ट हुए समयकी कमीको पूरा करनेकी क्षमता भी रखते हैं।

जो स्थिति भारतकी है, कमोबेश वही एशियाके दूसरे मुल्कोंकी भी है। एशियाका नवजागरण हमारे मौजूदा युगकी सबसे उल्लेखनीय घटना है। पहले इसने भले ही राजनीतिक रुख अख्तियार किया हो—जो कि सर्वथा स्वाभाविक ही था—लेकिन अब हम एशियाके हर देशमें एक नई सामाजिक जागृति पाते हैं, मानो समूचा एशिया आज एक नई सामाजिक चेतनासे आलोडित हो रहा है। अभी भी उसके कई देशोंमें राष्ट्रीयताका महत्त्व सर्वोपरि है, किन्तु वह कोई आक्रमणात्मक राष्ट्रीयतावाद नहीं है, बल्कि बाहरी नियन्त्रण और हस्तक्षेपसे मुक्त होकर अपनी आत्माको फिरसे पानेकी प्रबल चेष्टा ही है।

उद्योगीकरणका अभिशाप

कहा जाता है कि आजका संसार सभ्यताके एक सतत संकटकी अवस्थामें है और यह संकट है औद्योगिक क्रान्तिका, उद्योगीकरणका, जिसका अन्तिम परिणाम अणुशक्तिके सामरिक अथवा असामरिक हेतुके रूपमें सामने आया है। कोई भी देश इस संकटसे बच नहीं सकता, भले ही उसमें इसका रूप भिन्न हो; क्योंकि यह हम सबका संकट है। हाँ, पश्चिमके देशोंमें, जहाँ उद्योग धन्धोंका अधिक विकास हुआ है, यह संकट अवश्य ही अधिक गहरा है। अगर

उद्योगोंवाले देशोंके हाथमें
और उससे लाभ उठानेके लिए
के भूखंड नहीं होते, तो ये
हो जाती। इसीलिए वे
समृद्ध बने। लेकिन धीरे-धी
लगे। पश्चिमके देश एक
परिणाम जर्मन-युद्ध और दूसरे
गिक क्रान्ति पूँजीवादी
उससे पैदा होनेवाले भीतरी
रहे हैं। पूर्वमें और अ
बढ रहे हैं और यह समझ ना क
यह कैसे चल सकता है।

इसलिए दूसरी कोई
अलावा, औद्योगिक क्रान्तिकी
में भारी परिवर्तन पैदा कर
ज्यादा हमें अमरीकामें दिखाई
आपको ऐसे परिवर्तन
साम्यवादसे बिलकुल अलग
मशीनकी पूजा करते हैं, भले
अमरीकामें उद्योगीकरण अपनी
इसीलिए वह दुनियाका सबसे
वही ध्येय है और वह तेजी
लेकिन यूरोपके दूसरे देश,
उद्योग क्यों न हों, एक अर्थमें

नैतिक और म

लेकिन इस सारी औद्य
व्यक्तिके जीवनमें भयंकर
अलबत्ता उस समस्याकी
हाइड्रोजन बम है, जो
यह महत्वकी बात है, जिसे
नीतिमें एक बातको हमेशा न
चाहे तो इसे नैतिक पहलू
पहलू कहना पसन्द करूँगा,
समाई हुई है। मनुष्यको
नहीं बन जाना चाहिए, भले
उसमें मानवके गुण होने

चीजके जरिए मनुष्यका खात्मा भी कर सकती है। आप जानते है कि हाइड्रोजन बमके सबधमें आज क्या स्थिति है? अलबत्ता इस बारेमें कुछ कहना कठिन है, लेकिन दुनियाके बहुत प्रसिद्ध वैज्ञानिको, भौतिकशास्त्रियो, और नोबेल-पुरस्कार-विजेताओका मत है कि हाइड्रोजन बमके जो पाँच या छ प्रयोग हुए है, उनसे सारी दुनियाके वातावरणपर बहुत बुरा असर पडा है। अगर पाँच-छ प्रयोग और किए गए तो उनका वातावरणपर इतना बुरा असर पड सकता है कि धीरे-धीरे और हलके-हलके दुनियाके जीवोका नाश हो जाय। हो सकता है कि आदमीको इसके असरसे मरने म ५ या १० साल लगें, लेकिन धीरे-धीरे क्षीण होकर अन्तमें वह मर जायगा। यह तो केवल प्रयोगोका ही परिणाम होगा। लेकिन अगर लडाई हो और १०–२० हाइड्रोजन बम गिराए जायँ, तो उसका नतीजा भयकर होगा। इस विचारके सामने आपके दूसरे सारे विचार—समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, गाँधीवाद—किसी गिनतीमें नही हैं। जब यह खतरा हमारे सामने मुँह बाए खडा हो, तब हम कुछ नही कर सकते—अधिक तो कुछ कर ही नही सकते। हम केवल यही कर सकते है कि अपने देशका निर्माण कर, उसे ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत बनायें और चरित्र तथा अनुशासनकी मजबूत बुनियादपर उसे खडा कर।

समाजवादी व्यवस्थाकी ओर

हमारे मुल्कके बहुत-से लोग पश्चिमम हुई औद्योगिक क्रान्तिकी प्रतिक्रियाको पसन्द नही करते और उन्हें भय यह है कि कही हमारे देशमें भी उसका वैसा ही परिणाम न हो। उद्योगीकरणके वरदान जितने स्पष्ट हैं, उतने ही स्पष्ट उसके अभिशाप भी हैं। तब क्या हम अभिशापोसे बचते हुए उसके वरदानोको हासिल कर सकते है? इस दृष्टिसे हम हिन्दुस्तानका उद्योगीकरण अपने चाहे जिस तरीकेसे ही क्यो न करें, हमारे सामने तेजीसे उसका उद्योगीकरण करनेके सिवा और कोई चारा नही है। अगर उसका कोई विकल्प है, तो यही कि हम पिछडे, अनुन्नत, गरीब और एक कमजोर मुल्क बने रहें। बिना औद्योगिक विकासके हम अपनी आजादी भी कायम नही रख सकते। जब हमारे मुल्ककी आबादी बहुत कम थी, और यन्त्रोका इतना विकास नही हुआ था, तब हमारी कृषि-अर्थनीति ही काफी थी। पर आज तो उससे अधभूखे—बल्कि उससे भी बदतर—रहकर जिन्दगी बसर करनेकी तरह है। इसलिए आज हमारे लिए यह निहायत जरूरी हो गया है कि जल्दी-से-जल्दी उद्योग-धन्धोका विकास करें। इसका मतलब है उन बडे-बडे उद्योग धन्धोका विकास, जिनसे कि हमारे भविष्यकी नीव पडेगी।

पहली पचवर्षीय योजनामें हमने खेती और खाद्य-उत्पादनपर विशेष जोर दिया था। उस समय यह न सिर्फ हमारी सबसे जरूरी समस्या थी, बल्कि मुल्कके उद्योगीकरण के लिए एक टिकाऊ कृषिके आधारकी भी जरूरत थी। अब चूँकि इसमें हम काफी कामयाबी हासिल हो चुकी है, वक्त आ गया है कि हम इसी तेजीके साथ औद्योगिक मोर्चे की तरफ भी कदम बढायें। इसलिए इसमें जरा भी सन्देह नही कि दूसरी पचवर्षीय योजनामें उद्योगो और लोगोको काम देनेपर विशेष जोर दिया जायगा। हम यह कह चुके हैं कि हमारी योजनाओका सामाजिक मकसद एक समाजवादी ढगकी व्यवस्था कायम करना है। हमेशासे यही कांग्रेसके ध्येयकी बुनियाद रही है। इसलिए यह जरूरी है कि इस बातको हम और भी साफ कर दें, ताकि योजनाके आइन्दाके सभी स्टेजोमें हमारे सामने समाजवादी व्यवस्थाका ही खाका रहे।

किसीका अंधानुकरण क्यो करें?

समाजवादके कई अभिप्रेतार्थ हैं। हमारे लिए उसके किसी एक सकीर्ण अथवा शाब्दिक रूपको ही तय कर लेना न तो जरूरी है और न वाछनीय ही। और इससे भी कम वाछनीय यह है कि हमारे मुल्कके मुख्तलिफ स्थितिवाले मुल्कोमें समाजवादके नामपर जो-कुछ हुआ या कहा गया है, हम भी उसका अन्धानुकरण करें। समाजवादके ऐसे समान पहलू और सिद्धान्त हो सकते है, जिन्हे सभी जगह लागू किया जा सके, लेकिन हर देशको अपनी प्रतिभा और परिस्थितियोके अनुसार ही अपना ढग तय करना चाहिए। फिर हिन्दुस्तानके लिए तो खास तौरपर यह बात लागू है, क्योकि इसका पुष्ट व्यक्तित्व, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और अपनी परम्परा है। इसी परम्परा और पृष्ठभूमिके अनुरूप हमारा स्वाधीनता-आन्दोलन खडा हुआ और उस सघर्षने ही हमारी भावी परिस्थितियोका भी मार्ग तैयार किया। हम उन देशोकी आलोचना नही करते, जिनको मुख्तलिफ रास्ते अपनाने पडे है, और मुख्तलिफ परिस्थितियोंका सामना करना पडा है। पर मुझे हैरत इस बातकी है कि हमारे मुल्कके कुछ लोग मुतवातिर यह सोचते और कहते हैं कि दूसरे देशोमें जो-कुछ हुआ, वह हमारे देशके लिए भी एक अनुकरणीय आदर्श है! यह देखकर मुझे और भी ताज्जुब और अफसोस होता है कि जहाँ ऐसे लोग अपने देशको, चाहे अनजानमें ही, गिराते हैं, वहाँ वे दूसरे मुल्कोकी तारीफ करते नही थकते। वे न सिर्फ दूसरोके नारोको ही अपनाते है, बल्कि उनके प्रतीकोको भी। मुझे यकीन है कि यह न सिर्फ गलत तरीका है,

बल्कि यह सही समाजवादी ढंग भी नहीं है, जिसमें कि देश की वस्तुस्थिति और सामाजिक रुख-रवैयेकी उपेक्षा की जाती है। हमें न सिर्फ अपनी पसन्दके किसी सिद्धान्तकी ही घोषणा कर देनी है, बल्कि ३७ करोड़ लोगोंको साथ लेकर अपने मकसद तक पहुँचना है। आज भारतकी जो परिस्थिति है, उसमें अगर हम एक भी गलत कदम उठाते हैं—चाहे ऐसा कितने ही अच्छे इरादेसे क्यों न किया जाय—तो उसका नतीजा संघर्ष, हिंसा और विघटन ही हो सकता है, जिससे कि हमारी तरक्कीका रास्ता एक काफी लंबे अर्से तक रुक सकता है। इसलिए हमें इस सबसे अहम बातको हमेशा याद रखना चाहिए कि हम हिंसाका सहारा हर्गिज़ नहीं लेंगे—इसलिए कि वह अपने-आपमें खराब है और इसलिए कि उसका नतीजा हमेशा खराब और विघटनकारी ही होता है।

जीवनके हर क्षेत्रमें तत्परता

हमारा राष्ट्रीय लक्ष्य है समाजवादी अर्थनीति और जन-कल्याणकारी राष्ट्रका निर्माण। इनमेंसे कोई भी उस समय तक पूरा नहीं हो सकता, जबतक कि राष्ट्रीय आय काफी न बढ़े, काफी चीज़ोंका उत्पादन न हो और काफी सेवाएँ तथा मुकम्मिल बाकारी न हो। इस प्रकार समाजवादी ढंगसे एक छोटे-से जन-कल्याणकारी राष्ट्रके निर्माण के लिए सिर्फ मौजूदा उद्योगोंके राष्ट्रीयकरण और व्यापक समृद्धिकी अर्थनीतिको माननेवाला प्रस्ताव या कानून पास कर देना-भर ही काफी नहीं है। इसके लिए हमें उत्पादन बढ़ाना होगा और व्यापक समृद्धिकी अर्थनीतिको अपनाना होगा। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि उत्पादनका सम वितरण हो और कुछ विशेष सुविधाप्राप्त व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहोंका लिहाज़ न किया जाय। हमें उन सब प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देना होगा, जिनसे उत्पादन बढ़े और ज्यादा लोगोंको रोज़ी मिले, बशर्ते कि इससे हमारे समाजवादी व्यवस्थाके चरम लक्ष्यकी पूर्तिके मार्गमें किसी तरहका फर्क न आय। अगर हम पूरा उत्पादन और पूरी बाकारी न ला सकें, तो कुछ उद्योगोंका राष्ट्रीयकरण करके अथवा कुछ जोश-खरोशवाले कानून और डिक्रियाँ पास करके भी हम न तो समाजवाद ला सकेंगे और न जन-कल्याणकारी राष्ट्र ही बना सकेंगे। अगर हमारा उद्देश्य बहुत बड़े पैमानेपर चीज़ोंका ...

और उसकी कसौटी सैद्धान्तिक
नतीजा ही होगा।

सरकारी बनाम गैर-

इसी कसौटीपर हमें
इस दलीलको भी कसना होगा
और गैर-सरकारी तरीकोंमें
यह तो साफ जाहिर है कि सम
और वितरणके साधनोंपर
इतना ही साफ यह भी है कि अ
वादी अर्थनीतिकी ओर बढ़ा
सरकारी नियंत्रण प्रमुख होता
मौजूदा स्थितिमें इस नियंत्रण
उद्योगोंके उत्पादन और विकास
समाजवादी व्यवस्थाका मुख्य
की रुकावटोंको दूर करना।
के नामपर सरकारी नियंत्रण
को कायम रखते हैं, तो हम वि
के अपने उद्देश्यमें विफल हो
हो जाता है कि गैर-सरकारी
विकास करनेकी सुविधा रहे,
सम्बद्ध हो। हममेंसे बहुत
अन्य देशोंकी तुलनाओंके
धन्धोंके सम्बन्धमें सशंक हैं।
ध्येय स्पष्ट है और हम
भयका कोई कारण नहीं।

इस बारेमें तो कोई शक
जरूरी तौरपर खास-खास उ
और बुनियादी उद्योगोंपर
आधिपत्य होगा। पर इस
विकासका बहुत बड़ा क्षेत्र तो
काफी अर्से तक सरकारी पक्ष
वह गैर-सरकारी पक्षके लिए
दृष्टिसे हमारे विकासमें
बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहेगा।
कि हम तथाकथित 'स्वतंत्र
मान लेंगे, जो अब दिवालिया

सारे मुल्कमे तरह-तरहके उद्योग-धन्धोका एक जाल-सा बिछ जाय। हालांकि सरकारी पक्षको समाज और अर्थनीतिके किसी भी क्षेत्रमे प्रवेश करनेकी पूरी आजादी रहेगी, लेकिन अभी काफी समय तक ऐसे हालात पैदा नही हो सकते कि राष्ट्रीय अर्थनीतिके सब क्षेत्रोमें केवल उसीका एकाधिपत्य हो। मसलन खेतीके सबसे बडे उद्योगकी जननी धरती जरूरी तौरपर गैर-सरकारी हाथोमे ही रहेगी। इसी तरह छोटे उद्योग-धन्धे भी ज्यादातर गैर-सरकारी हाथोमें रहेगे, हालांकि उनका सहयोगी आधारपर सुव्यवस्थित होना जरूरी है। यही बात दूसरे छोटे उद्योगोके बारेमें भी लागू है। कुछ बडे उद्योग-धन्धोको भी, अगर सरकार उनकी जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेना चाहे, तो गैर-सरकारी हाथोमे सौंप देना फायदेमन्द ही होगा।

जब वस्तुस्थिति यह है, तो हमें गैर-सरकारी पक्षके प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाना होगा और साथ ही अपने समाजवादी व्यवस्थाके लक्ष्यकी पूर्तिका सदा ध्यान रखते हुए किसी ऐसी प्रवृत्तिको पैदा नही होने देना होगा, जो कि आगे चलकर हमारे मार्गमें बाधक बन सके। इस तरह सरकारी और गैर-सरकारी उद्योग-धन्धोको साथ-साथ चलनेका एक परिणाम दोनोमें एक तरहकी स्वस्थ प्रतियोगिता भी होगी। यहाँ हमे यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि अर्थनीतिका जो बडा खाका हम तैयार कर रहे हैं, उसकी कसौटी हमेशा अधिक उत्पादन और अधिक बाकारी ही होने चाहिऐं।

साधन-सामग्रीका सदुपयोग

मेरा यकीन है कि हम लोग अपने देशमे एक बहुत बडे औद्योगिक विकासकी शुरुआत कर रहे हैं। इसके लिए हमें अपनी सारी साधन-सामग्रीका भरपूर उपयोग करना होगा और किसी भी चीजको बेकार नही खोना होगा। इसका आर्थिक पहलू तो महत्त्वपूर्ण है ही, किंतु इससे भी कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण है औद्योगिक-क्रान्ति लानेके लिए सुशिक्षित और सुदक्ष व्यक्ति। मुझे खतरा यही दिखाई देता है कि सुदक्ष व्यक्तियोकी कमीकी वजहसे हमारे औद्योगिक विकासकी गति कही धीमी न पड जाय। हमारे पास मानव-शक्ति काफी है—और कभी-कभी तो मानव-शक्ति पूँजी तककी जगह भी ले सकती है। लेकिन बिना सुशिक्षित मानव-शक्तिके हम ज्यादा दूर नही बढ सकते। इसलिए हमें अपने प्लानिंगमे पहलेसे ही यह तय करना होगा कि सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियोके लिए काफी सख्यामें लोगोको शिक्षा दी जाय।

बडे-बडे उद्योग-धन्धोकी हम चाहे जितनी भी तरक्की क्यो न कर ले, लेकिन उतना ही जोर और व्यापक विकासकी चेष्टा हमे छोटे-छोटे उद्योगो और कुटीर शिल्पके लिए भी करनी पडेगी। कांग्रेसने हमेशा ही घरेलू उद्योग-धन्धो की तरक्कीकी माँग की है। आज तो उनकी तरक्कीकी जरूरत और भी ज्यादा है, क्योकि बिना इसके न तो सारे बेकारोको काम ही दिया जा सकता है और न कुल उत्पादन ही बढाया जा सकता है। मेरी रायमे तो बडे और छोटे उद्योग-धन्धोमें किसी भी तरहका बुनियादी सघर्ष नही है, बशर्ते कि उन्हें उन्नत करनेका हमारा ढग सतुलित और सुयोजित हो। (अवाडी-कांग्रेसको पेश की गई रिपोर्टसे)

निर्माण-कार्य और कांग्रेसजन

श्रीमती सावित्री निगम (सदस्या, राज्य-सभा)

हम सभी जानते हैं कि हमारे नवनिर्माण-यज्ञके दो ही बडे शत्रु हैं—प्रतिक्रियावादी राजनीतिक दल तथा देशवासियोमें बढती हुई चारित्रिक दुर्बलता। किन्तु खेद यह है कि देशमे आज कांग्रेस-जैसी महान् ऐतिहासिक एव प्रतिष्ठित राजनीतिक सस्थाकी उपस्थितिमें ये दोनो शत्रु सिर कैसे उठा रहे है? कांग्रेस-जैसी सस्थाके, जो युग-निर्माता गाँधीजीकी गोदमे पली और अब देशके सच्चे जन-नायक एव हृदय-सम्राट नेहरूजीके पूर्ण वात्सल्यकी अधिकारिणी तथा जनताकी श्रद्धाकी पात्र होते हुए भी प्रतिक्रियावादी उचक्कोंके फुसलावेमें जनताका आ जाना या हमारी आपसी फूट, ईर्ष्या, द्वेष तथा गुटबन्दीके कारण उत्पन्न उथल-पुथल और रचनात्मक कार्योमें रुकावटें—ऐसी वस्तुएँ नही हैं, जिनकी हम यों ही उपेक्षा करें।

दलबन्दियोंका दुष्परिणाम

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर दोषोकी गठरी हम किसके सिरपर रखें—अपने या सस्थाके अथवा नेताओके ऊपर? कुछ भी हो, यदि हम गणतान्त्रिक परम्परामे विश्वास रखते हैं और अपने तथा दूसरोंके साथ न्याय करना चाहते हैं, तो हमें सबसे पहले यह गठरी अपने ऊपर ही रखनी होगी, क्योकि सस्था तथा नेता दोनोमें ही शक्ति एव जीवन

भरनेवाला कार्यकर्ता ही होता है। वास्तविकता यही है कि हमारी कमजोरीके कारण ही, ये ही नही अनेक रोग हमें घेर रहे हैं। यह किसीसे छिपा नही है कि आज हमारा नवोदित प्रजातंत्र हमसे (कार्यकर्ताओंसे) जो त्याग व तपस्या, ज्ञान एवं सेवा चाहता है, वह हम नही दे रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि हमने शक्ति बढाने की धुनमें दलबन्दियो तथा गुटबन्दियोको ही अपनी शक्ति नापनेका मापदण्ड बना लिया है। हमारी वह शक्ति, जो जनता-जनार्दनकी सेवामें लगनी चाहिए थी, छिद्रान्वेषण, प्रतिद्वन्द्विता तथा ईर्ष्या-द्वेषमें लग रही है। इस आपसी फूटका उद्देश्य पदोको हथियाना ही होता है—हालांकि पदोंके मिलने-न-मिलनेमें ये गुटबन्दियाँ न सहायक होती हैं और न विशेष बाधक ही, क्योकि कागजकी नाव आखिर कबतक पानीपर तैर सकती है ? चाहे कोई दल कितना ही बडा क्यो न हो, लडाई-झगडेमें कितना ही शक्तिशाली क्यो न दिखे, उसकी शक्तिके निर्णायक उसके सदस्यो की बडी सख्या या उसकी तानाशाही न होकर उसके द्वारा की हुई जनताकी वे सच्ची सेवाएँ होती हैं, जो नि स्वार्थ भावसे की जाती है। यदि हम इस मनोवैज्ञानिक सत्यको आत्मसात् कर लें और दूसरोंसे जलने या उन्हें ढकेलकर आगे बढनेके बजाय स्वय काम करनेमें जुट जायँ, तो काफी सुधार हो सकता है। आज हमारी बहुत बडी शक्ति यों ही बेकार चली जाती है और हममें से अधिकाश लोग यही नही निश्चय कर पाते कि आखिर वे किस दल या गुटमें शामिल हो ?

उपयोगिताकी सच्ची परख : सेवा

कार्यकर्ता सोचता है आखिर हमें एक-न-एकका तो होकर रहना ही पडेगा। वास्तविकता यह है कि दोनो बुरे अथवा दोनो अच्छे हैं। पर अक्सर वह दोनोको ही गलत समझते हुए भी किसी-न-किसीसे मजबूरी दर्जे समझौता करके बहुत बडी आत्म प्रवचना करनेकी भारी भूल करता है। बडी विचित्र बात है कि आखिर अच्छे कार्यकर्ता अपनेको इतना पगु, इतना अपाहिज क्या समझते हैं कि बिना गुट्ट-रूपी सहारेकी लकडीके चल ही न सकें। वास्तविकता यह है कि जिन कार्यकर्तामें ऊँचा चरित्र, तीव्र बुद्धि, कार्य करनेकी शक्ति और लगन है, उन्हें अपने क्षेत्रमें

दीजिए। रुपया कभी किसी उठा लीजिए, पर लोग उसे उ रख लेंगे, चाहे जेबमें जगह हो को अपना मूल्य बढानेके यदि हर प्रकार हम अपनी क्षमता, अपने विचार-कार्य- कि हमारे बिना लोगोका काम हमारे लिए भरे-से-भरे स्थानमें ढूंढ निकालेंगे।

हमारी उपयोगिताकी हमारी सेवा ही है। इसमें हमें यह देखना चाहिए कि हम हैं, कितने दुखियोका असहायोकी हम अपने सफल हुए और कितनो कराते हैं। मुहल्लेके कितने हमने व्यवस्था की। हमारे हमारे विषयमें क्या राय है ? साथ कितने लोग १० कदम सच्ची एवं वास्तविक होगा कि कार्यकर्ता उपेक्षा अपने-अपने कार्यक्षेत्रमें ईश्वरपर विश्वास सुलभ एवं सरल होता है। पैदा होनेके पूर्व प्राकृतिक की पूरी व्यवस्था हो जाती है, उसके दूधकी व्यवस्था हो की शक्ति यदि है, तो क्या कमी रह सकती है ? यदि विश्वास कर लें, तो न तो हमें ईर्ष्या ही हो, न यह चिन्ता जायगा ? और हमारी कार्य-रूपी उस सीढीपर ही कदमोंसे यदि हम चल सकें, लगेंगे। इसी मार्गपर पडितजी विश्वके नेता बने

होनेमें कोई कसर नहीं रह जाती। आज आवश्यकता इस बातकी है कि कांग्रेस-कार्यकर्त्ता अपना दृष्टिकोण, अपना मापदण्ड और अपनी भ्रमात्मक मान्यताएँ बदलकर उसी त्याग, तपस्या और सेवाका व्रत धारण करें, जिसको धारण करके उन्होंने देशको आजाद किया था। देश-निर्माणकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी भी उन्हींपर है, जिन्होंने देशवासियोंको इस योग्य बनाया कि वे इसे 'अपना देश' कह सकें। हमें यह मालूम है कि चाहे देश-निर्माणकी बात हो, चाहे जन-सेवाकी, दोनोंका रास्ता रचनात्मक कार्य ही है। रचनात्मक कार्यों द्वारा ही हम जनताकी श्रद्धा-रूपी सम्पत्ति अर्जित कर सकते हैं और निर्माण-यज्ञमें भी हमारा सक्रिय सहयोग अर्पित हो सकता है। यों तो निजी तौरपर हमें काम करनेकी खुली छूट है और हममेंसे हरएकको करना भी चाहिए।

कांग्रेसके दफ्तरोंकी हालत

अब हमें इन बातपर भी विचार करना चाहिए कि हमारे रचनात्मक कार्योंका संचालन, संयोजन एवं निरीक्षण करनेमें हमारी कांग्रेस कमेटियाँ क्यों सहायक नहीं हो रही हैं? क्यों वहांका वातावरण कुछ सजीव और खेदजनक है। इसका सबसे गहरा अनुभव मुझे उस समय हुआ जब एक विदेशी सम्मानित मेहमानने यह इच्छा प्रकट की कि उन्हें कांग्रेस-कमेटियोंके दफ्तर दिखाए जायँ। इतना समय नहीं था कि कोई पूर्व सूचना या तैयारीका अवसर दिया जा सकता। पहले दफ्तरमें ११ बजे पहुँचनेपर हमें झाड़ू लगाता हुआ एक लड़का नजर आया। पूछनेपर हमें मालूम हुआ कि सेक्रेटरी साहब घरपर हैं और चपरासी कहीं गया हुआ है। दूसरे दफ्तरमें आफिस सेक्रेटरी साहब मेजपर पैर रखे हुए बैठे थे। दो उनके मिलनेवाले सामने बैठे थे। बातें इतनी जोर-जोरसे हो रही थीं कि अगर बीच-बीचमें हँसी न सुनाई देती, तो हमें यह विश्वास जरूर हो जाता कि लड़ाई हो रही है। बातका विषय था कि किस-किस तरह उन्होंने अपने विरोधियोंको हराया। एक पानीकी भरी तश्तरी मेजपर रखी थी। कमरेके बाहर सहनके एक कोनेमें पानकी पीक और थूक ने पूरी जगह लाल हो रही थी। हमारे मेहमानको देखकर सबलोग व्यवस्थित हो गए और मेहमानोंके प्रश्नोंका उत्तर भी बखूबी दिया गया। उन्होंने पूछा—'कांग्रेसमें कितने डिपार्टमेंट हैं? कांग्रेस-कमेटी क्या-क्या रचनात्मक कार्य करती है? कितने सदस्य रोज आफिस आते हैं? स्त्री-विभागमें कितनी स्त्रियाँ हैं? वे क्या-क्या काम करती हैं? क्या उनके निरीक्षणमें कोई शिक्षा या समाज-सेवाका केन्द्र चल रहा है? सक्रिय

स्वयं नेहरूजी द्वारा प्रस्तुत जन-सेवा-कार्यका आदर्श

सदस्योकी सख्या कितनी है ? क्या उनके लिए रोज दफ्तर म आना अनिवार्य है ? या सप्ताहमे कितनी बार सब मिलते हैं ? शारीरिक श्रम करनेके लिए क्या-क्या योजनाएँ हैं ? नशेबन्दीके लिए क्या-क्या काम काग्रेस-कमेटियाँ कर रही हैं ? कितनी काग्रेस-कमेटियाँ आज देशमे हैं अथवा दुनिया ने गाधी-साहित्य पढकर क्या किसी सस्थाकी रूप-रेखा तैयार की है ?' इन प्रश्नोके अनुरूप हमारे कितने प्रतिशत कार्यालय खरे उतर सकते हैं, इसपर हमे गम्भीरतासे विचार करना होगा।

न करो, न करने दो !

जब देशमे छिडे निर्माण-यज्ञमें आज जन जनके सहयोग की आवश्यकता है, जब दासत्व-कालके प्रभाव, आलस्य, शारीरिक श्रमके प्रति घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, रिश्वत, फूट आदि दूर करनेका बडा कठिन एव अत्यन्त विशाल कार्य हमारे सामने है, तो काग्रेस-कमेटियाँ अपनेको केवल चुनाव-दफ्तर बनाकर अपना कर्तव्य पूरा करनेका दावा कैसे पूरा कर सकती हैं ! यदि हम अपनेको दिवालिया नही बनाना चाहते, यदि हमें अपने बीच गाधी और विनोबाको जीवित रखना है, तो हमें काग्रेस-कमेटीके कार्यालयोको समाज-सेवा केन्द्रोका रूप देना होगा और वहाँ सेवाग्रामका वातावरण उत्पन्न करके जन-जनके हृदयमें सेवा, त्याग और कर्तव्य-निष्ठा भरनी होगी। न जाने कितना मानव-श्रम देशमें बेकार पडा है। यदि हम कोई भी रचनात्मक कार्य प्रारभ कर नौकरी मिलनेकी प्रतीक्षामें बेकार बैठे नवयुवको और विवाहकी प्रतीक्षामें बेकार बैठी नवयुवतियो तथा अवकाश-प्राप्त रिटायर्ड कर्मचारियोके सहयोगका आह्वान करें, तो हमारा कार्य बडी ही सरलतासे आगे बढ सकता है। पर सच्ची बात तो यह है कि नए रक्तको लेना तो दूर रहा, अधिकतर लोग उन्हे निरुत्साहित करते या उनकी उपेक्षा करते हैं। उन्हे यह तो भय रहता ही है कि कहीं ऐसा न हो कि वे अधिक काम करके प्रतिष्ठा प्राप्त कर ले ! साथ ही यह भी चिन्ता रहती है कि उनकी अकर्मण्यता कहीं और भी उभर न आय। इसी प्रवृत्तिसे प्रेरित होकर स्त्रियोकी भी उपेक्षा की जाती है। नई और पुरानी सभी काग्रेस महिला-कमेटियोकी यह शिकायत बहुत अशोमें सही है कि उन्हे उत्साहित करना या सहयोग देना तो

आलस्य और

पर सबसे पहले ऐसे लोगो
यह बताना उचित होगा कि
को भी यह सोचना चाहिए कि
ऐसी बीमारी नही है,
एसे कर्मठ कार्यकर्ताकी उपा
इलाज है, जो उत्साही हो और
एव लगन हो। दूसरे उन्हे यह
वे स्वय नही कर पाते, तो कम
क्योकि सार्वजनिक कार्योमे
विशेषको न मिलकर सस्थाके
ही मिलता है। उसमें निज
उसका अधिकारी बन जाता
आलसी व्यक्तियोके लिए अ
रास्ता है कि वह अधिक-से-
व्यक्तियोको अपने साथ लेकर
काम कराय, तभी वह धीरे-
कर्मीके गहरे गड्ढेको सामूहिक
सस्थाकी भी निर्धनता दूर होगी
जिस काग्रेस-कमेटीके अधिकार
युवक समुदायको क्रियाशील
कार्यक्रम बनाकर उसे उनके
हो जायँ, उन्हे फिर निश्चिन्त
पूरी स्वतत्रता भी मिल सकती
तथा नवयुवकोको धीरे-धीरे
का ढंग और सामाजिक कार्योके
साथ ही काग्रेसके प्रति ल
बढेगी।

हमें यह भी सोचना च
काई आय और कहे कि हमारे
तुम्हारे लिए यह किया, वह कि
कुछ-न-कुछ दे दे, पर आपसे य
कि 'बाबाने तो किया, पर तुम
कर रहे हो ?' आज जनत
कहलानेवाले समुदायकी ओर
है और वह हममें लगन, क
त्यागके प्रति

८ १० वर्ष पूर्व थी, तो आज भी हम चुनावोंके समय वोट माँगने न जाना पडता और अन्य पार्टियोंकी तरह हजारों रुपए खर्चकर चुनाव प्रचारमें जुटनेकी आवश्यकता न पडती।

ठेकेदारी मनोवृत्तिका अन्त

यदि आजादी मिलनेके पूर्व जो श्रद्धा एवं सहानुभूति कांग्रेसके प्रति जनता में थी, उसे हम सुरक्षित रखना चाहते थे, तो हमें तुरन्त ही देशके नवनिर्माण कार्यको आगे बढानेके लिए रचनात्मक कार्यों और नशा निषेध तथा कुरीतियोंके दमनका कार्य कांग्रेस-कमेटियोंको सौंपना चाहिए था। हर मण्डल हर तालुकेमें स्कूल क्लब अध्ययनशाला शिल्प-केन्द्र, सफाई एवं स्वास्थ्य-कमेटी नशाबन्दी-कमेटी घूस तथा दहेज विरोधी दलोंका निर्माण करके आज भी हम फिरसे जनता जनार्दनकी श्रद्धा एवं प्रेमके अधिकारी बन सकते हैं। जिस स्थानमें कांग्रेस कमेटियाँ ये कार्य उठा लेंगी और सुचारु रूपसे चलाने लगेंगी तथा हर व्यक्तिको पूरा सहयोग और काम करने तथा नेतृत्व करनेका पूरा अवसर प्रदान कर सकेंगी वहाँ हमें चुनावोंके अवसरपर न उस ठाट-बाट, दिखावेबाजी पैम्फलेट-पोस्टरका आश्रय लेना पडेगा और न किराएके टट्टू कार्यकर्त्ता ही रखने पडेंगे। बिना मांगे बिना बुलाए ही, हमारे तमाम साथी, शिष्य तथा सदस्य हमारे लिए स्वयं मरने मिटनेको तैयार रहेंगे। पर हमें बहुत ही समझदारीसे काम करना होगा—विशेष रूपसे अपनी उस प्रवृत्तिको जिसे हम महाधीशोंकी प्रवृत्ति कह सकते हैं या ठेकेदारी, बदलना होगा। जिस प्रकार मठाधीश मन्दिरमें दूसरा पुजारी और ठेकेदार दूसरा ठेकेदार देख नहीं सकता, ठीक उसी प्रकार आज जो लोग जहाँ अधिकार जमाए बैठे हैं, वहाँ सबको आमन्त्रित करना, सबका सहयोग लेना और सबको नेतृत्व तथा कार्य करनेका अवसर देना तो दूर रहा एसा वातावरण, एसा रुख एवं रवैय्या अख्तियार करते हैं कि कोई नया आदमी दुबारा वहाँ जानेका साहस ही नहीं कर पाता।

सार्वजनिक कार्योंकी बात उठते ही लोग रुपएका प्रश्न उठाते हैं। पर उसका कारण उनकी अनभिज्ञता ही है, क्योंकि हमारी राष्ट्रीय सरकार दोनों हाथोंसे जन हितकारी कार्योंके लिए हर प्रकारकी नई-पुरानी संस्थाओंको सहयोग दे रही है। यदि कांग्रेस-कमेटियाँ एसे कार्य हाथमें लें, तो उनको रुपए देनेमें सरकारको भी आसानी होगी और अन्य संस्थाओं जितनी छानबीन भी न करनी पडेगी।

ट्रेनिंगकी व्यवस्था

पर निर्माण-कार्य करना आजादीकी लडाई लडनेसे कम कठिन कार्य नहीं है। इसलिए आज आवश्यकता है कि हमसब ट्रेनिंग लेकर अपनी उपयोगिता बढायँ। इस लिए हमें ट्रेनिंग-कैम्प खोलकर सारे कार्यकर्ताओंके साथ ट्रेनिंग देने और लेनेका प्रबंध हर स्थानमें करना होगा। सबसे आवश्यक एवं प्रथम ट्रेनिंग तो हर कांग्रेसके सदस्यको सेवा-दलकी ही लेनी चाहिए। ये ट्रेनिंग-कैम्प इसलिए भी बडे लाभप्रद एवं उपयोगी सिद्ध होते हैं कि हम अपने को जमानेकी रफ्तारके साथ चलनेलायक बनाकर सार्वजनिक कार्योंको करनेकी क्षमता हासिल करते हैं और साथ ही हममें और नए सदस्योंमें एक अजीब उत्साह एवं नई जिन्दगी भर जाती है।

फिलहाल हमने जन-सम्पर्कका एक बहुत ही हानिकारक ढंग अपना रखा है, वह है सिफारिश तथा माफी दिलानेका। ये दोनों कार्य करनेवाली संस्था कभी भी लोगोंकी कृपापात्र या श्रद्धाकी अधिकारी नहीं बन सकती। इसलिए यह बात पूरी तरह साफ हो जानी चाहिए और अखिल भारतीय एवं प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियोंको भी आदेश दिए जाने चाहिएँ कि कांग्रेस-कार्यालय सिफारिश-गृह न बनकर सार्वजनिक सेवा-गृह बनाए जायँ।

पंचवर्षीय योजना और उसकी

श्रीमती माया गुप्ता

यदि यह कहा जाय कि भारतमें सरकारकी ओरसे सबलोगोंके कल्याणके लिए ऐतिहासिक कालमें इतने बड़े पैमानेपर कभी कोई काम नहीं की गई और हमारी पचवर्षीय योजना इस सम्बन्धमें पहला प्रयास है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। जब हम पराधीन थे, तभी हमारे कुछ नेता यह समझते थे कि भारतको आगे बढ़ानेके लिए यह जरूरी है कि एक राष्ट्रीय योजना बनाई जाय और उसके अनुसार देशका विकास किया जाय। १९३८में योजना बनाकर देशको उन्नत करनेकी बात व्यवहारमें आने लगी थी। उस साल भारतीय कांग्रेसकी ओरसे राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की गई। श्री जवाहरलाल नेहरू इस समितिके अध्यक्ष बनाए गए। अभी यह समिति कुछ ही काम कर पाई थी कि द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और समितिके कई सदस्य जेलके सीकचोंमें बन्द कर दिए गए। यद्यपि यह समिति कोई सरकारी समिति नहीं थी, फिर भी इसने मूल्य वान सामग्री एकत्र की। इसने जो प्रतिवेदन प्रकाशित किए, वे अब भी महत्वपूर्ण हैं।

आजादीके बादकी मुसीबतें

इस प्रकार हमारे देशके लोग स्वतन्त्रतासे पहले ही योजनात्मक तरीकेसे नव निर्माणकी बात सोचने लग गए थे। इसके बाद १९४४में बम्बई-योजना प्रकाशित हुई। इसमें जो योजना बनाई गई थी, उसमें १० हजार करोड़ रुपए खर्च करनेकी बात कही गई थी। इस प्रकारकी कई अन्य योजनाएँ भी सामने आईं। यदि स्वतन्त्रता मिलने पर हमें शान्ति मिलती, तो योजना बनाकर काम करनेका सवाल फौरन उठता। पर अभी अच्छी तरह हमारे राष्ट्रकी नाव भी नहीं पड़ पाई थी कि चारों तरफसे इसपर विपत्तिके पहाड़ टूट पड़े और कई तरहकी जटिल समस्याएँ सामने आ गई। महायुद्धके कारण हमारी आर्थिक व्यवस्था बिलकुल भंग हो चुकी थी। अँगरेज हमारे देशको इस स्थितिमें छोड़ गए थे कि समस्याओंके अलावा हमारे यहाँ अन्न-समस्या भी पैदा हो गई थी। बँटवारेके कारण सिद्धान्तय प

थोड़ी-बहुत चीजें थीं, ७
हो रहा था। रेलोंका
इसलिए यो ना बनाकर काम
खेतीके सम्बन्धमें यह ९
से अधिक लोग जमीनपर
थी, वह ढंगसे नहीं होती थी।
थी। मिस्र और जापानमें
है, देखा गया कि भारतके तीन
गाँवोंके उद्योग धन्धे लुप्त हो
अच्छी हालतमें नहीं थे।
बनानेकी एक ही धारमें
स्वतन्त्रता तो मिल चुकी थी,
को उठानेकी आवश्यकता थी
अपनी अवस्था सुधारनेके
तो मालूम हुआ कि हम अ
न हमारे पास प्रशिक्षित लोग

प्रथम पचवर्ष

इन परिस्थितियोंमें
नियुक्ति हुई जिससे कि वह
तैयार करे और ऐसी योजना
असरदार तथा संतुलित ढंगसे
सन् १९५१की जुलाईमें
अधिक सार्वजनिक आलोचना
शित कर दिया गया। यह
राज्यों तथा जनमतके प्रतिनि
गया था। आयोगको इसके
हुए, उनकी रोशनीमें मस
सन १९५२के दिसम्बरमें
वर्षीय योजना अपने अन्तिम
जवाहरलाल नेहरूके शब्दोंमें
अधिक-से-अधिक मतैक्यका
योजनाके दो मुख्य
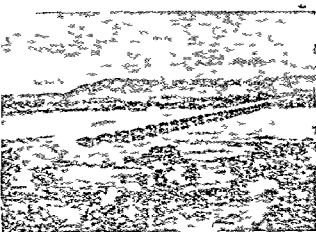
महानदीपर बना हिराकुड बांधका पुल

करना था। जो प्रथम पचवर्षीय योजना है उस हम २५ साल तक फैली हुई एक लम्बी योजनाका अश कह सकते है। सैकडो वर्षोसे जो बातें बिगडी हुई ह वे पाँच सालोम न तो ठीक हो सकती हैं और न कोई एसी आशा ही रखता है। फिर भी प्रथम पचवर्षीय योजनासे जो लाभ होगा वह नगण्य नही कहा जा सकता। यह आशा की जाती है कि इस योजना के बाद राष्ट्रीय आय नौ हज़ार करोड रुपएसे बढकर दस हज़ार करोड रुपए हो जायगी। १९६५के बाद हमारी राष्ट्रीय आमदनी बहुत तेज़ीसे बढगी, और १९७८में यह दुगुनी हो जायगी।

पचवर्षीय योजनाके दूसरे लक्ष्यकी पूर्तिके लिए, यानी सामाजिक न्याय स्थापित करनके लिए, सबसे बडा कदम ज़मीदारी प्रथाके नाशके रूपमें उठाया गया है। मृत्यु कर-कानून तैयार है। काश्तकारोकी रक्षाके लिए और पिछड हुए वर्गोकी उन्नतिके लिए जो उपाय किए जा रहे है उनका लक्ष्य यही है कि वे लोग आर्थिक उन्नति करें।

पचवर्षीय योजनाम किस प्रकार खच हो रहा है उसका लेखा इस प्रकार है

कार्य	लागत (करोड रुपयोंमें)	लागतका प्र०
खती और सामूहिक विकास	३६१	१७ ५
सिंचाई	१६८	८ १
बहुमुखी सिंचाई और बिजली		
उत्पादन-योजना	२६६	१२ ९
बिजली	१२७	६ १
परिवहन और सचार	४९७	२४ ०
उद्योग धन्ध	१७३	८ ४
सामाजिक सेवाएँ	३४०	१६ ४
पुनर्वास	८५	४ १
विविध	५२	२ ५
	२,०६९	१०० ०

खेती, सिंचाई और परिवहन

बेकारी दूर करनके लिए लगभग २०० करोड रुपएकी पूँजीकी व्यवस्था और की गई है। ऊपर जो आँकड दिए गए ह उनपर ध्यानसे विचार करनपर यह ज्ञात होगा कि हमारे यहाँ अन्नकी समस्या सबसे बडी है, इसलिए हमारी योजनाम सिंचाई और बिजली उत्पादनको सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। हमारे यहाँ दो तिहाई लोग खतीपर निर्भर भी करते ह पर उनकी सम्मिलित आय कुल आयकी आधी है जबकि १७ या १८ प्रतिशत बाकी आयके अधिकारी है। यहाँ खती भी विशष उन्नत नही है। अन्न तथा कच्चे मालके उत्पादनमें यथेष्ट वृद्धि किए बिना औद्योगिक उन्नति हो भी नही सकती। बिजली उत्पादन इसलिए जरूरी है कि देहाती धन्धोके पुनरुद्धारके के लिए इसकी आवश्यकता है। उत्पादन बढेगा, तो उसीके साथ-साथ परिवहनका बढना भी जरूरी है। बना हुआ माल इधरसे उधर भजनके अतिरिक्त कच्चा माल और कोयला आदि पहुँचते रहना चाहिए। इसलिए परिवहन और सचारपर भी विशष ज़ोर दिया गया है।

सरकार अपन अधिकाश साधन खती, सिंचाई और परिवहनम लगान जा रही है, इसलिए औद्योगिक उन्नति की जिम्मेवारी मुख्यत निजी धन्धोपर रहेगी। हाँ, वह इस्पात-जैसी बहुत जरूरी चीज़ो और बिजलीका भारी साज-समान बनानके लिए कारखान खोल रही है, क्योकि

चितरञ्जनका इजन बनानका कारखाना
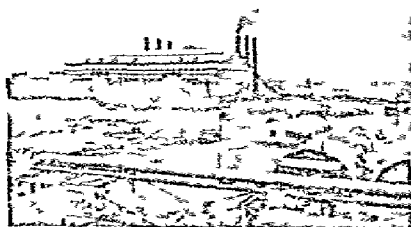
२२ करोड रुपएकी लागतसे बनी सिन्द्रीकी खाद फैक्टरी

इसके बिना हमारा आर्थिक विकास हो ही नही सकता। कृषिके लिए सरकार किस प्रकारसे खर्च कर रही है वह नीचेके आकडोंसे ज्ञात होगा

खेती	१८४ २२ करोड रु०
पशु चिकित्सा पशु-पालन और दुग्ध-व्यवसाय	२२ २८
जगलात	११ ६९
सहकारिता आन्दोलन	७ ११
मछली उत्पादन	४ ६४
देहात विकास	१० ४७
सामूहिक विकास योजना	९० ००
स्थानीय निर्माण-काय	१५ ००
कमीवाले इलाकोंके लिए कार्यक्रम	१५ ००
कुल	३६० ४१

सामहिक विकास-योजनाएँ

सामूहिक विकास-योजनाएँ भी बहुत महत्वकी ह क्योकि इसके द्वारा उस परिवर्तनका सूत्रपात हो रहा है जिसके बिना हमारे देहाती भाइयोंके जीवनमें कोई तरक्की नहा हो सकती। इस योजनाका मूलमत्र है अपना काज आप करो। सरकार तथा सरकारी नौकर इस सम्बन्धमें केवल सही रास्ता दिखाने तथा एक हद तक आर्थिक सहायता और उपयोगी सामग्री पहुँचानेका ही काम करेंगे। सरकारी

तीन

इस समय तक न
इसलिए स्वाभाविक रूपसे
होगी कि अब तक हमने
भोजनको ही लिया जाय
जरूरत है। यह तो
अकालमें खाद्यकी कमी बहुत
के सामने लम्बी कतारें ल
था। पर अब कुछ
हो गई। सच तो यह है
भी भेज सकते है ।
है। और यह सब
हमने १९४९ ५०के
टन अन्न अधिक उत्पन्न
१९५५ ५६ तक—यानी प
हमें ७६ लाख टन ही
केवल अन्नमें ही नही
आगे बढ चुके हैं । न
है । हमें १२५ लाख गाठ
करीब करीब उसके पास
में हमने जितना अतिरिक्त
विनिमयके १८७ करोड
कर १९५० ५१के
की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि
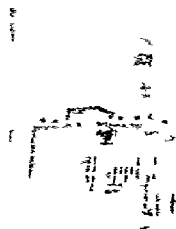
५३ लाख अतिरिक्त एकडोमे नए कुऍं खुदवाए गए और पुराने कुओंकी मरम्मत कराई गई तथा तालो और नहरोसे सिंचाई करके खेती हुई है। इसके अतिरिक्त नदी घाटी-योजनाओ से २८ लाख एकड जमीनकी सिंचाई हुई है। इसी बीचमें ८ लाख १० हजार एकड जमीनको कांससे उद्धार किया गया। इस सम्बन्धमे भी यह स्मरण रहे कि पचवर्षीय योजनाके अनुसार १४ लाख एकड जमीनका कांससे उद्धार करना लक्ष्य रखा गया है। उपज बढानेमे एक बात यह भी सहायक हुई कि किसानोमे उन्नत बीज और रासायनिक खाद बहुतायतसे बाँटी गई। प्रतिवर्ष किसानोको अधिक से अधिक बीज देनेकी व्यवस्था हो रही है। इस बातकी भी चेष्टा हो रही है कि किसानको अपनी उपजके लिए अधिक-से अधिक पैसे मिले। १९५०-५१में जहाँ २८३ ऐसे बाजार थे जिनमें किसान नियत दामपर अपनी चीजें बेच सकता था, अब १९५३-५४में इस प्रकारके बाजार ३५६ है।

उत्तर प्रदेशमें एक वयस्क शिक्षण केन्द्र

किसानोंके मानसिक क्षितिजको बढानेके लिए तथा रोजमराके कार्योंमें सहायता देनेके लिए सारे देशमें ४७९ सामूहिक योजना-खण्ड तथा राष्ट्रीय विस्तार-सेवा खण्ड स्थापित किए गए। ४ करोड लोगो तक उनकी पहुँच होगी—यानी १९५५-५६ तक जितने लोगो तक पहुँचना था, उसमेंसे आधे लोगो तक हम पहुँच चुके है। यह तो मालूम ही है कि जमीदारी जागीरदारी तथा अन्य प्रकारकी प्रथाओको कानून द्वारा अन्त कर दिया गया है। कई राज्यो में किसानोकी रक्षाके लिए भी कानून बन रहे है।

औद्योगिक क्षेत्रमे भी काफी उन्नति हुई है। १९५० की औद्योगिक-स्थितिका १०५ मानने हुए १९५३में यह अंक १३५ तक पहुँच गया। १९५४की प्रवृत्तियोको देखकर यह कहा जा सकता है कि यह अंक कुछ और ऊपर बढा होगा।
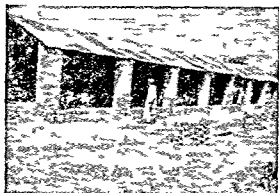
ग्रामीणोंके धन और श्रमसे बना एक ग्राम्य विद्यालय

१९५१में अमोनियम सल्फेटका उत्पादन ९६ हजार टन था १९५३-५४में वह ३ लाख २ हजार टन हो गया। गत तीन वर्षोंमें चित्तरंजन रेल इंजन कारखानेमें ११६ रेल इंजन बने। उडीसाके रूरकेला नामक स्थानमें सरकारकी ओरसे लोहे और इस्पातका कारखाना खुल रहा है। निजी धन्धोंके क्षेत्रमें भी बहुत अधिक उन्नति हुई। कपडेका उत्पादन बढकर ४९० करोड गज पहुँच गया और इस प्रकार १९५५-५६के लक्ष्यसे ४७० करोड गज अधिक कपडा तैयार हुआ। १९५३-५४में तैयार इस्पातका उत्पादन १०,८०० टन पहुँच गया जबकि १९५०-५१में सीमेंटका उत्पादन २६ लाख ९० हजार टनका था और ५३-५४में ४० लाख ३० हजार टन सीमेंट तैयार हुआ। १९५०-५१में १,०१,००० बाइसिकलें और ५३-५४मे २,८९,००० बाइसिकलें बनी। इसी प्रकार १९५०-५१में सिलाईकी ३२,९६५ मशीनें बनी थी। १९५३-५४मे

६८,७१४ मशीनें बनी। उद्योग धन्धोंकी जिन शाखाओ के सम्बन्धमें योजना आयोगके लक्ष्य तय किए थे, उनकी भी अच्छी उन्नति हो रही है। कई नए कारखाने खुल रहे हैं और आगामी दो वर्षोंमें उनका काम चालू हो जायगा।

नदी घाटी-योजनाओंमें भाखड़ा-नंगलसे पानी चलने लगा है। बिहारमें बोखारो थर्मल पावर स्टेशन चालू हो चुका है। मयूराक्षी नदीके निचले हिस्सेका काम समाप्तिके निकट है। हीराकुड, तुंगभद्रा, मयूराक्षी और दूसरे कार्योंपर काम जोरोंसे जारी है। १९५३–५४ तक यह परिस्थिति थी कि नदी घाटी-योजनाओंके कारण २८ लाख अतिरिक्त एकड़ोंकी सिंचाई हुई और साढ़े चार लाख किलोवाट बिजली उत्पन्न हुई। बिजलीसे उद्योग धन्धों और खेतीके क्षेत्रमें लाभ हो रहा है। केवल यही नहीं इसके कारण लोगोंको रेडियोकी सांस्कृतिक सुविधाएं प्राप्त हुईं।

प्रथम पंचवर्षीय योजनामें परिवहनपर ४०० करोड़ रुपए खर्च होने थे, जिनमेंसे प्रथम तीन वर्षोंमें २०० करोड़ रुपए खर्च हुए। १९५४के मार्च तक ५१० नए रेल इंजन, २,७३४ सवारी गाडियां तथा २७० मालगाडियां और आ गई। राष्ट्रीय सड़कोंके क्षेत्रमें तीन सौ मीलका कार्य समाप्त हो चुका और बाकीमें काम जारी है। ६८ बड़े पुलोंमें २० प्रथम दो वर्षोंमें बनकर तैयार हो चुके हैं तथा बाकी पुलोंमें काम जारी है। ९० करोड़ रुपए खर्च होने हैं, उनमें चुके हैं।

सामाजिक सेवाओंके क्षेत्रमें हुआ है। डी० डी० टी० द्वारा ६ मलेरियासे संरक्षण दिया गया है। मलेरिया निरोधक दवाइयाँ दी गई भी अभियान जारी रहा। २ बी० सी० जी० परीक्षण किया गया लोगोंको बी० सी० जी०के टीके मुकाबलेमें १६ रोगी निवास, २५ चिकित्सालय २४ वार्ड और ४८ योजनाके गत तीन वर्षोंमें २० नए औषधालय, २९ देहाती अ औषधालय तथा ४७९२ रोगी क्षेत्रमें १९५३के अन्त तक ९ २७६ नए प्राथमिक विद्यालय त बुनियादी स्कूल खोले गए। की बेकारीको दूर करनेके लिए १,८०८ सामाजिक शिक्षा कार्यकर्त्त प्रकार गत तीन वर्षोंमें जो प्रगति और आशातीत है।

बाँधके पत्थर

श्री भीष्मकुमार

'कल मुन्नीके घरवालेपर बिजली गिर पड़ी। बेचारा वहीं जलकर राख हो गया। हड्डियां तक कोयला हो गईं। पता नहीं, गरीब मुन्नीका कौन-सा पाप उजागर हो गया कि भरी जवानीमें रांड हो गई!'

सड़कपर गुजरती हुई किसी स्त्रीके कण्ठसे ऊपर कहीं कान गुजार राधा चौंक उठी। बरसा बढ़त हो रही थी। रात दिन हो गए पानी रुकनेका नाम नहीं लेता। न जाने क्या होगा? मकान गिर रहे थे। लोग बेघर द्वार हुए जा रहे थे। ऐसी बरसा न कभी देखी न सुनी थी। अगर

वह चौंककर उठ खड़ी देखनेके लिए जाना ही होगा। का नाम ही नहीं लेती। खत थी। एक कामसे कम नहीं। अन्न खून-पसीनेसे सींचा था। ही जायगा। नहीं, मैं उसे इस जब मन गर्मियोंमें ही अपने तो कौन इसमें ही हीरे मोती लग तर्जीके साथ घरसे बाहर भागी।

दे। --ओह, चली गई मालूम होती है। बडी जिद्दी लडकी है। किसीकी अपने सामने सुनती ही नहीं।"

रामलाल मन-ही-मन हरि-भजन करने लगा। बारिश में खटियापर उकडूं बैठे-बैठे रामलालने ये सात दिन बिता दिए थे। मुंहसे वह राधा-गोविंदका नाम ले रहा था और मनमें दोनोंकी मूर्ति बैठा रखी थी। धीरे-धीरे कन्हैयाके बराबरमें स्थापित उसके मनके भीतरकी राधाकी प्रतिमाने उसकी अपनी राधाका रूप ले लिया। बारह महीने बीत गए थे, जब उसकी बेटी भरी जवानीमें विधवा होकर उनके घर आ गई थी। पतिके मरनेपर ससुरालवालोंने भी उसे चैन नहीं लेने दिया। बहुत दिनोंसे रामलाल भी मोतिया-बिंदका रोगी था। इस साल भगवानने आंखें भी छीन लीं। राधा ही अकेली प्राण घरमें रह गई थी, जो खेतकी देखभाल कर सकती थी। कितनी ही बार रामलालने कोशिश की कि राधाको फिरसे किसीके पल्ले बांध दे, मगर ऐसा करनेपर गांववाले उसका हुक्का-पानी बन्द करने पर तुल गए। अन्तमें रामलालने सबके सामने घुटने टेक दिए। पंच-परमेश्वर यदि राधाको विधवाके रूपमें ही देखना चाहते थे, तो इसमें निरीह रामलाल कर ही क्या सकता था!

चारों ओर पानी-ही-पानी भरा था। सारे रास्ते पानीसे भरे होनेके कारण दिखाई नहीं पड रहे थे। राधा अन्धाधुन्ध खेतकी ओर भागी जा रही थी। कई बार बिजलीने कडक-कडककर उसकी दृढ़ताको भंग करना चाहा। उसने घर लौट जानेकी सोची। खेत बचना होगा, तो अपने-आप बच जायगा। लेकिन एक ही क्षणमें उसके मस्तिष्कमें दो माह पूर्वका पूरा जीवन घूम गया। उसके पांव आगे बढ रहे थे और उसके अन्तर्नेत्र दो माह पूर्वके दृश्य देख रहे थे। जेठका महीना था। गर्मी कडाकेकी पड रही थी। सारे-के-सारे किसान खाली हाथ पडे थे और आंखें फाड-फाडकर अपने-अपने खेतोंकी ओर देख रहे थे। उनमें गरम वायुके प्रचण्ड वेगसे बगूले उठते और उनसे जो धूल-भरी गरम हवा चलती, तो गालसे लगते ही रोमांच हो जाता था। तीन-तीन हाथके गन्ने गर्मीसे झुलसकर रह गए थे। नन्हें-नन्हें पौधोंकी तो किसान ही क्या थी? आषाढकी रिमझिमपर ही सारी आशाएं टिकी थीं।

किन्तु आषाढ भी सूखा रहा। जानवर प्यासमें तडप रहे थे। तालाब सूख गए थे। डोल कुओंकी तलीसे जाकर झन्न-से बोल उठते थे। पहले तो इस महीने जानवर जंगलकी हरियालीसे ही तृप्त हो जाते थे, पर इस साल चारेकी कमी पड रही थी। जंगलोंमें हरियाली का स्थान धूलने ले लिया था। रोज-रोज आदमी और जानवरोंके मरनेके समाचार फैलने लगे। आषाढ बीत गया था, पर कष्ट नहीं बीता था। मृत्यु अपना मुंह फाडे गांवोंके क्षत-विक्षत कलेवरको निगलनेके लिए आगे बढ़ती आ रही थी।

चारों ओरसे निराश, दुर्बल हृदय, सीधे-सादे ग्रामवासी गांवके पुरोहितके पास पहुंचे। "पुरोहितजी, देवतासे कहकर बरखा कराइए। फसल घट हुई जा रही है। जानवर प्यासे मर रहे हैं। अब तो मनईकी जानके भी लाले पड गए हैं।"

"शान्त रहो।"—पुरोहितने भौंह चढाकर कहा— "यदि बरखा चाहते हो, तो उसके लिए देवताको प्रसन्न करना होगा। देवता राजी नहीं है, इसलिए बरखा नहीं हुई। मुझे रात ही देवताने सपनेमें सब-कुछ बता दिया है। देवताको भेंट दो, वह तुम्हें बरखा देगा।"

गांवके पास बहती हुई नदीके पक्के बांधपर देवताका एक भग्न मंदिर था, जो अब पत्थर-मात्र रह गया था। उन्हीं पत्थरोंके ऊपर देवता विराजमान थे—एक छोटी-सी मूर्तिके रूपमें। संध्या समय उसी मूर्तिके सामने एक मिमियाते हुए बकरेकी गरदनपर गंडासेका भरपूर वार करके पुरोहित-जीने मूर्तिपर उसके रक्तके छींटे दिए और गांववाले हर्षसे नाच उठे। अब बरखा होगी, देवता जागेगा, घर भर देगा! और फिर देवता जागा, बरखा हुई और उसने घर भर दिए—अनाजसे नहीं, पानीसे। देवता जरूरतसे ज्यादा प्रसन्न हो गया। इतना दिया, इतना दिया कि लोग त्राहि-त्राहि कर उठे!

एकाएक बिजली कडक उठी और राधाकी विचार-तन्द्रा टूट गई। खेत पास ही आ गया था। बांध दिखाई पड रहा था। उसने देखा, बांधपर मोहन खडा है। वह और भी तेजीसे भागी। मोहन उसे देखकर चिल्लाकर बोला—"राधा, राधा, जल्दी आ देख, बांधमें दरार पड गई है। पानी रिस रहा है।"

राधाने देखा, नदीके पानीने बाढका रूप ले लिया था। रेला-का-रेला उछलकर आता और कगारोंको तोडकर अपने गर्भमें समा लेता। बहुत-से जानवर और फसलें बही जा रही थीं। किनारेके पेड अररराकर टूट पड रहे थे। कहींसे जानवरोंके रंभानेकी आवाज आ रही थी, तो कहींसे लोगोंके चिल्लानेकी। गांवकी फसलोंको नदीके असमय से बचानेके लिए जो पत्थरोंका बांध था, उसमें फुट-भर चौडी दरार पड गई थी।

"अब क्या होगा, मोहन ?"—राधा घबराकर बोली—"यह तो सारे खेतोको चौपट कर देगा।"

"एक काम हो सकता है।" मोहनने कहा—"अगर इस दरारमें पत्थर भर दिए जायें, तो पानीका जोर तो कम हो ही सकता है।"

"पर पत्थर कहाँसे आएँगे ?"

"क्यो ? इस टूटे हुए मन्दिरके पत्थर जो है।"

"हाय राम !"—राधा सनका खा गई—"मंदिरके पत्थर ! गाँववाले हमें जीता न छोडेंगे। याद नही, अभी दो महीने पहले उन्होने इस मंदिरके देवताको बकरेकी बलि दी थी ?"

'हुँह !"—मोहनने कहा—"तो देवताने क्या दिया ? कुएँसे निकालकर खाईमें डाल दिया। क्या तू भी इन पत्थरोको देवता समझती है ? हमारे गाँवका कुम्हार दिनमें ऐसे दस देवता बना सकता है।"

'नही, नही, ऐसा हवन किस कामका, जिसे करते हाथ जलें ? गाँववाले मार ही डालेंगे। कुछ और तरकीब सोचो।"

'और कोई तरकीब नही है।"—मोहनने सिर हिला कर कहा—"ऐसे वक्त भी आते है, जब घहराती हुई मुसीबत को रोकनेके लिए मनुष्यको अपने सारे विश्वास होम देने पडते है। देखती नही, पानीसे पौधोकी क्या दशा होती जा रही है ? राधा, पागल न बन, काममे हाथ बँटा। जिन पौधोको तूने अपनी माया निचोडकर सीचा है, उन्हे इस तरह डूबनेसे बचानेमें मेरी मदद कर।"

राधाने देखा, दरारसे पानीकी तेज धार खेतमें जा रही थी। पौधे उखडे चले जा रहे थे। वे पौधे, जिनमें राधा और मोहनने अपना सयुक्त श्रम लगाया था, रह-रहकर खडे होनेकी चेष्टा कर रहे थे और जब हो नही पाते थे, तो सहसा ढहकर बाढके पानीके साथ बहने लग जाते थे। राधाको लग रहा था, जैसे उसका सारा सुख, श्रद्धा, विश्वास और आशाएँ वहीं चली जा रही हैं। उसे याद आया जिस समय बरखा बुलानेके लिए गाँववाले निरीह बकरेकी गर्दनपर गँडासा चला रहे थे, वह अपने खेतमें अपने कुएँके बचे खुचे पानीसे खेतको सीचनेका प्रयत्न कर रही थी। उसे मालूम भी नही था कि कबसे मोहन अपनी बैलगाडी हाँकता वहाँ आ खडा हुआ था और उसने कहा था—"राधा,

मोहन हँस पडा था।
वह पानी क्या देगा ? अरे,
करनेसे बरखा हुई होती,
न पडता ला, मैं भी बँटा
"नही, तू जा, अपना
ही मरना है। और जब
तत्पर हो गया था, तो राधाने
रे, यह तैमूर लँगडा कौन था
"क्या जाने कम्बख्त
की किताबमे पढा था।"
"कहते है एक लाख
था। अरी, तुझे अकड बहुत
रहेगी, मगर मोहनका हाथ
समझती है कि मैं फालतू हूँ,
कह रहा हूँ ? अब भी
पानी बच रहा होगा। मैं
छिडके देता हूँ। देवताके
रहे, तो सारा साल पेटपर
"तू तो बुरा मान गया
मना करती हूँ ? जिसे मदद
थोडे ही है ?"
तब मोहनने और उसने
खोदा था। यहाँ तक कि
और वे कम-से-कम तीन
इसके बाद राधा और मोहनने
प्रकार सीचा था। क्या ग
थे ? मगर वे तो देवताके
देवता प्रसन्न भी हुआ, तो
एक भारी समस्या बन गई
"राधा !"—मोहनने
देख, दरार और ज्यादा
चुप खडे रहे, तो दरार बढते
राधाकी आँखोमें आँसू आ
था डर, तो दूसरी ओर उसके
विश्वास। सहसा उसने कुछ
मुखमुद्रा गम्भीर हो गई।
उठाया और दरारमें डाल

सकतेमें आ खड़ी हो गई कि मोहन चिल्लाया—"राधा, इन-लोगोंके आनेसे पहले जितने पत्थर दरारमें पड जायेंगे, वे काम आयेंगे। अपने काममें लगी रहो।"

राधाने अपने हाथ और भी तेज किए और मोहन तो जैसे मशीन ही बन गया था। गाँववाले उन्हें देखकर चिल्लाए। सबसे ऊपर पुरोहितकी आवाज सुनाई पड रही थी—"अरे दुष्टो, अब तुम इस पापपर भी उतर आए! जो देवता बरखा लाया, जिसने गाँववालोंको हर मुसीबतसे बचाया, वही इस तरह नष्ट हो रहा है। उसका घर उजाडा जा रहा है!"

राधाको पत्थर फेंकने रहनेका निर्देश करके मोहन सीधा खडा हो गया। उसने चिल्लाकर कहा—"बडी अच्छी बरखा लाया है तेरा देवता कि सारा गाँव डूबा जा रहा है! अगर उसे मुसीबतसे बचाना था, तो मुसीबत लाता ही क्यों है? उसे आनेसे पहले रोकता क्यों नहीं?"

पुरोहित क्रोधसे बेहाल हो गया। उसकी लाठी थरथराने लगी। बीचमें बाढका पानी था, नहीं तो शायद वह दौडकर एक लाठी मोहनके सिरपर जमा ही देता। उसने कहा—"अरे पापियो, तुम दोनोंके पाप से ही गाँवपर यह मुसीबत आई है। क्या गाँववाले तुम्हें जानते नहीं? अब तो अपने इस पापको रोक दो, नहीं तो देवता तुम्हें भस्म कर डालेंगे!"

मोहनने छाती तानकर कहा—"तेरा देवता बडा न्यायी है कि दो प्राणियोंके पापका बदला सारे गाँवसे चुका रहा है! हम तो चाहते हैं कि इस पानीकी झडीको रोककर देवता ऐसी आग पैदा करे, जिसमें हम भस्म हो जायें और गाँववालोंको बरखासे छुटकारा मिले। अगर तेरे देवता में इतना बल है, तो कर दिखाए न अपनी-सी।"

पुरोहित गाँववालोंकी ओर मुडा। उसके विश्वास-भाजन वे ही थे। वह उत्तेजित होकर बोला—"रे मूर्खो, देखते क्या हो? इन पापियोंकी बातोंको क्या सुन रहे हो? अगर देवताका मंदिर नष्ट हो गया, तो समझ लो कि इस बाढ को और कोई नहीं रोक सकेगा।"

गाँववाले आगे बढे। मोहन चिल्लाया—"भाइयो, अपने खेत और खलिहानके साथ जुआ न खेलो। इस बाँध में एक फुट चौडी दरार है। जब तक यह पत्थरोंसे भरी नहीं जायगी, कोई गाँवको नहीं बचा सकेगा। तुम धरती-माताके किसान हो। धरतीको छोडकर ऊपर आसमान की ओर न ताको। यह पुरोहित तुम्हें आसमानकी ओर ताकनेको कहता है, मैं तुम्हें धरती-माताकी ओर ताकनेको कहता हूँ। इस बाँधको बनाए रखो, तो तुम लोग बाढसे बचे रहोगे। नहीं तो यह पुरोहित और इसका देवता खुद तो डूबेंगे ही, तुम्हें भी ले डूबेंगे। तुमने इन पौधोंको अपने हाथोंसे लगाया है, अपने रक्तकी बूँदोंसे सींचा था। आज देखो, ये सब पानीके सामने बेबस हुए बहे जा रहे हैं। इनकी ओर देखो, ये अपने नन्हें-नन्हें तिनकोंको डूबते हुए आदमी के हाथोंकी तरह तुम्हारी ओर उठा रहे हैं। इन्हें बचाओ। इस दरारमें सब मिलकर इस मंदिरके पत्थरोंको भर दो."

किसान सबसे ज्यादा व्यवहारिक मनुष्य होता है। उनकी आँखें अपनी डूबती-उतराती फसलोंकी ओर गईं कि पुजारीजी चिल्ला उठे—"अरे पापियो, पापकी बातें सुन-सुनकर क्यों नरकका द्वार खोल रहे हो? अगर मंदिरके इन पत्थरोंको हाथ लगाया, तो इन दो पापियोंकी तरह तुम भी रौरव नरकमें जाकर गिरोगे।"

मोहन अपने समस्त जोरसे चिल्लाया—"भाइयो, जब सारा गाँव बाढमें बह जायगा, तब भी तुम्हारे लिए रौरव नरक खुला हुआ है। इस जन्मके रौरव नरकसे अगले जन्मका रौरव नरक अच्छा है। देखो, देखो, राधाके भरे हुए पत्थरोंसे बाढका पानी कुछ रुकने लगा है । अगर यह दरार पूरी भर गई, तो हम बाढसे बच जायेंगे। अगर यह पुरोहित तुम्हें रोकता है, तो इसकी मूर्तिके साथ इसे भी इस दरारमें फेंक दो.. ।"

हाथ कंगनको आरसी क्या! सचमुच दरारसे आते पानीका वेग बहुत कम हो गया था और राधाको सिवा उसमें पत्थर भरनेके कुछ और सुध नहीं थी। सारे गाँववाले चित्रलिखित-से खडे थे। किसीमें आगे बढनेकी हिम्मत नहीं थी। वे कभी पुजारीका मुँह ताकते, तो कभी मोहनका।

मोहनने जब यह देखा, तो बोला—"अगर तुम लोग अपनी संतानको भी अपने देवतापर वार सकते हो, तो वारो। मैं तुम्हें दिखाता हूँ कि किस तरह बाढ रुक सकती है.... ?"

मोहन अपने काममें फिर जुट गया। गाँववाले खडे देखते रहे। पुरोहित उन्हें बार-बार उकसा रहा था। किन्तु व्यवहारमें गाँववाले कुछ और ही देख रहे थे। उनके सामने दरार भरती जा रही थी और पानीका वेग कम होता जा रहा था। यहाँ तक कि जब पुरोहितने देखा कि उसका सारा प्रयत्न असफल जा रहा है, तो वह चिल्लाया—"अच्छा, अगर यह छोकरा इस बाढको रोक दे, तो मुझे इस देवतापर बलि चढा देना और अगर यह न रोक सके, तो इन दोनों पापियोंको देवताके आगे बलि चढाना होगा!"

इससे पहले कि गाँववाले कुछ बोल सकें, मोहन चिल्लाया—"मंजूर है!" पुजारीको हर्ष हुआ। दरार बहुत

लम्बी-चौडी थी। पानीका वेग बहुत तीव्र था। दो प्राणी उसे रोक सकें, यह लगभग असम्भव ही था।

गाँववाले तमाशा देख रहे थे। राधा और मोहन तेजी के साथ पत्थरोको दरारमें भरते जा रहे थे। अन्तमें जितने पत्थर वहाँ खडे थे, वे सब समाप्त हो गए, फिर भी नलके पानीकी तरह एक इचकी धारा दरारमे से निकल ही रही थी। राधा और मोहनने असहाय होकर इधर-उधर देखा। पुरोहित चिल्लाया—'देखा, ये पापी धारा को नही रोक सके। देवता अब भी अपना प्रकोप दिखा रहा है। मैं कहता हूँ कि अब वह इन दोनो नराधमोकी बलिसे ही प्रसन्न होगा अरे अरे, पापियो, यह क्या करते हो "

सबके देखते देखते मोहनने उस अतिम पत्थर—देवता की मूर्तिको उठाया और बाँधकी उस ओर उतर गया, जिधर दरारमें पत्थर फेंके गए थे। राधा चिल्लाई—'मोहन, यह क्या कर रहा है? वहाँ बहुत फिसलन है। काई जमी हुई है। पैर रपट जायगा हाय राम!"

मोहन सचमुच रपट गया था, मगर सौभाग्यसे वह सीधा दरारमें जाकर गिरा। उसने देवताकी मूर्तिको कसकर पकड रखा था। उसने एक पत्थर पाससे उठाया और उस मूर्तिको उस सूराखमें कसकर ठोक दिया, जहाँसे पानीकी पतली धारा बही आ रही थी। फिर ठोकनेवाले पत्थर को यथास्थान लगाकर वह अन्य पत्थरोको ठीक करने लगा।

गाँववाले इस चमत्कारको देखनेके लिए बाढके पानीको लाँघ-लाँघकर किनारेपर आ गए थे। दरारमें से आता पानी बिल्कुल बन्द हो गया था। मोहन दरारके किनारे पर खडा हुआ चिल्ला चिल्लाकर कह रहा था—"भाइयो, देखो, देवताने हमारे बाँधकी रक्षा की है। देखो, इस तरह

के देवताका यह उपयोग
इसका उपयोग यही है।"

पुजारीने कहा—"रे
करता है, तो अपनी पीठ
स्वय अपना शरीर
मोहन तो निमित्त-मात्र है

मोहन यह बात
अनर्थ होता देखकर
केवल इतना ही कहा—"
बीज डालते हो, तो फल
कहने-मात्रसे नही हो
करो ।"

और गाँववालोंने
हरखू पहलवान उनकी प
पुरोहितजीको अपनी दोनो
हितजी गिडगिडाते ही रह
आया था। उन्होंने
जो देवता मोहनके हाथ
सिद्ध हुआ, वह भी झूठा है

हरखूने एक पल
विरोधकी प्रतीक्षा की और
जीको बहती हुई नदीकी

गाँववालोंने मोहनको
ऊपर खीचा। ऊपर
को तिलाजलि देकर उससे
ने कहा—"राधा और

जब अन्धे रामलालको
सुनाया कि अब राधाका
रामलालने प्रसन्नताके

देखो अब मैं गाड़ी चलाना
सीख तो गई हूँ

हाँ चला तो
लेती हो
लेकिन रोकना
ही जरा

न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

भारतीय समाज विश्वके इतिहासमें एक महती संस्था है। इसके अन्तर्गत करोडों मानवोंका जीवन संचालित होता आया है और इसके आदर्शोंके अनुसार चलकर वे अपनी विविध शक्तियोंका सतुलन प्राप्त करते रहे हैं। इस समाज का इतिहास लगभग पाच सहस्र वर्षसे भी अधिक प्राचीन है। इसके अन्तर्गत भारतीय समाज निर्माताओंने मानवकी हितबुद्धिसे भौतिक और अध्यात्म जीवनकी अनेक संस्थाओंका निर्माण किया है। भारतीय धर्म, दर्शन, आर्थिक जीवन, वर्ण और आश्रम ये और इसी प्रकारके अन्य कितने ही तत्व हमारे सामाजिक इतिहासमें महत्वपूर्ण प्रयोग कहे जा सकते हैं। पर इन सबमें सुलभ सुखकारी एवं महत्वपूर्ण संस्था भारतीय परिवार है। यह अपूर्व ज्योति इस देशमें प्रकट हुई। इस आलोकसे पूर्व युगोंमें यहाके मनुष्योंको जीवनमें मार्ग-दर्शन मिला। आज भी उसकी भास्वर ज्योति हमारे लिए अत्यन्त प्रिय है। परिवार के रूपमें एसा रसका सोता हमारे समाजमें प्रकट हुआ, जो हरएकके लिए सुलभ था। उसने मानवके जीवनको सुख और शान्तिसे सींच दिया। हिन्दू परिवार हमारे परिवर्तनशील इतिहासमें स्थायी ध्रुव बिंदु है। इस संस्कृतिमें जो-कुछ भी वरेण्य और रसपूर्ण है, वह सब 'हिन्दू-परिवार' इस एक सूत्रमें समाया हुआ है। इतिहासके किन्हीं धुंधले युगोंमें परिवारका प्रथम आविर्भाव खोजनेके लिए कई प्रकारकी कल्पना की जा सकती है, किंतु इस संस्था की नींवमें इसके उष कालमें ही इसके शिल्पी कविने मानो अमृतका घट स्थापित कर दिया था। इसी कारण कालके अनन्त प्रवाहमें हिन्दू-परिवारका अस्तित्व अक्षय है। श्रद्धा, यज्ञ, ज्ञान, तप, प्रेम सत्य, व्रत, नियम ये सब महान गुण मिलकर परिवारकी रक्षा करते हैं और उसे प्रत्येक पीढीमें नई शक्ति और नए रससे आगे बढाते हैं।

परिवारका मूल

स्त्री और पुरुष दोनों परिवारके मूल हैं। नदीके दो तटोंकी भाँति वे सहयुक्त हैं। दोनोंके बीचमें ही जीवन की धारा प्रवाहित होती है। वैदिक-साहित्यमें स्त्री और पुरुषके सम्मिलनकी उपमा पृथिवी और द्युलोकसे दी गई है। जैसे शुक्तिके दो दलोंके बीचमें मोतीकी स्थिति होती है, वैसे ही स्त्री और पुरुष इन दोनोंके मध्यमें सतान हैं। द्यावा-पृथिवी एक ही संस्थानके परस्पर पूरक हैं। आकाशचारी मेघ वृष्टि द्वारा पृथिवीको गर्भ धारण कराते हैं और तब वृक्ष-वनस्पतियोंका जन्म होता है। यही स्थिति स्त्री-पुरुष या पति-पत्नीकी है। वे दोनों दो होते हुए भी एक हैं। दोनोंके इस अभेदकी स्वीकृति विवाह-संस्कार है। तत्सम्बन्धी मन्त्रोंमें यह बात स्पष्ट कही गई है

अमोऽहमस्मि सा त्वम्। सा त्वमसि अमोऽहम्।
सामाहमस्मि ऋक् त्वम्। द्यौरहं पृथिवी त्वम्।

अर्थात्—मैं यह हूँ। तू वह है। तू वह है। मैं यह हूँ। मैं साम हूँ। तू ऋक् है। मैं द्यौ हूँ। तू पृथिवी है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो स्त्री वृत्तका व्यास है और पुरुष उसकी परिधि। जिस प्रकार ऋग्वेदके मन्त्रको ही आधार बनाकर उसे सामके गीतमें परिवर्द्धित किया जाता है (ऋचि अध्यूढं साम गीयते।—छान्दोग्य उपनिषद् १।६।१) और जिस प्रकार वृत्तके व्यासको तिगुना करके परिधि बनती है, उसी प्रकार स्त्रीके जीवनसे गुणित होकर पुरुषका जीवन बनता है। यही पति-पत्नी या गृहस्थके जीवनका साम-संगीत है। द्युलोक और पृथिवी-लोकके साथ पुरुष और स्त्री या पति-पत्नीकी उपमा देनेका स्पष्ट उद्देश्य यही है कि विश्व रचनाके मूलभूत हेतुकी भांति वे दोनों द्विधाविभक्त होते हुए भी जीवनके समस्त व्यापारों में एक-दूसरेके लिए अनिवार्य हैं। जायसीने क्या ठीक कहा है—'होतैं बिरवा भए दुइ पाता। पिता सरग औ धरती माता।।' जैसे ही सृष्टिका बीज अंकुरित हुआ, वह दुपतिया हो गया। उसमें आकाश पिता और धरती माता बनी। जैसे ही विधाताकी लेखनी यह अनन्त रहस्य भरी कथा लिखने चली, उसकी दो फाक हो गईं। एक वृक्ष था, उसमें दो डाल फूट निकलीं। चांद-सूर्य, दिन रात, सृष्टिके सब द्वन्द्व एक-दूसरेके संघाती बने हैं। विश्वका यह विधान सृष्टिके ललाटपर अंकित है, जिसे जब जो चाहे पढ सकता है। इसके अनुसार गृहस्थकी व्याख्या हिन्दू धर्मकी उस सूक्ष्म दृष्टिको प्रकट करती है, जिसके द्वारा स्थूल और नश्वरका सबन्ध प्रकृतिके नित्य और सूक्ष्म विधान के साथ मिलानेका प्रयत्न किया गया था। धर्मशास्त्रके क्षेत्रमें मनुने इस तथ्यको स्वीकार करते हुए यह सिद्धान्त स्थापित किया—'यो भर्ता सा स्मृताङ्गना'। (मनुस्मृति, ९।४५) अर्थात् जो पुरुष है, वही स्त्री है। इस मत का उद्देश्य यह बताना है कि गृहस्थके जीवनमें जितना पतिका विस्तार है, उतना ही पत्नीका भी।

गृहस्थकी चर्चा करते हुए ऊपर संकेत किया गया है, उसके अन्तरालमें स्त्री और पुरुष समान रूपसे व्याप्त हैं। एक विद्युत्के समान और दूसरा चुम्बकके समान स्वधर्ममें प्रवृत्त होता है। एक दृढ़ और दूसरा सुकुमार है। दोनो एक ही तन्त्रके ताने-बाने हैं। भारतवर्षमें इसी आदर्शको सनातन कहा गया है। यह यहांकी प्राचीन गृहस्थोपनिषद् है, जो विश्वके ध्रुव विधानके अनुसार जीवनको प्रेरणा देती है। जो सूक्ष्म और नित्य है, वही मूर्त्त-रूपमें प्रकट होता है। अतएव गृहस्थके इन उच्च भावोंसे असंख्य परिवारोंने प्रेरणा ग्रहण की है और उसे आत्मसात् किया है, जो परिवारके क्षेत्रकी निजी वस्तु है।

धर्म और यज्ञ

हिन्दू-परिवारके सम्बन्धमें 'धर्म' शब्दपर भी विचार करना आवश्यक है। धर्मसे तात्पर्य उन सत्यात्मक नियमों से है, जो व्यक्ति और समाजके जीवनको धारण करते हैं। यह धर्म कर्त्तव्यके रूपमें परिवारके प्रत्येक प्राणीके सम्मुख आता है। पिता, माता, पुत्र, बन्धु, जिनका परिवारसे नाता होता है, वे सब कर्त्तव्यके ऋणसे बंधे होते हैं। जहां कर्त्तव्य है, वहां विरोधकी स्थिति नहीं रह जाती। कर्त्तव्यका आग्रह व्यक्तिके विचार और कर्मको तनावसे ऊपर उठा देता है। उसके द्वारा व्यक्ति सेवाका मार्ग अपनाता है। इसी भावना का दूसरा नाम यज्ञ है, जिसमें व्यक्ति दूसरेके लिए अपने स्वार्थ और सुखका समर्पण करके दूसरोंकी सहायता करने की युक्ति प्राप्त करता है। उस जीवन-विधिको यज्ञ कहते हैं। हिन्दू-परिवारकी व्यवहारिक स्थिति इसी भावनाके बलपर टिकी है। इस प्रकारके प्रेममय वातावरणमें परिवारके सदस्य स्वयं अपने-अपने कर्त्तव्यको पहचानकर उसका पालन करते हैं। दूसरोंसे छीन-झपटकर अपने लिए कुछ प्राप्त करनेकी बात वे मनमें नहीं लाते। यही पारिवारिक जीवनका रस है। इसी स्थितिका नाम स्वर्गका जीवन है। जहां प्रत्येक व्यक्ति दूसरेकी सहायता और सेवा करनेकी बात सोचता है, वही आदर्श स्थिति— स्वर्ग—है।

इसके विपरित जब हम प्रत्येक वस्तुको अपने ही स्वार्थकी दृष्टिसे देखते हैं और अधिकारकी बात कहकर केवल पाने या लेनेकी ही आकांक्षा करते हैं, तो हम संघर्ष

प्रेमकी स्थितिका अधिकतम
प्रीतिका सौरभ सबसे मधुर
परिवार था। रामायणमें
वह स्वार्थपरताके ऊपर सेवा-
रामायणके आदर्शोंसे जो शीतल
हिन्दू-पारिवारिक जीवनको
वारिक जीवनके स्वास्थ्यके
की आवश्यकता है, वह
पूर्ण मात्रामें प्राप्त हो जाता है।

परम्पराकी जी

हिन्दू-समाजका जीवन
से सचालित होता है। जो
से नवीनके साथ मिलकर
इस परम्पराका क्षेत्र अत्यन्त
जो इसके अन्तर्गत न आता हो।
ज्ञान, भक्ति, पुण्य, दान, कथा
उत्सव, संस्कार, दया, उदारता
मूल्यवान , सब
सुलभ होते हैं। परम्पराकी
संस्कृति है। हम प्रायः आत्म
भारतीय समाजमें कहीं कोई
संस्पर्शसे बचाती है और जो
जन्म देती है। यह शक्ति
रूप है। परम्पराकी यह
पूर्वापर क्रमसे प्राप्त होती है
परिवर्द्धित होती हुई आगे बढती
होनेके नाते हमें अपनी इस
होना चाहिए। समाजशास्त्रकी
के अनेक पहलुओंकी रक्षा की
और कर्मके कितने ही मूल्यवान्
अविच्छिन्न धारासे हमारे पास
साथ यह भी सचाईसे माना जा
प्रियताकी हमारी सामाजिक
करते रहनेसे ही स्वयं बची
विकास और संतुलित प्रगतिकी
सबसे अधिक देखी जा सकती
कुछ भी सुन्दर

है और समाजके प्रत्येक स्तरपर उसकी अभिव्यक्ति हो रही है। सांस्कृतिक जीवनको सँभालनेके लिए कुल-संस्कृतिको ठीक करना आवश्यक है। प्राच्य देशोंकी सभ्यतामें कुलका अत्यधिक महत्व रहा है। कुलका आचार, कुलकी मर्यादा, कुलका गौरव इन शब्दोंका जीवनमें वास्तविक महत्व था। इनसे लोगोंके कर्म और विचारों पर नैतिक प्रभाव पड़ता है। मनुष्योंके सब प्रयत्न कुलकी प्रतिष्ठाको ऊँचा उठानेके लिए होते थे। इस प्रकारके श्रेष्ठ कुलोंको महाकुल कहा जाता था।

कुलोंकी महत्ता

एक बार विदुरने युधिष्ठिरसे कहा—"असत्य और बलसे धन प्राप्त कर लेना सभव है, किन्तु महाकुलोंका जो आचार है, वह धनसे नही प्राप्त किया जा सकता।"

इसपर धतराष्ट्रने कहा—'मैंने सुना है कि जो धर्म और अर्थमें बढे-चढे हैं, जो बहुत पढे-लिखे हैं, वे भी महाकुल की प्रशसा करते हैं। हे विदुर, मैं जानना चाहता हूँ कि महाकुल किस प्रकार बनते हैं।"

विदुरने कहा—"तप, दया, ब्रह्म, ज्ञान, यज्ञ, सदा अन्न दान, शुद्ध विवाह और सम्यक् आचार—इन सात गुणोंसे साधारण परिवार भी महाकुल बन जाते हैं। जो किसी प्रकार सदाचारका अतिक्रमण नही करते, जो विवाह-सम्बन्ध ठीक प्रकार करते हैं, जो जीवनमें झूठका मार्ग छोडकर धर्मका आचरण करते हैं, जो अपने कुलके लिए विशिष्ट कीर्त्ति उपार्जित करनेका प्रयत्न करते हैं, उनके कुल महाकुल कहलाते हैं। जो आचारसे हीन हैं, उन कुलोंमें कितना भी धन हो, वे कुल प्रतिष्ठा नही प्राप्त कर सकते। किन्तु अल्प धन होनेपर भी सदाचार ठीक होनेसे कुल लोकमें यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं और उनकी गिनती महा-कुलोंमें होती है।" (मनु० ३।६३–६७, उद्योगपर्व, ३६।२१-२९)।

यहाँ बलपूर्वक यह मत प्रकट किया गया है कि धन कुलोंकी महत्ताका कारण नही, कुलकी ऊँचाई तो धर्मके पालन और परिवारमें होनेवाली धर्मके नियमोंकी नई-नई व्याख्याओंसे होती है। धर्मके सद्गुणोंसे परिवारका सिंचन करना यही परिवारके प्रत्येक सदस्यके मनकी अभिलाषा रहती है। परिवारको महान् बनाओ, श्रेष्ठ बनाओ, उसे रूप-सपन्न करो, प्राण-सपन्न करो, अर्थ, धर्म और काम-सज्ञक पुरुषार्थोंसे सपन्न करो, अपने जीवनकी शक्तिकी नवीन धारा उसमें प्रवाहित करो—इस प्रकारकी उत्साहमयी मानसिक स्थिति परिवारकी उन्नतताका कारण बनती है। कुलका प्रत्येक सदस्य सोचता है, मेरे कारण इस महती परम्परा का विशकलन न होने पाए, यह शृखला मेरे द्वारा लुप्त न हो, मैं इसमें निर्बल कडी न बनूँ, जिससे इसका तन्तु उच्छिन्न हो। प्रत्येक गृहपति इस प्रकारकी भावनासे यावज्जीवन अपने परिवारका सवर्द्धन करता रहा है। पिता-माता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बहनोंसे लहलहाता हुआ परिवार-रूपी भवनोद्यान कितना रमणीय और रसपूर्ण होता है, इसे शब्दोंमें कहना कठिन है।

स्त्रीका महत्त्व

ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दू-परिवार-रूपी वृत्तका व्यास या ध्रुव-बिन्दु पत्नी है—ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुव विश्वमिद जगत्। ध्रुवास पर्वता इमे ध्रुवास्त्री पतिकुले इयम्॥ (मामन्त्र ब्राह्मण, १।३।७)। स्त्री जीवनके रसका अक्षय्य स्रोत है। उसकी महिमाको किस प्रकार कहा जाय? विवाह-सस्कारके समय इस प्रकारके ओजस्वी स्वर सुने जाते हैं

यस्या भूत समभवत् यस्या विश्वमिद जगत।
तामद्य गाथा गास्यामि स्त्रीणा यदुत्तम यशः।

अर्थात्—यह सत्य ही है कि भूत और भविष्य समस्त जगत्‌के जन्मका कारण स्त्री है। उसके उत्तम यशकी आराधना भारतीय सस्कृतिमें भरपूर हुई है। इस सम्बन्धमें मनुके एक वाक्यपर विचार करना आवश्यक है, जिसे ठीक न समझनेके कारण स्त्रीके उत्तम यशको हम धूमिल हुआ मानने लगते हैं। मनुने लिखा है

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।
(मनुस्मृति, ९।३)

अर्थात्—कुमारी अवस्थामें पिता, विवाहित अवस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र स्त्रीकी रक्षा करते हैं, स्त्री-स्वातन्त्र्यकी अधिकारिणी नही होती। इस स्थूल अर्थके पीछे प्राचीन हिन्दू-धर्मशास्त्रका एक कानूनी सिद्धात छिपा है। मनुके अतिरिक्त और भी धर्मशास्त्रोंका ऐसा ही मत था। गौतम धर्मसूत्रके अनुसार 'अस्वतन्त्राधर्मेस्त्री' और वशिष्ठ धर्मसूत्रके अनुसार 'अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना' आदि।

वस्तुत तन्त्रका अभिप्राय कानूनी व्यक्तित्व है। स्त्रीका और पतिका तन्त्र विवाहके समय एकम मिल जाता है। विवाह द्वारा स्त्री अपने 'स्व' को पतिके 'स्व' में मिला देती है। जन्मके समय पृथक्-पृथक् केन्द्रके जो दो वृत्त बनते हैं, वे कालक्रमसे एक-दूसरेके पास आकर परस्पर इस मिल जाते हैं कि उनका केन्द्र एक हो जाता है। और पुरुष-तन्त्र इन दोनोंका एकान्त

काम, मोक्ष इनमें से प्रत्येक क्षेत्र और स्तरपर होता है। दोनोंका काम-तत्र एक न हो, तो सवति नहीं हो सकती। स्त्री-पुरुषके काम-तत्रकी सर्वात्मना अभिन्नता ही गृहस्थके प्रजा-उत्पादन-रूप कर्मको पवित्र प्रक्रिया बनाती है। मन से, वचनसे, कर्मसे दोनोंका काम-तत्र जब एक हो जाता है, उस तन्निष्ठ व्रतका नाम ही पातिव्रत धर्म है। व्यक्तिकी दृष्टिसे देखा जाय, तो एक ही आत्मतत्व स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी इन अनेक रूपोमे स्थूल पार्थिव उपकरणो द्वारा शरीर प्राप्त करता है। शरीरमे रहते हुए उसका व्यक्तित्व अनेक प्रकारके विचारो और कर्मोमे प्रकट होता है। इस प्रकारके जितने भी पहलू हैं, जितने भी क्षेत्र हैं, वे सब विवाह के उपरान्त स्त्री और पुरुषके लिए पृथक् नहीं रह जाते, रह नहीं सकते, अन्यथा उनके ही अशमें दोनोका मिलन अपूर्ण और खण्डित रह जायगा। अतएव हिन्दू-धर्मशास्त्रके अनुसार पति-पत्नीके काम-तत्रका विस्तार बिल्कुल अभिन्न, समान और एकात्मक है। उससे बढकर एकापन मार्गका या ऐकान्तिक धर्मकी कल्पना सम्भव नहीं। इसी प्रकार विवाह द्वारा दानके धर्मका तत्र भी एक हो जाता है। 'पत्युर्नो यज्ञसयोगे' (४।१।३३) सूत्रसे पत्नी शब्द सिद्ध होता है, अर्थात् विवाह-यज्ञ द्वारा जो स्त्री-पुरुषका सयोग होता है, उससे पत्नी अपना यह अनिवार्य पद और अधिकार प्राप्त करती है। इसी कारण यज्ञ पत्नीके बिना असम्भव है। तीर्थ, जप, होम, दान, व्रत सबमे स्त्रीका साहचर्य अनिवार्यतया आवश्यक है। जहाँ यह साहचर्य नहीं, वहाँ वह कर्म अपूर्ण है। कविने ठीक ही कहा है

> वधूद्विज: प्राहतवैष वत्से वह्निर्विवाह प्रति कर्मसाक्षी
> शिवेन भर्त्रा सह धर्मचर्या कार्या त्वया मुक्त विचारयेति।
>
> (कुमारसभव, ७।८३)

पति-पत्नी दोनोकी धर्मचर्या यावज्जीवन साथ होनी चाहिए। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।६।१) के अनुसार 'सहधर्म चरतम्' प्रतिज्ञाके साथ किया हुआ विवाह-सम्बन्ध ही उत्तम प्राजापत्य विवाह है (मि० गौधसू० ४।५.)। रामायण (१।७३।२६) मे जनकने इसी भावसे कहा है—'इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।'

मुक्तविचार होकर साथ धर्माचरण करनेका तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्री अपनी विचार-शक्ति, प्ररणा और भावोको तिलांजलि दे दे। इसका अर्थ इतना ही है कि

एक हो जाता है।
अभिन्नताकी बात कहकर
व्यक्तित्वको पतिके तत्रमें लीन
ले लिया जाता है। किन्तु
जो-कुछ पतिके तत्रमें है, वह
है। सिद्धान्त रूपमें इस
भी व्यवहारमें कई प्रकारसे
करनेकी अनुमति धर्म-
'स्त्री-धन' की सज्ञा दी
आदि अनेक प्रकार होते थे।
लिए पुरुष चुन लिया, उसे पति
प्राप्त कर ली, तो फिर
के उतार-चढ़ाव उस
इस आदर्श कानूनी मतके
शास्त्रकारोंने कई प्रकारसे
भी स्वीकार किया।
या मृत हो जाय या सन्यास
तो पतिका तत्र तो उसके साथ
पर स्त्रीका तत्र उसके साथ
वह प्रत्यक्ष रहता ही है।
आवश्यक है। वह पुन.
कानूनी व्यक्तित्व मानना
आदि रख सकेगी और धन,
बन सकती है। यदि स्त्रीके
तत्र पुत्रके तत्रमें विलीन हुआ
स्थितिमें 'रक्षन्ति स्थविरे
होता है। स्त्री-धनके क्रित
हिन्दू-कानूनमें मान्य किया
हासिक विकास और कानूनी
सबके पीछे मूल सिद्धान्त
परिस्थितिमें स्त्री-पुरुषके
लौकिक और धार्मिक
हो जाते हैं। और इस
तत्र पतिके तत्रमें लीन रहता
कानूनी स्थितिसे उत्पन्न हुए
जैसे जब युधिष्ठिर द्यूतमें
जो अपने पतिके तत्रमें न

दास स्वय अधन होता है, वह धन नही रख सकता, और न दान ही कर सकता है। दासका तत्र स्व-तत्र नही रह जाता, अतएव जैसे ही युधिष्ठिर दास हुए कि पत्नीका तत्र, जो पहले उनके पतिरूपमे लीन था, वह अलग हो गया। इस प्रकारका मत रखनेवाले कुछ अन्य सभासद् भी थे। इन्ही प्रश्नोकी विवेचना करके निर्णय देनेके लिए द्रौपदीने भीष्म का आवाहन किया था, किन्तु भीष्मने अपना स्पष्ट मत व्यक्त नही किया।

कौमार-अवस्थामे स्त्रीका तत्र पिताकी रक्षामे एव उसके अधीन कहा गया है। यह स्थिति भी इसी बातकी द्योतक है कि यदि कुमारी कन्याका कानूनी व्यक्तित्व स्वीकार किया जाता, तो व्यवहारमे कोई उसे न्यायालयमें भी खीचकर ला सकता था। किन्तु यदि उसका कानूनी व्यक्तित्व नही है, तो उसे पिताकी रक्षा प्राप्त है, और न्यायालयकी रक्षामें उसे नही लाया जा सकता। इस प्रकारकी स्थिति केवल हिन्दू-धर्मशास्त्रकी ही विशेषता न थी। पुरुष-प्रधान गृहस्थ-धर्मसे सचालित समस्त आर्य-जातिका ऐसा ही धर्म था। रोम देशके कानूनमें भी ठीक मनु-जैसा ही सिद्धात था। वहाँ कुमारी कन्यापर पिताका, विवाहित अवस्थामे पतिका और वृद्धावस्थामें पुत्रका अधिकार माना जाता था। यही पुरुष-प्रधान गृहस्थ-पद्धति (पाट्रिया पोटेस्टा) थी। ब्रह्मचर्य-आश्रम के नियमोके अनुसार ब्रह्मचारीके लिए गुरुकुलमे निवास आवश्यक था। उस अवस्थामें यह कल्पना की जाती थी मानो ब्रह्मचारी उतने समयके लिए गुरुके गर्भमें वास कर रहा है। यह भाव आलकारिक था। कालान्तरमे धर्मशास्त्रकारोने विचार किया कि स्त्रीके लिए पतिके अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्तिमे इस प्रकारकी तल्लीन स्थितिकी कल्पना असम्भव है। अतएव विवाहको ही स्त्रीके लिए मौञ्जीबन्धन, उपनयन या गुरुकुलवास माना गया। पतिके जीवन-कालमें किस प्रकार पत्नी पतिसे अधिक अपने लिए शारीरिक-तत्रका विस्तार नही चाहती थी, इसका अच्छा उदाहरण गान्धारीका वह दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार उसने शारीरिक सामर्थ्यमें अपने पतिसे अधिक न होनेके लिए आँखोपर पट्टी बाँध ली थी। एक आदर्श दृष्टिकोण यह भी था कि पति और पत्नीके तत्र एक-दूसरेमें इस प्रकार लीन हो जाते हैं कि जन्मान्तरमें भी अलग नही होते। पतिके शरीरसे प्राण वियुक्त होनेपर भी पति-पत्नीके तत्रोंकी अभिन्नता यमके लोकमे भी नही मिटती और यमको भी उसे स्वीकार करना पडता है। सावित्री-सत्यवान्का उपाख्यान स्वय यमके द्वारा इसी व्याख्याकी स्वीकृति है। स्त्री और पुरुषका जीवन जब साथ-साथ बढता है, तो पतिके परिवर्तनशील तत्रके साथ पत्नीके तत्रका विस्तार भी घटता-बढता रहता है। राम-वनमें, सीता घरमें, यह दो तत्रोका अमिलन होता, अतएव सीता छायाकी भाँति रामके तत्रका अनुसरण करती है। वनमें भी रावण उनका शरीर-मात्र हर ले गया, मनका तत्र रामके साथ अभिन्न बना ही रहा। इस प्रकार मनुने स्त्रीके पृथक् तत्र या स्वातन्त्र्यका निराकरण करके धर्मतत्त्वविद्की दृष्टिसे पति-पत्नीकी एकतत्रताका ही प्रतिपादन किया है। मनुकी भाषा कानूनी है। उसका अर्थ और परिणाम भी उसी प्रकार समझे जाने चाहिएँ। स्त्री-निन्दा और कुत्सा की दृष्टिसे कुछ कह डालनेकी भावना मनुके वाक्यमे नही है। आर्य-जातिकी सभी शाखाओमे स्त्री-पुरुषके तादात्म्य-सम्बन्ध एव उससे प्रेरित आर्थिक और सामाजिक व्यवहार की व्याख्या ही स्मृतिकारोको इष्ट थी। इस विषयमे अर्वाचीन विचारधारासे विचार करते हुए हमारा मत कभी-कभी क्षुभित भले ही हो, किन्तु जहाँ तक हिन्दू-परिवारका सम्बन्ध है, दाय-भाग और उत्तराधिकारके नियमोमें इस सिद्धातके कारण कोई विशेष अडचन उत्पन्न नही हुई और इस परिपाटीने सपत्तिके उत्तराधिकारकी एक ऐसी पद्धतिको जन्म दिया, जो बहुत दिन तक टिकी रही और जिसके कारण कम-से-कम वैषम्य या असुविधा उत्पन्न हुई। यो तो रिक्थ या उत्तराधिकारकी कोई भी प्रणाली सब परिस्थितियोमें निर्दोष या त्रुटिहीन नही कही जा सकती।

हिन्दू-परिवार भारतीय सस्कृतिका सचालक सूत्र रहा है। समाजकी शक्तिका स्रोत परिवारका जीवन है। अनेक परिवर्तनोके मध्यमें हिन्दू-परिवारकी यह ध्रुव और दृढ शक्ति बारबार उभरी हुई दिखाई पडती है। परिवार की इस शक्तिका विघटन समाजके लिए हितकारी नही हो सकता। नए परिवर्तन आवश्यक हैं, किन्तु उनकी अन्तिम कसौटी यही है कि उनके द्वारा परिवारका सघटन दृढ बने। उसकी शीतल वायु व्यक्तिके जीवनको कुसुम बनावे। उसमें एक-दूसरेके प्रति सरस सबधोकी सृष्टि हो। परिवारके सदस्योके मन परस्पर उदार भावनाओसे युक्त हो, और परिवारकी यह समष्टि एक सतुलित आदर्श समाजको जन्म दे सके। हिन्दू-परिवार सामाजिक जीवनके क्षेत्रमें इस देशका सबसे मूल्यवान प्रयोग है। उसे सवर्द्धित, पल्लवित और पुष्पित करना उचित है, ढीला करना नहीं।

इस समय भी हिन्दू-परिवारपर प्रभाव डालनेवाले आर्थिक सामाजिक तत्व सक्रिय हैं। एक प्रकारसे हिन्दू-परिवारकी पद्धति हिन्दू-समाजके स्वस्थ विधानकी कसौटी है।

कुटुम्ब और समाज दोनोंका हित एक है। वह सघर्ष और विरोधपर आश्रित नही। हिन्दू-परिवारके विधान का मौलिक सूत्र उसका वही अभिन्न तत्र है, जिसकी ओर ऊपर सकेत किया गया है। एक मूल परिवारमें से आवश्यकतानुसार चाहे जितनी नई शाखाएँ फूटती जाती हैं। हमारे देखते-देखते पुत्र पिता बनते जाते हैं और नए परिवारो के स्रष्टा हो जाते है, किन्तु मूल-पद्धतिमें अन्तर नही पडता। कुटुम्बका अन्तर्यामी पुरुष या उसकी आत्मा जिस स्रोतसे पोषण प्राप्त करती है, उसमें व्याघात नही पहुँचता। इस स्वाभाविक और सहज प्रणालीकी रक्षा करना आवश्यक है। अनेक कुटुम्बोसे स्त्रियाँ अपना-अपना व्यक्तित्व लाती हैं और उनके पथक् जल कुटुम्बके सम्मिलित सरोवरमें मिल जाते हैं। उस नए कुटुम्बका, जिसमे वे मिलती है, जितना विस्तार हो, जो उसकी - उसके सब क्षेत्रोमें सब दीजिए और उसके क और व्यापक बनाइए, जैसे न होनी चाहिए। यह विधानके अनुकूल ही होगा। को मिलाकर भी उसके प न तो इस देशकी समाज लिए हितकर ही है। - है कि हिन्दू-परिवार-जैसी स्वरूपको और भी सस्कार बनानेका उपाय किया परिवार'की भूमिका)

स्वावलम्बी स्त्रियोंकी सम

श्रीमती उमा राव, एम० ए०

भारतीय समाजम आज एक नई समस्या—या यो कहिए कि एक नया वर्ग—उत्पन्न हो गया है, जिसे अँगरेजीमें 'वर्किंग वुमन' कहते हैं और जिसे मैं यहाँ 'कामकाजी नारी' के नामसे पुकारूँगी। कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि घर मे रहनेवाली स्त्रियाँ निठल्ली बैठी रहती हैं और उनके सम्बन्ध में कुछ नही कहना है। किन्तु इस वर्गमे केवल नौकरी करनेवाली स्त्रियाँ ही शामिल हैं। १९४७ के बादसे यह वर्ग—या चाहे तो समस्या ही कह लीजिए—दिनोदिन बढता जा रहा है। फिर भी यह समाजमें अभी अपना स्थान नही बना पाया है। १९४७ मे स्वतन्त्रता पानेके बाद कुछ तो नारी-जातिमें जागृतिकी लहर फैलनेके कारण और कुछ देशके विभाजनके फल-स्वरूप आर्थिक परिस्थितियो के कारण भारतीय नारीको प्रेरणा और स्फूर्ति मिली कि वह भी अपने पैरोंपर खडी हो, आर्थिक स्वावलम्बन प्राप्त करे और पुरुषके समान अधिकार ले। सविधानने उसे ये अधिकार दिए भी हैं, किन्तु भारतीय नारीकी यह आकाक्षा आज समाजके लिए एक समस्या बन गई है।

'नारीका क्षेत्र घर है'—यह नारा तो सम्भवत. आदि-

लिए जाते हैं। धीरे-धी अध्यापन-कार्य, डाक्टरी और अब 'नारीके क्षेत्र'के नारी-जातिकी मुठभेड णार्थ आफिसका क्षेत्र, इन सशोधनोका फल नारी समाज चाहता था कि नारी बँधी-कसी बैठी रहे, वह भावना केवल एक दिखाम मुक्ति पाकर पूर्ण रूपसे कही-कही नारीके बन्धन टू मताका मार्ग उसके लिए लिए क्योकर यह समस्याके अनेक दिए जाते हैं। माना जाता है। किन्तु समाजपर पुरुषोका उन्हें घबरा देता है। यह अपनाई जा रही है, पर सच

पुरुष तो विरोधी है ही, स्त्रियोंकी ओरसे भी प्रतिरोध कम नही है। घरेलू स्त्रियाँ नौकरी करनेवाली स्त्रियोके प्रति दो प्रकारके भाव रखती हैं यदि कामकाजी स्त्रियाँ उनकी परिचित नही हैं, तब तो उनपर चरित्रहीन होनेका दोष अकितकर दिया जाता है और यदि परिचित हैं, तो 'बेचारी' की उपाधि दे दी जाती है। 'बेचारी'की उपाधिके भी दो वर्ग हैं। जो विवाहिता हैं, उनके लिए सहानुभूति इसलिए है कि परिस्थितिवश उन्हें नौकरी करनी पड रही है और जो अविवाहिता हैं, उनके लिए सहानुभूति इसलिए है कि उन्हें कोई वर नही मिल सका। अपरिचित कामकाजी नारियोको चरित्रहीनकी उपाधि दान करना तो मिनटोका काम है। मित्र-मण्डलीमें पुरुषोका शामिल होना, मुक्त रूपसे घूमना-फिरना, चरित्रहीन होनेके स्पष्ट प्रमाण मान लिए जाते हैं।

यह तो रही स्त्रियोकी ओरसे कष्टदायी आलोचना और अडचनें, अब पुरुषोके विरोधको भी देखिए। उनका घर और समाजपर आधिपत्य खो जानेका भय प्रधान रूपसे बाधक है। बाहर काम करने निकलिए, तो पहले पिता, भाई, चाचा आदि तरह-तरहकी रुकावटें डालेंगे। एक तो पुरुष घरकी बहू-बेटी या पत्नीसे नौकरी करवाना अपनी मानहानि समझते हैं, दूसरे उन्हें डर रहता है कि स्त्री कमाने लगी, तो उनका शासन स्वीकार नही करेगी। फिर भी किसी तरह पूर्ण शक्ति लगाकर जब वह काम करने पहुँची, तो वहाँ नई समस्याएँ आ खडी होती हैं। पुरुष किसी स्त्री को अफसर या अधिकारीके रूपमें देखना पसन्द नहीं करते। जो त्रुटियाँ वे किसी पुरुषके काममें नजर-अन्दाज कर देते हैं और मामूली बात समझते हैं, वही त्रुटियाँ स्त्रियोके काममे देखकर उन्हें अयोग्य निर्धारित करते देर नही लगती। इसके फल-स्वरूप द्वेष, ग्लानि और ईर्ष्याके भाव पुष्टि पाकर व्यक्त होने लगते हैं। अत स्त्रीके लिए अनिवार्य हो जाता है कि कार्यमें उसकी दक्षताका स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा हो, अन्यथा वह असफल ही गिनी जाती है।

फिर दूसरी समस्या है काम करनेवाले पुरुषोके साथ मित्र-भाव रखते हुए भी घनिष्टता न बढने देना। यदि इसमें इधर या उधर कोई भूल हो जाय, तो वह या तो दम्भ और अभिमान समझा जाता है, या घनिष्टता बढानेका निमन्त्रण। सहकारियोंमें यदि कोई इस धारणाके हुए कि कामकाजी स्त्रियाँ अनिवार्यत चरित्रहीन होती हैं, तो उनसे भी आचार-व्यवहार करना आसान नही होता। यदि उन्हें कुछ कह दे, तो ऐसा दुसाहस करनेवाली स्त्रीकी चरित्र-गाथाका प्रचार होने लगेगा और यदि चुप रह जायें, तो घनिष्टता बढानेके अनेक उपाय किए जाने लगेंगे।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो नारीकी स्वाधीनताकी माँग को एक नासमझ, हठीले वालककी जिद्दी समझते हैं और उनकी स्वावलम्बी बननेकी आकाक्षाको क्षणिक खिलवाड मानते हैं। आफिसोमें वयोवृद्ध अफसरोका व्यवहार प्राय ऐसा ही होता है। वे समझते हैं कि पल-भर मन बहलाकर नारी ऊब जायगी और फिर घर बैठकर बाल-बच्चोका पालन-पोषण करेगी, जो कि वास्तवमे उसे करना चाहिए। कार्यशीलता या काममे निष्ठा उनके मनोरंजनका साधन होता है। इससे खीझ और कुढन तो होती ही है, साथ ही कामकाजी नारीका उत्साह भी कम हो जाता है। इस प्रकारके दृष्टिकोणका उदाहरण इस बार ससदकी एक बहसमें भी मिला था, जब विवाहित स्त्रियोको इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसमें न लिए जानेका प्रस्ताव विचाराधीन था। श्री गाडगिलने स्त्रियोको सलाह दी कि 'आप लोग अभी देशके बजाय घरमें पुरुषोपर शासन कीजिए और प्रधान मन्त्रीके निर्णयका इन्तजार कीजिए।' जैसे किसी जिद्दी बालकसे कह रहे हो कि अभी तू यह बर्फी खाकर सो जा, फिर बाजार ले जायँगे, तो खिलौना ले लेना!

पुरुषोके विरोधका एक कारण और भी है। उच्च मध्य-वर्गके परिवारोकी कुछ महिलाएँ बहुधा समय काटनेके लिए नौकरी कर लेती हैं। उन्हें काममे विशेष दिलचस्पी नही रहती और वे ज्यादा दिन टिककर काम करती भी नहीं हैं। इन कुछ महिलाओके कारण बेरोजगारी कितनी बढती है, या वास्तवमे बढती भी है या नहीं, यह कहना तो कठिन है, पर हाँ, पुरुषोको उच्च स्वरसे शिकायत करनेका मौका अवश्य मिल जाता है। यह बात भी कामकाजी नारीके मार्गमे बाधक सिद्ध होती है। नौकरी या किसी भी कामको मन बहलावका साधन बना लेना बडी भारी भूल है, जो व्यर्थकी अडचनें पैदा कर देती है। निन्दा, आलोचना, उपहास करनेके अतिरिक्त पुरुष शक्तिशाली तर्कके रूपमे इसीका उपयोग करते हैं।

इन सब कठिनाइयोके अतिरिक्त कामकाजी नारीके समक्ष एक अन्य बडी समस्या होती है रहनेका स्थान ढूंढनेकी। यदि वह विवाहित है, तो अपने पतिके साथ रहेगी ही। किन्तु यदि अविवाहित है, तब मुश्किलें आ पडती हैं। हमारे समाजकी हालत ऐसी नहीं है कि अविवाहित स्त्रियोके लिए घरमें अकेले रहना खतरेस बाहर हो। ऐसा मोहल्ला खोजना पडता है, जो सुरक्षित समझा जाता हो। किन्तु ऐसे मोहल्लोमें रहना अधिकतर मँहगा पडता है, जो कि कामकाजी नारीकी सामर्थ्यके बाहर है। तो रहना ऐसे ही मोहल्लेमें पडेगा, जो आयके अनुकूल हो।

मोहल्लेके मनचले नवयुवक समझेंगे—'अच्छा, एक नई चिड़िया आई है। देखें, क्या-क्या रंग दिखाती है!' आसपास पड़ोसिनें पूछेंगी—'तुम्हारी माँ-बहन कोई तुम्हारे साथ क्यों नहीं रहती? आजकलकी लड़कियाँ तो बस!' इस 'बस' की व्याख्या न करना ही मानसिक शान्तिके लिए बेहतर होगा। अधिकतर बड़े शहरोंमें होटल और होस्टल आदि होते हैं, पर यहाँ भी कठिनाई होती है। एक तो इनमें रहनेकी जगह मुश्किलसे मिलती है, दूसरे यदि इन

निवासस्थानोंमें से कोई
भी अछूते नहीं बचते।

किन्तु इतनी बाधाओं
कामकाजी नारी प्रगतिके
और धैर्यके साथ वह आगे
समाजमें अपना स्थान
धिकार' केवल स्वर्णाक्षर ही
लक्ष्य है।

स्व० बाबूराव विष्णु पराड़कर

प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

काशीमें महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी अच्छी खासी बस्ती है। यदि कहा जाय कि वहाँ महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी संख्या अन्य दक्षिणियोंसे अधिक है, तो भी अत्युक्ति नहीं है। इन महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी आपसी भाषा मराठी होनेपर भी ये हिन्दी भाषी हैं। हिन्दी-पत्रोंमें ही ये लिखते हैं और आजसे ही नहीं, भारतेन्दु हरिश्चन्द्रके समयसे यही नियम चला आता है। मराठी समाचारपत्रोंके ये पाठक तो हैं पर लेखक हिन्दीके ही हैं। हरि रघुनाथ भत्ते नामके सज्जन राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दके 'बनारस अखबार' के सम्पादक थे। इनके बाद प० चिन्तामणराव धड़फलेने भारतेन्दुके जीवन-कालमें उनके 'कविवचनसुधा'का सम्पादन किया था। इन्हीं दिनों दो और महाराष्ट्री पंडित भी हिन्दी लिखा करते थे। इनमें से एक थे प० दामोदर शास्त्री सप्रे और दूसरे प० विनायक शास्त्री बेताल। दामोदर शास्त्रीने संस्कृतकी एक मासिक पत्रिका 'विद्यार्थी' नामसे निकाल रखी थी। यह बाँकीपुरके खड्गविलास प्रेसमें छपती थी। शास्त्रीजीने हिन्दीका एक व्याकरण भी लिखा था। दोनों पण्डित 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका' और 'मोहनचन्द्रिका'में भी लिखते थे। सन् १८८० (संवत् १९३७)में एक और महाराष्ट्र पण्डित सोमनाथजी शारखडी उक्त चन्द्रिकाके सहायक सम्पादक थे। इनके पुत्र प० शिवनाथ शारखडी भी हिन्दीके प्रेमी हैं।

पराडकरजीका घराना

इन्हीं मराठी-भाषी पण्डितोंकी परम्परामें प० बाबू-

पर विष्णु शास्त्री पहले
लगवाई थी। यह कार्य
पर उन्होंने किसीके मतकी
'बाहर' लगाया जाता है,
लगानेके विरोधमें यही
था कि सभी जातियोंके लोग

इन्हीं प० विष्णु शास्त्री
बाबूरावजी थे। इनसे
पहलेका नाम माधवराव था
प्रसिद्ध थे। दूसरेका छोटू
राम या रज्जू था। ये द
का देहान्त कई वर्ष हुए
तक ये ज्ञानमण्डलके मुद्रक
चमड़ियाकी गलीवाले अपने

बाबूरावजीने तीन
एक लड़की थी, जो अपने
गिरकर मर गई थी।
था। उनकी नजरबन्दीके
तीसरी पत्नी बाल विधवा
समर्थन नहीं किया, पर
महत्व नहीं दिया। इसके
समाजका कोपभाजन न ह
पैतृक घर छोड़कर दूसरे
के स्नेहमें कोई अन्तर नहीं

इसकी शिक्षा आदिका भार श्यामरावजीके पुत्रोंपर आ गया है। बाबूरावका जन्म कार्तिक शु० ६, स० १९४० (ता० ६ नवम्बर, १९८३ ईस्वी)को हुआ था। खेद है कि उनके 'आज' पत्रमें उनका जन्म सवत् १९६० और सन् १८८६ छपा है, जो अशुद्ध है। शुद्ध गणनासे गत नवम्बरमें वे ७१ सालके हो चुके थे और ७२वें वर्षके कोई २॥ महीने पार कर चुके थे।

महाराष्ट्र पण्डित-घरानोका कर्मकाण्ड और वेदके पठन-पाठनसे विशेष सम्बन्ध रहता है, इसलिए यज्ञोपवीत हो जानेपर लडकेको वेद पढानेका नियम है। अब शायद नही रहा। बाल शास्त्रीके विषयमें प्रसिद्ध है कि जब यज्ञोपवीतके बाद उन्हे वेद पढाया जाने लगा, तब वे कहने लगे कि यह तो हमें आता है और जब कहा गया कि सुनाओ, तब सस्वर वेद-मत्र सुना दिए। इसका कारण यह है कि लडके अपने घरमें वेदपाठ सुनते-सुनते याद कर लेते था। पढने पढानेकी अपेक्षा सुननेसे याद भी अधिक होता है। यह क्रम वहाँ पीढी-दर-पीढी चलता था।

शिक्षा और नौकरी

पराडकरजीको वेद पढाया गया और उन्होने कुछ ऋचाएँ याद भी की। पर उनके पिता विष्णु शास्त्री स्थितिज्ञ थे। वे समझते थे कि आस्तिकताके लिए वेद और सस्कृतके ज्ञानका प्रयोजन है सही, परन्तु जीविकोपार्जन के लिए अँगरेजीका ज्ञान अनिवार्य है। इसलिए जब उनकी नियुक्ति भागलपुरके एक स्कूलमें सस्कृताध्यापकके पदपर हुई, तब वे बाबूरावको अपने साथ लेते गए और उसी स्कूल में अँगरेजी पढनेके लिए उन्हें भर्त्ती भी करा दिया। उन दिनो पण्डितोंकी प्रतिष्ठा भी अधिक थी, इसलिए भागलपुर में विष्णु शास्त्रीके अनेक शिष्य भी हो गए। इसी स्कूलके ऊँचे दर्जेमें बँगलाके प्रसिद्ध पत्रकार बाबू पाँचकौडी बनर्जी भी पढते थे। वे अपनेको विष्णु शास्त्रीका विद्यार्थी और बाबूरावको अपना गुरुभाई समझते थे।

बाबूरावजीने भागलपुरमें एफ० ए०में (उस समय आई० ए०को एफ० ए० कहते थे) शायद एक साल पढा था। फिर पिताके स्वर्गवास-जनित परिस्थितिवश उन्हें पढना छोडना पडा। उन्हीके साथ उनका एक साथी देवनाथ भी पढता था। यह जब उनसे मिलने 'भारतमित्र'-आफिसमें आया था, तब पराडकरजीने बताया था कि यह ६ या ७ साल एफ० ए०में फेल हुआ है। जो हो, भागलपुर में उनका रहना न हो सका, और वे काशी चले गए। अब कुछ काम किए बिना निस्तार नही था, इसलिए कुछ दिनो तक वे डाक-तार-विभागमें नौकरी करनेके लिए बाध्य हुए।

देउस्करजीके साथ

पराडकरजी *अध्ययनशील ही नही थे, बुद्धिमान भी थे।* जो पढते थे, वह जल्दी याद हो जाता था। काशीमें स्वाध्याय जितना हो सकता था, वह उन्होने किया। इन्ही दिनो उनके दूरके नातेमें मामा लगनेवाले प० सखाराम गणेश देउस्कर काशी गए। वहाँ उन्होने बाबूरावकी अध्ययनशीलता और बुद्धि देखी, तो इनको अपने साथ कलकत्ते लेते आए। वहाँ सुकिया स्ट्रीट (आजकलकी कैलास बोस स्ट्रीट)की एक गलीमें, जहाँ वे सपरिवार रहते थे, बाबूरावजीको भी रखा। इस मकानका सदर दरवाजा

स्व० पराड़करजी
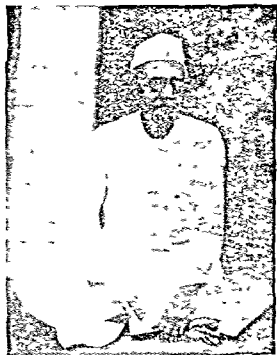
सुकिया स्ट्रीटमें था। मकान-मालिक एक मुकर्जी महाशय थे, जिनके वशका लगाव सर आशुतोष मुकर्जीसे था। इस मकानके तीन भाग थे। अगले भागमें स्वय मुकर्जी महाशय रहते थे। इनका चश्मेका कुछ कारोबार था। इसके बादके भागमें देउस्करजी रहते थे और अन्तका जो तीसरा भाग था, उसमें कई महीने हम लोग भी रहे थे। सडकसे जो गली हम लोगोके घरोको जाती थी, वह इतनी सँकरी थी कि दो आदमी साथ नहीं चल सकते थे। कोई आदमी आता हो और कोई जाता हो, तो तब तक निकलना-पैठना असम्भव था, जब तक कोई दबकर किनारे न खडा हो जाता।

जबतक पराडकरजी कलकत्तेमें रहे, तबतक उनके अधिक दिन इसी घरमें बीते।

सखारामजी सन्थाल-परगनेके करा-ग्राममें रहते थे। भास्कर पण्डितने जब नागपुरके भोसलोंकी ओरसे बंगालपर चढ़ाई की थी, तब उनके साथ ही देउस्करजीके पूर्वज भी थे। उन्हें सन्थाल-परगनेमें कुछ जमीन मिल गई थी, इसलिए वे वहीं बस गए थे, जैसे राजा मानसिंहके साथ उड़ीसा विजयके लिए निकले कुछ कान्यकुब्ज ब्राह्मण बाँकुड़ा जिलेके मारोपाडा गाँवमें बसे थे। उस समय सन्थाल-परगना बंगालके अन्तर्गत था। बंगाली सज्जन जलवायु बदलने के लिए जसीडी, देवघर, दुमका आदि स्थानोंमें जाया करते थे। इनके सिलसिलेमें कुछ बंगाली भी इन स्थानोंमें बस गए थे। चारों ओर बंगालियों और सन्थालोंके बीचमें देउस्कर-परिवार करीब रहता था। सन्थाल जंगली समझे जाते थे, इसलिए सभ्य बंगालियोंसे ही उनका सम्बन्ध हुआ।

बंगला बोलना और पढ़ना लिखना सीखकर देउस्करजी आधे बंगाली बन गए थे। उन्होंने मराठी तो बहुत बादको सीखा। कलकत्तेमें घर-बाहर सर्वत्र उनकी भाषा बँगला थी। वे अपने स्त्री-बच्चोंसे भी बँगला ही बोलते थे। इस प्रकार बँगलामें व्युत्पन्न होकर आसपासके समाचार कलकत्तेके साप्ताहिक-पत्र 'हितवादी' को भेजने लगे। कालान्तरमें वे कलकत्तेमें 'हितवादी'के प्रूफरीडरसे बढ़ते बढ़ते सम्पादक बन गए। बाबूरावजी जिस समय कलकत्ते गए थे, उस समय देउस्करजी 'हितवादी'के सहायक सम्पादक थे।

जिस समयकी चर्चा हम कर रहे हैं, उस समय बंगलामें तीन बड़े-बड़े साप्ताहिक पत्र कलकत्तेसे निकल रहे थे। इनके नाम थे 'हितवादी', 'वसुमती' और 'बङ्गवासी'। इनमें 'हितवादी' आकार प्रकारमें सबसे बड़ा था। छपता भी कोई २५००० था। इसके सम्पादक पं० कालीप्रसन्न काव्यविशारद थे। 'वसुमती'के सपादक पं० सुरेशचन्द्र समाजपति और 'बङ्गवासी'के बाबू बिहारीलाल सरकार थे। 'बङ्गवासी'का हिन्दी-संस्करण भी 'हिन्दी-बङ्गवासी' नामसे निकलता था। इसकी कोई ७००० प्रतियाँ छपती थीं। काव्यविशारदजीके मनमें आया कि हम यदि 'हितवादी' का हिन्दी-संस्करण निकालें, तो वह भी चल सकता है। यह सोचकर १९०३में 'हितवार्त्ता

यह सबसे पुराना हिन्दी पत्र प्रतियाँ नहीं प्रकाशित होती

'हितवार्त्ता

'हितवार्त्ता' का सम्पादन किया। अनन्तर बाबू ये हिन्दी जानते तो थे, इसीलिए पण्डित ... मिश्र। पराडकरजी १९० 'हिन्दी-बङ्गवासी' में सहायक वेदीजीने १९०७में चमड़की के सम्पादककी जगह शायद जीको मिली। इन्होंने १९ 'हितवार्त्ता'का सम्पादन किया के सुपुत्र बाबू मनोरंजन और पराडकरजी दैनिक

उन दिनों हिन्दीके पत्र थे। इनमें 'हितवार्त्ता'का पर आजकलके किसी दै... को अकेले ही सारा पत्र नहीं रहना था। ... अकेले बड़ी लगन और करते थे। उनकी महनत लेख आ जानेसे हो जाती थी उमापतिदत्त शर्मा और पं० १९०८में विभक्ति प्रत्ययका कारण 'हितवार्त्ता' में लेखोंकी पहले 'विभक्ति विचार' और लेखमालाएँ प्रकाशित कराईं लेख, टिप्पणियाँ और तो सम्पादकका ही था।

सम्पादक-रूपसे बड़ा हाथ था। वे हिन्दीके सम्पादक तो थे ही। क्या चाहिए इस विषयकी करते थे। देउस्करजीके ही नहीं थे, बंगालियोंके ...

अध्ययनशीलता और तत्परता

बाबूरावजीको पहले तो पढनेका बहुत समय मिलता था। देउस्करजीके घरमें पुस्तक था और बाहरसे वे लाते भी थे। पढनेका क्षत्र भी विस्तृत था। अँगरेजी, मराठी, बँगला और हिन्दी पुस्तकोंमें हिन्दीकी पुस्तक पढने का समय उनको कम मिलता था। हिन्दीका वातावरण भी न था। घरमें बँगलाका साम्राज्य था और आफिसम बैरोको छोड सब बगाली ही थ। पर उन्हें पढनेका शौक था। इसलिए उन्होंने होमियोपैथिककी पुस्तकें पढी और इनका सग्रह भी किया। यही नहा, वे होमियोपैथिक बक्स भी रखते थ और आवश्यक होनपर लोगोको दवा भी देते थ।

१९१२में जब हमन उन्ह दैनिक भारतमित्र'म बुला लिया था, तब हमें उनकी फुर्ती और कायकुशलता देखनेके बहुत अवसर मिला करत थे। जब हम आफिसम रहते थे, तब रात ९ बजसे पहले 'दैनिक भारतमित्र'का अक तैयार नही होता था। पर बाबूरावजा विशेषकर हमारी अनुपस्थिति में इतनी जल्दी काम कराते थे कि कभी कभी सूर्यास्तके पहले ही काम समाप्त हो जाता था। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि उन दिनो तारोका व्यवस्था नही थी। बादको प्रस ब्यूरोके तार 'दैनिक भारतमित्र म लिए गए, तब भी १२॥ या १ बज रातको वे काम पूरा कर डालते थ।

गिरफ्तारी और नजरबन्दी

पराडकरजीकी देशभक्ति देउस्करजीके ससगसे और भी बढ गई थी। उन दिनो क्रान्तिकारियोके मार-धाड के आन्दोलन चल रहे थ। इसलिए इनकी जान-पहचान भी क्रान्तिकारियोसे हो गई थी और ऐसा समझनेके कारण है कि इन्हीके द्वारा क्रांतिकारी विचारोन मारवाडी युवकोंमें प्रवेश किया था। यही कारण है कि १९१६म जब य भारत-रक्षा-कानूनमें गिरफ्तार किए गए थ तब इन्हीके साथ कोई आधा दर्जनसे अधिक प्रतिष्ठित मारवाडी युवक भी पकडे गए थे। इनके ऊपर अभियोग यह था कि इन्होन रोडा कम्पनीके कारतूस चुराए थे। बादको पुलिसन बाँसतल्ला स्ट्रीटके एक गोदामसे कारतूसोंके बक्स बरामद भी किए थ।

१९१६के जुलाईमें बाबूरावजी पकड गए थ और अन्य बगाली युवकोके साथ कभी चटगाँवके पास काकद्वीपमें और कभी कही बगालम य नजरबन्द रख गए। १९१९ के अन्तमें सबके साथ य भी छोड गए। छूटनपर ये काशी पहुँचे और यहाँ १९२०म बाबू शिवप्रसाद गुप्तन अपने 'आज' पत्रके सम्पादकीय विभागमें इन्ह जगह दे दी। जब बाबू श्रीप्रकाशन आज'का सम्पादन-कार्य छोडा, तब बाबूरावजी उसके सम्पादक नियुक्त हुए। तबसे कोई दो वष १९४३-४५ तक कारण विशषसे वे आज से अलग रहे। पर १९४६से अन्त तक वे 'आज'के सम्पादक रहे। बीचम वे 'खबर' और बादको ससार के भी सम्पादक थ। १९४२म समाचारपत्रोन सरकारी दमन नीतिके विरोधमें प्रकाशन बन्द कर दिया था। पर बाबूरावजी गुप्तरूपसे रणभेरी'का सम्पादनकर प्रकाशित करते थ। यह रणभेरी उनके घरके पास ही एक प्रसमें छपती थी।

पराडकरजीके स्वर्गवाससे हिन्दी पत्रकारिताको बडी क्षति हुई है। उनकी तरह नए-नए शब्द बनान और चलान वाला कोई सम्पादक अब नही है। बगालम श्री और श्रीयुत पुरुषो और श्रीमती और श्रीयुक्ता स्त्रियोके नामोके पहले लिखनेकी चाल है। बाबूरावजीन मिस्टरके बदले विदेशियोके नामोके पहले भी 'श्री' लिखना ही नही आरम्भ किया 'मिसेस के बदलेकर सवश्री' भी चलाया था। सर्वेक्षण, पत्रकारी आदि बहुत-से शब्द उनके चलाए हुए ह। कोई ४८ वष उन्होन समाचारपत्रका काम किया और बडी निष्ठा और सचाईसे किया। उन्ह उनके कायके लिए ही लोगोको सदा स्मरण रखना चाहिए।

परात्पर ब्रह्म

श्री गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

कहीं कुंजमें एक सुमन है,
जिसका आप वही उपमान।
सबसे परे, निराला सबसे,
दिव्य रूप सौरभकी खान।
आँखोंको न दिखाई पड़ता
फिर भी 'है'—लेते यह मान।
सुरभित मारुतके झोंकोंसे
उसका हम करते अनुमान।
हारे - थके खोज कह देते—
'नहीं कुसुम, वह कहीं नहीं।'
तब तक गूंज कहींसे आती
—ठहरो, वह है यहीं कहीं!
उलझ-उलझ काँटोंमें मधुकर
अग रुधिरसे लेता रंग।
मिलता नहीं और मिलनेका,
आशा नहीं छोड़ती संग।
पखड़ियाँ आती-जाती हैं,
निर्विकार खिलता वह फूल।
भौंरे लगन लगाए चलते,
पथमें ही पथ जाते भूल।
जो भी गया न आ पाया वह,
किससे हम पाएँ सन्देश।
कोई हमें बताए आकर,
कैसा है वह पावन देश।
सीमाहीन कहीं लहराता
रत्नाकर रस-राशि अपार।
वैभव अगम, अनन्त, अनूपम
जिसका अचल अचिन्त्य प्रसार।
गर्जन-नाद श्रवण करके ही
खोज रहे उसको गतिमान।
यात्रा कहीं समाप्त न होती
दिखता कहीं तरंग निधान।
कोटि-कोटि रवि उसका जीवन

अमित मेघ टोलियाँ
आकर
हो न सका समृद्धि
फिर भी
उस अम्बुधिका
कुम्भज
उसे पार कर
विधि भी
जिसकी रूप क
मग्न हो
उस अनदेखेको
कौन विद
कहीं व्योममें
आलय
अखिल विश्वमें
जो
सरसिज देख न
फिर भी
लोक - लोकमें भ
पूछा
यमनिकेतका
अविरत
फिर भी अक्षत ही
उसका
उसकी ऊष्माके
अग्नि
दे न सके अभिमान
बना न
अस्तोदय - बाधासे
वारिदसे
रहता कहीं विचित्र
जिसका
गए खोजने लौट

अर्नेस्ट हेमिंग्वे

श्री कृष्णशंकर व्यास

हेमिंग्वेके एक साहित्यिक मित्रका कहना है कि हेमिंग्वेने युद्धके अनुभवोंके आधारपर बीस वर्षकी अवस्थामें साहित्य-क्षेत्रमें प्रवेश किया। पचीस वर्षकी अवस्थामें वह लोकप्रिय हो गया और तीस वर्षकी अवस्थामें तो वह अनुभवी साहित्यकार माना जाने लगा। पेरिस-नगरीमें एक बढ़ईके कमरेमें उसने साहित्य-सृजन-रूपी वृक्षका बीजारोपण किया, जो दस-बारह वर्षोंमें हो पक गया और उस वृक्षकी न जाने कितनी शाखाएँ निकलीं, कितने फल लगे, और न जाने कितनोंको उसने आश्रय दिया।

जन्म और शिक्षा-दीक्षा

अर्नेस्ट हेमिंग्वेका जन्म २१ जुलाई १८९९को शिकागोके निकट ओक पार्कमें हुआ था। अनेक पुस्तकों तथा हेमिंग्वेकी वार्ताओंसे पता चलता है कि उसने अपनी आयुको एक साल अधिक बताया ताकि वह सेनामें भर्ती हो सके। और सन १९१७से आज तक वह अपना जन्म दिन २१ जुलाई, १८९८ ही बताता है। उसके पिता क्लेरेंस एडमन्ड हेमिंग्वे एक डाक्टर और प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। दवाइयोंका पेशा और शिकार हेमिंग्वेके वंशका रिवाज था और उसने अपनी अनेक कहानियोंको इन्हींके आधारपर लिखा है। अन्य डाक्टरोंके पुत्रोंकी भांति हेमिंग्वेने भी लेखन-कार्यको ही अपना मुख्य पेशा बनाया। जैसे ही उसने अपनी शिक्षा ओक पार्क-स्कूलसे समाप्त की, उसे 'कनास सिटी स्टार' में नौकरी मिल गई।

उसने प्रथम महायुद्धमें सक्रिय रूपसे भाग लेनेका प्रयत्न किया। इस सिलसिलेमें उसे अनेक नए स्थानोंको देखनेका अवसर प्राप्त हुआ और अन्तमें एम्बूलेंस सर्विसेजमें उसे स्थान मिल गया। कुछ दिनों बाद उसका तबादला इटलीमें हो गया। यहांपर उसे बहुत अधिक चोट लगी, परन्तु उसने अपनी वीरता और साहसका अद्भुत परिचय दिया, जिसके लिए उसे चार बार सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया।

साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण

साहित्य-सृजनका कार्य हेमिंग्वेने पेरिसमें १९२०में आरम्भ किया। इससे पहले वह इटलीके मोर्चेपर काम करता था। उसकी छोटी कहानियोंमें युद्धके विभिन्न अनुभवोंका बड़ा रोचक वर्णन मिलता है। लेकिन १९२०-३०के बीच हेमिंग्वेको साहित्य-क्षेत्रमें बहुत ही निराशाजनक स्थितिका सामना करना पड़ा। उसकी कहानियाँ कहीं भी स्वीकृत न हुईं, अपितु बार-बार लौटती रहीं। परन्तु हेमिंग्वे इससे निराश नहीं हुआ और बराबर लेखन-कार्यमें संलग्न रहा। बादमें मार्डोक्स फोर्ड, स्काट फिट्जरेल्ड एवं स्टेन-जैसे मित्रोंके सहयोगसे साहित्य जगत्में वास्तविक अर्थोंमें वह पदार्पण कर सका। सन १९२६में उसके उपन्यास 'दी सन आल्सो राइजेज' के प्रकाशनपर उसे पर्याप्त सम्मान मिला और सफलताके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। इसके बादसे उसका अबतकका जीवन अमरीकाके इतिहाससे सम्बद्ध है। कहना न होगा, इस लोकप्रियताकी पृष्ठभूमिमें हेमिंग्वेका उपन्यास 'दी सन् राइजेज' है। कठिन समयमें उसका धैर्य नई पीढ़ीके साहित्यकारोंके लिए एक ऐसा उदाहरण है, जिसमें उसकी सफलताका रहस्य छिपा है और छिपी है एक साधारण सैनिककी नोबुल-पुरस्कार पानेकी रहस्यमयी कहानी।

मार्क ट्वेनका साहित्यिक शिष्य

एसन्ट'के १९५४के समर-अंकमें एडविन फसलने 'हेमिंग्वे और मार्क ट्वेन'-शीर्षक लेखमें अर्नेस्ट हेमिंग्वेको मार्क ट्वेनका शिष्य बताया है। इन दोनों महान साहित्यकारोंकी शैलीमें हमें सामंजस्यके साथ-ही-साथ पार्थक्यकी सीमा रेखाका भी परिदर्शन होता है। मार्क ट्वेन करवेंट और फिल्डिंगकी भांति रोमांटिक कथाएँ और कल्पित गाथाएँ लिखता रहा और इसके प्रमाणमें हम उसके 'हकलबेरी फिन' का उल्लेख कर सकते हैं। हेमिंग्वे मार्क ट्वेनसे बहुत अधिक प्रभावित हुआ और उसपर भी ट्वेनकी शैलीके जादूका असर पड़ा। उसकी पहली रचना 'दी सन् आल्सो राइजेज' के अतिरिक्त 'दी टारेंट आफ् स्प्रिंग' एवं 'इन अवर टाइम' उपर्युक्त कथनकी पुष्टि करते हैं। और एडविन फसलने भी कहा है— मिथ्यावादी काव्यकी उपेक्षामें ही हेमिंग्वेकी लेखन-कलाकी विशेषता निहित है और झूठी कविता (सत्यसे दूर रहनेवाली) को मार्क ट्वेनने भी अपने ग्रन्थोंमें उपहास किया है—इसलिए हेमिंग्वे मार्क ट्वेनका शिष्य है।

इतना साम्य होते हुए भी इन दोनों साहित्यकारोंमें एक बहुत बड़ा अन्तर है। ट्वेनका नैतिक दृष्टिकोण

काल्पनिक सहानुभूतिपर आधारित है, जबकि हेमिंग्वे अपने नैतिक दृष्टिकोणका निर्धारण विभिन्न भावनाओंके संघर्षके फल-स्वरूप करता है। यही 'भावनाओंका संघर्ष' हमे उसके उपन्यासोंमें देखनेको मिलता है। उसके पात्रों के जीवनमें विभिन्न धाराओंका संघर्ष चलता रहता है और वे अपनी जीवन-धाराको उसी ओर मोड़ते हैं, जिधर भावनाओंके संघर्षके फल-स्वरूप उनकी आत्मा उन्हें प्रेरित करती है।

हेमिंग्वेकी साहित्यिक मान्यताएँ

कुछ चीज सरलतासे सीखी नहीं जा सकती और उनको सीखने और समझनेके लिए हमे बहुत अधिक समय देनेकी आवश्यकता पड़ती है। वे सरल नहीं जा सकती हैं, पर उसे जन-साधारणको सुलभ करनेके लिए कभी-कभी कुछ मनुष्यों को अपने प्राण तक निछावर कर देने पड़ते हैं, इसलिए हम उनको बहुमूल्य कहते हैं। सच्चे अर्थमें लिखा गया उपन्यास ज्ञानकी शालीको बोझिल ही करता है। वह आगामी कलके उपन्यासकारको प्रेरणा देता है। इसके बाद लेखक का यह कार्य होता है कि वह उसमें अपनी ओरसे क्या जोड़े और जनताके सम्मुख अपने उपन्यासको किस प्रकार रखे। इन्हीं साहित्यिक मान्यताओंको ध्यानमें रखकर हेमिंग्वेने अपना साहित्य-क्षेत्र चुना। उसका कहना है कि एक लेखक, जो गंभीरतापूर्वक लेखन-कार्य करता है, को यह प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता नहीं कि वह पढ़ा-लिखा है। उसे विद्वत्ता, संस्कृति एवं माधुर्यादिताका प्रतीक न बन एक साहित्य-सेवक बननेकी जिज्ञासा रखनी चाहिए। एक सच्चे साहित्यकार और एक गंभीर साहित्यकारमें उतना ही अंतर है, जितना एक हंस और उल्लूमें होता है। हेमिंग्वे ने समकालीन साहित्यकारोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर शैली में कहानी लिखनेका सफल प्रयास किया है। उसकी गद्य-लेखन-शैलीमें निर्जीव व्यक्तित्वकी झलक मिलती है और उसके कथोपकथन भी बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। हेमिंग्वेने अमरीकी उपन्यासोंमें तथा वहाँके जीवनमें भावनाओंके संघर्षके फल-स्वरूप किसी निश्चयपर पहुँचनेकी पद्धतिका प्रचलन नहीं पाया और इसीलिए उसने मार्क ट्वेनकी साहित्यिक मान्यताओंमें अन्य तत्वोंका समन्वय

रीकाके कुछ अन्य साहित्यकारोंने और उनकी छाप साहित्यकी नई और इसलिए हेमिंग्वेसे उन्होंने अ पर यह आलोचना एकांगी है।

हेमिंग्वेका सन् १९५४का दे दिया है। सन् १९३०में जब को भावी अमरीकी नोबेल पुरस्क किया था, उस समय हेमिंग्वे उस समय उसकी तीन उच्च क चुकी थीं—'दि सन् आलसो तथा 'एफेयरवैल टू आर्म्स।' सन् एक नया उपन्यास 'दि टारेन्ट अ निग्रोकी। एक पुस्तक 'मैन विदाउ थी, जिसकी प्रशंसा सर्वत्र हो

सन् १९५३में भी हेमि जानेवाला था, लेकिन च रखते हुए विगत वर्ष यह स जब अफ्रीकाकी हवाई समाचार मिला, तो स्वेडिश बहुत अधिक दुःख प्रकट किया कई प्रतिद्वन्द्वी थे, उनमें जिन्होंने स्तालिनका साहित्य अतिरिक्त फ्रांसके पाल क्लाडेल कवि इजरा पाउंड भी नोबे पर हेमिंग्वेको ही स्वेडिश समझा। हेमिंग्वे पाँचवा नोबेल-पुरस्कार मिला। लेविस, यूजेन ओ'नील, प फाकनरको नोबेल-पुरस्कार पुस्तक स्कंडिनवियामें बड़े अर्नेस्ट नवोदित साहि भी है।

हेमिंग्वेको यह पुरस्कार एण्ड दि सी' पर प्रदान किय क्यूबाके एक मछुएके जीत

जं

की नवीनता भी दृष्टिगत होती है। इस पुस्तकपर उन्हें सन् १९५३में उपन्यासका पुलटेजर-पुरस्कार भी मिल चुका है। जब नोबेल-पुरस्कार हेमिंग्वेको देनेकी घोषणा हुई, तो उसी समय जान पी० मारकेन्डने कहा—"हेमिंग्वे ही एक ऐसा जीवित अमरीकी साहित्यकार है, जो उच्चकोटि की छोटी कहानियाँ लिख सकता है।"

सन् १९३३में इवेन बेविनने नोबेल-पुरस्कार अपनी एक कहानी 'दि जेण्टलमैन फ्राम सेनफ्रासिसको' पर पाया था। हेमिंग्वेके साथ भी प्राय वैसी ही बात हुई। पर एक बात है, हेमिंग्वेके पक्षमें लेखन-शैलीकी विशिष्टताके साथ-ही-साथ लोकप्रियता भी रही है। जार्ज बर्नर्ड शा (जिन्हें १९२५मे साहित्यका नोबेल-पुरस्कार मिला था) के बाद हेमिंग्वे ही ऐसा साहित्यकार है, जिसकी लोकप्रियता सारे यूरोपमें एक बडे साहित्यकारके रूपमें है। चर्चिल नि सन्देह हेमिंग्वेसे अधिक लोकप्रिय हैं, पर उनकी लोकप्रियता एक राजनीतिज्ञके रूपमें अधिक है, न कि एक साहित्यकारके रूपमें।

बहुमुखी साहित्यिक प्रतिभा

सम्प्रति एक क्षणके लिए हम भूल जायँ कि हेमिंग्वे एक वीर सैनिक, खिलाडी, साहसी यात्री और बडा शिकारी है। उसे हम केवल उपन्यास-लेखक और कथाकारके रूपमें ही लेते हैं। दूसरे ही क्षण हम बिना किसी सकोच एव हिचकके यह कहना चाहेंगे कि हेमिंग्वेकी साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी है और हेमिंग्वेका यह कथन हमारे निष्कर्ष का प्रमाण होगा—"गद्य-लेखन एक कौशल है, जिसमें भीतरी सजावटकी आवश्यकता नहीं है। उपन्यासके पात्र ऐसे होने चाहिएँ, जिन्हे लेखकने अपने अनुभव मस्तिष्क एव हृदयकी अनुभूतिसे निर्मित किया हो। पात्रोंके चुनावमें लेखकको अपनी सारी जानकारीका उपयोग करना चाहिए। यदि लेखकका भाग्य होगा और वह अपने पात्रोंमें पर्याप्त गभीरता और अन्य आवश्यक तत्वोका समावेश कर पायगा, तो उसके पात्र निश्चय ही अमर हो जायँगे।" लगता है हेमिंग्वेने अपने इस कथनका अक्षरश पालन अपने उपन्यासों एव कहानियोके पात्रोंके चुनावके रूपमें किया है। और तभी तो उसके पात्र जीते-जागते मनुष्योंकी भाँति उपन्यास एव कहानीके पाठकोको अपनी नेक सलाह देते हैं।

कहा जाता है कि हेमिंग्वेके उपन्यास 'दि ओल्ड मैन एण्ड दि सी' में स्वेडिश एकेडेमीने शैलीकी नवीनता एव अन्य साहित्यिक विशेषताएँ पाई। लेकिन सच पूछिए तो इस उपन्यासकी सारी विशेषताएँ उसकी कहानी 'बिग टू हेडेड रिवर' में मिलती हैं। इस कहानीमें उसने एक सिपाहीके मेचिगम लौटनेकी बात कही है, जो पेरिसमें रहता था। यह कहानी उसने सन् १९३३में लिखी थी। वस्तुत वह मार्क ट्वेन और फाउलवर्टकी साहित्यिक मान्यताओको तभी स्वीकार कर चुका था। जब हेमिंग्वेकी कोई नई पुस्तक निकलती है, तो एक व्यक्ति जो नवीनतम साहित्यिक गतिविधिको जानेकी इच्छा रखता है, उसे उस नई रचनाको पढना आवश्यक हो जाता है। वह रचनाओको पढनेके लिए इच्छुक हो या न हो, पर उसे हेमिंग्वे की नई पुस्तक पढनी ही पडती है। हेमिंग्वेको साहित्यिक चुम्बक कहना अनुपयुक्त न होगा, जो अनेक पाठकोको आकर्षित करता है और अनेकोको अपनी रचनाओको पढने के लिए विवश करता है।

यह कहना कठिन है कि आजसे पचास वर्ष बाद हेमिंग्वे की रचनाओका क्या मूल्य रहेगा। पर वह अकेला साहित्यकार है, जिसने 'विट एण्ड आइरनी' के सिद्धान्तका प्रतिपादन अपनी रचनाओंमें किया है। वह अपने पात्रोको कष्ट, पीडा एव मृत्यु तककी स्थितिमें रख देता है। एक मनुष्य हेमिंग्वेके पात्रोको भूल सकता है, लेकिन उसकी कहानियो को भूलना कठिन है। उसने वर्तमान पीढीकी भयानक एव दर्दनाक स्थितिका चित्रण बडे ही स्वाभाविक ढगसे किया है। सभव है उसके साहित्यका मूल्याकन भविष्यमें साहित्यिक ज्ञानके बोरोके रूपमें न हो, पर यह तो मानना ही पडेगा कि हेमिंग्वेकी कृतियोंम उसके अपने समयकी गभीरतम उलझी हुई समस्याओको सरलतम शैलीमें सुलझानेका प्रयत्न अवश्य किया गया है।

मृत्युके मुखसे बाहर

हेमिंग्वे दो हवाई दुर्घटनाओमें बुरी तरह घायल हुआ है। दूसरी हवाई दुर्घटनाका वर्णन करते हुए उसने कहा—"उस समय मुझे सकटकालीन सहायता भी नहीं मिली। मेरा बायाँ हाथ बेकाम था, इसलिए मुझे सिरके धक्केसे दरवाजा खोलकर बाहर निकलना पडा। इसी कारण मेरे बाएँ कानके ऊपरकी हड्डी टूट गई। जैसे ही मैं बाहर निकल रहा था, आगकी लपटोंने मेरा पीछा किया और मेरे बाल जल गए। इसके बाद फिर हम और हमारे दलके लोगोको आगकी लपटोंसे खेलना पडा और केनियाके निकट ही मैं दूसरी बार बुरी तरह जल गया।" कुछ देर ठहरकर हेमिंग्वे अपने मित्रोंसे बोला—"मुझे वेनिस कब और कैसे पहुँचाया गया, यह तो पता नहीं, पर यह सब मेरी स्त्री की कृपा है, जो आज मैं आप लोगोंके बीच हूँ। वेनिसमें भी मेरी स्थिति गभीर होती गई, पर मेड्रिडमें एक स्पेनिश डाक्टरने मेरी जान बचा ली। एक डाक्टर बोला—

'आपको दुर्घटनाओंके तत्काल बाद ही मर जाना चाहिए था। लेकिन यदि आप उस समय न मर सके, तो झाडियो में लगी आगकी लपटोंको अवश्य ही आपकी जीवन-लीला को समाप्त कर देना था। और आप वेनिसमें भी मर सकते थे, पर चूँकि आप अभी तक नहीं मरे है, इसलिए सम्प्रति आप नही मर सकेंगे।' इसके बाद मैंने अपने मित्रोंसे कहा कि मैं भाग्यवान तो अवश्य हूँ, पर नियतिने मुझे बुरी तरह पीटा है।"

हेमिग्वेने लिखने-पढनेका कार्य पुन आरम्भ कर दिया है और अफ्रीका-सम्बन्धी छोटी कहानियोको प्रकाशित करने की उसकी योजना है, जिन्हे वह दो माह पूर्वसे ही लिख रहा है। हेमिग्वेने जब पुरस्कारकी घोषणा सुनी, तो कहा—"मुझे इस पुरस्कारको यह मेरे लिए प्रसन्नता और सम्मान मुझे मिला है, यह मेरे साथ ही मुझे पैसेकी भी राशिसे पूरी हो गई।" पता के ३६,००० डालरोंमें से ८,०० चुकानेमें उपयोग करेगा और मानीसे व्यय करेगा। कथन है कि वर्तमान तथा साहित्य चाहती है, इसका पता दाताओंकी कृपासे लगता रहता कथन सच माना जा सकता

शेक्सपीयरके नाटक

श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

ईसाकी सोलहवी सदीका उत्तरार्द्ध नाटककार और कवि शेक्सपीयरका रचना काल माना जाता है। तबसे अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी, कितनी ही नवीन विचार-धाराओंका जन्म हो गया, कितने ही सामाजिक उलट-फेर हो गए और उन्नीसवी सदीके उत्तरार्द्धमें तो कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगल्सने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादका प्रचलन करके आर्थिक जगत्में एक बहुत बड़ी अभूतपूर्व क्रान्ति ही कर दी। पर इस क्रान्तिसे कम महत्वपूर्ण वह क्रान्ति नही थी, जो इब्सनने स्वय नाट्यकलाके क्षेत्रमें लगभग उसी समय की। इस नाटककारने व्यक्तिके अधिकारो पर विशेष जोर दिया और विशेष रूपसे उन स्थलोपर आक्रमण किया, जहाँ समाज व्यक्तिके स्वत्वोका हरण करता दिखाई पडता है। इब्सनकी नाट्यकला, जिसका परवर्ती अनेक कलाकारोंने अनुकरण किया, अपनी स्वाभाविकता, सरलता और तत्त्वानुसंधानकी प्रवृत्तिके लिए चिरस्मरणीय और पोषणीय रहेगी। किसी समस्याका प्रस्तुतिकरण, किसी सत्यकी खोज इब्सन और उसके अनुयायी नाटककारोंकी विशेषता है। निस्सदेह इन नवीन नाटको तथा शेक्स- समझना चाहिए और दोनो कोशिश करनी चाहिए।

मौलिकता और

शेक्सपीयरके विषयमें ए ससारमें कभी कोई मौलिक शेक्सपीयर था। उसकी मौ मे मनुष्य-जीवनके सम्बन्धमें मिलते हैं। शेक्सपीयरकी विचित्रता, जो उसको अन्य है कि वह जीवनको अनेक स्वर्य, मिल्टन, पोप तथा अन्य हैं, उनकी समस्त रचनाओंक अवगत हुए बिना न रहेगा मार्गमें बहती है। उन देखा है। जब वे उसका उनके सामने आता है। गम्भीर प्रकृतिका कपाट आराधनामें उसका रस ह

मनुष्यको परवश ही माना है। उसने अपने काव्योमे ईश्वरके सामने मनुष्यके इसी परवश स्वरूपको अकित किया है। यह बात शेक्सपीयरमें नही है। वह मनुष्य को एक रूपमें दिखलाकर सतुष्ट नही होता। यदि कही वह हेमलेटका अथवा ब्रूटसका चरित्र अकित करता है, तो कही मैंकवेथ और ओथेलोका और कही टचस्टोन तथा फ़ालस्टाफ़का। शेक्सपीयरके अनुभव-क्षेत्रका यह विस्तार उसीकी विशेषता है।

विनोद-प्रधान नाटक

शेक्सपीयरके जो नाटक विनोद-प्रधान कहे जाते है, यदि उनके असली स्वरूपपर ध्यान दिया जाय, तो उनमे कल्पना और जीवनके आनन्दका बाहुल्य ही मिलेगा। समाजमे जो-कुछ प्रकट अनौचित्य दीखता है, उसीको मिटानेके लिए विनोद-प्रधान नाटकोकी रचना होती है। उपहास और व्यग्यका आश्रय लेकर नाटककार बुराइयो की तीव्र समालोचना करता है और प्राय उसकी इच्छा के अनुकूल फल भी होता है। परन्तु उपहास दो प्रकार का होता है। एक उपहास वह है, जिसमें तीक्ष्ण व्यग और घृणाका प्राबल्य होता है। दूसरे प्रकारके उपहासमे व्यग और घृणाका नाम नही होता, उसकी उत्पत्ति और उसका जीवन प्रेमके अन्तर्गत ही होता है। शेक्सपीयरके विनोद-प्रधान नाटक ऐसे ही है। 'एज यू लाइक इट', 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' और 'मच एडो एबाउट नथिग' आदि मे वह कही भी तीक्ष्ण व्यगमें रत नही होता। सच पूछिए तो इन नाटकोमे काव्य, कल्पना और जीवनके आनन्दकी मस्ती ही अधिकतर दिखाई पडती है। चारो ओर जीवन की सरसताको देखकर शेक्सपीयर उन्मत्त हो जाता था। कभी-कभी यह ससार उसे स्वर्ण-रजित-सा जान पडने लगता था। उसके उक्त नाटकोसे यही परिचय मिलता है।

उदात्त और दुर्बल भावनाका चित्रण

किन्तु ससारका यह मोहक रूप दिखाकर शेक्सपीयर मौन नही होता। वह हमारी उस दुर्बलताका दृश्य भी दिखाता है, जो मनुष्यको पग-पगपर अदृष्टके सामने उसकी विवशता दिखलाती है। 'हेमलेट'में बादशाहको मार न सकनेमें हेमलेटकी असमर्थता दिखलाकर वह हमारे सामने बेढब प्रश्न खडा कर देता है। हेमलेट कवि है, दार्शनिक है, उदात्त विचारका पुरुष है, फिर भी वह उस कार्यको नही कर सकता, जिसे करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है, और जिसे लेरटीज़-सा साधारण आदमी बिना विलम्बके कर सकता है। भिन्न-भिन्न लेखकोने हेमलेट की इस असमर्थताके भिन्न-भिन्न कारण बतलाए है। किसीका कहना है कि वह दार्शनिक एव कवि होनेके कारण व्यावहारिक कार्यम कुशल नही था और उसे मानसिक रोग था, इसी कारण वह अपना कार्य नही कर सका। किसीका कहना है कि वह व्यावहारिक कार्यमे कुशल होने हीके कारण अपने पिताकी हत्याका प्रमाण पाए बिना बादशाहका वध न कर सका। इन भिन्न-भिन्न मतोमें किसका मत ठीक है और किसका नही, इससे हमे कोई मतलब नही। हमारा मतलब तो है इस बातस कि हेमलेट-जैसा बलवान् मस्तिष्क और उदार नैतिक भावोका पुरुष जीवनके ऐसे चक्रमे पड गया कि उसे उस कार्यम रत होने की आवश्यकता प्रतीत हुई, जिसके करनेकी योग्यता उसमे इसी कारण नही थी कि वह इतना अधिक उदात्त विचारवाला है। इस प्रकार शेक्सपीयर हमारे सामने बडा गहरा प्रश्न खडा कर देता है। जिन आदर्शोंका जीवनमे प्राप्त करना मनुष्य अपना लक्ष्य समझता है, उनके कारण जब वह जीवनके कर्त्तव्योको कर सकनेकी योग्यता खो बैठता है, तब फिर हमें क्या करना चाहिए? शेक्सपीयर इसका उत्तर नही देता, केवल सकेत-मात्र करके वह हम छोड देता है। वह अदृष्ट मनुष्यके आत्म-विकासके प्रयत्नके विरुद्ध नही है। वह हममें पूर्णता चाहता है और हमारी अपूर्णताके लिए हमें कठोर दण्ड देता है, यही उसका सकेत है।

बुराईको प्रश्रय देनेका परिणाम

पर 'मैकवेथ'म शेक्सपीयर एक दूसरी ही बात बतलाता है। मैकवेथ क्रूर हत्या और अनाचारका आश्रय लेकर राज्य प्राप्त करता है, पराजित होता है और मृत्युकी गोदमे जाता है। यदि इतना ही होता, तो मैकवेथ शोकान्त नाटक न कहलाता, क्योकि दुराचारी पुरुषके जीवनके दु खमय परिणामपर शोकान्त नाटक अवलम्बित नही किया जा सकता। लेकिन दुराचारी होनेके साथ ही मैकवेथ मे पहले सज्जनता विशेष परिमाणमे थी। जिस दिन उसके राज्य पानेकी भविष्यवाणी की गई, उसी दिनसे उसमें प्रबल लालसाकी लहर आई और तभीसे वह एक अनाचारके बाद दूसरा अनाचार करने लगा। धीरे-धीरे उसके सम्पूर्ण अच्छे गुण नष्ट हो गए। मनुष्यमें थोडी-सी बुराई किस प्रकार बल पाकर उसके मृदु स्वभावको नष्ट करके उसे राक्षस बना देती है, इसी दु खमय सत्यका अवलम्बन करके इस शोकान्त नाटकने जन्म पाया।

'ओथेलो'में आइगोका चित्रण करके शेक्सपीयरने हमें मानव-प्रकृतिकी एक दूसरी ही दुर्बलताका पता दिया है। मनुष्य अपने क्षणिक विनोदके लिए औरोका सर्व-

नाश कर सकता है, ओथलो और डसडमोना जैसे दो प्रेमियो का जीवन दु खमय कर सकता है क्या यह शोचनीय नही है ?

आत्म शुद्धिका हेतु

शक्सपीयरके शोकान्त नाटकोकी यह सबसे बडी विशषता है कि वे हमारा ध्यान मानव-जीवनकी अपूर्णताकी ओर ले जाते है। अन्य शोकान्त नाटकोकी तरह वे प्रयत्न विशषमें हमारी असफलताको दिखलाकर हमारे हृदयको निराशाका धक्का नही देत। वे केवल उस कर्मोकी याद दिलाते ह, जिसन मानव-जीवनको चारो ओरसे घर रखा है। और इस क्रिया द्वारा वे हम अदृष्ट की ओर अग्रसर होनके लिए प्रेरित करते हैं। हम यह मानत हैं कि हमारी असफलताको दिखानवाले नाटक हमारा अपकार ही करेंगे और शायद इसी कारण हमारे सस्कृत-साहित्यमें शोकान्त नाटकोके लिए कोई स्थान नही है परन्तु मरा विचार है कि शक्सपीयरके ढगके नाटक हमारी प्रकृतिसे कलुषित अशको निकालकर हमारी आत्म-शुद्धि ही करेंगे।

शेक्सपीयरकी .

यदि शक्सपीयर जीवनके मुग्धता दिखलाता है, तो कहीं का चित्रणकर हमें क्षुब्ध भी वह हम यह पता नही देता कि उसका एक निश्चित विचार क्य दृश्योको दिखाकर, भिन्न भिन्न कर मौन हो जाता है और हम हो जिस ससारम इतना सुख है, उ जिसमें इतना आनन्द है, उसमें द्वप भी है, जिसम इतनी भी है। शक्सपीयर हम करता है। यह सब देखकर लगते है। इस विचित्रताका अज्ञात शक्तिकी महत्ताका शक्सपीयरकी विशषता है, यही अधिक नाटककार कुछ नही शक्सपीयर महान् और सवश्रष्ठ

रूसी कथाकार तुर्गनेव

श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय

तुर्गनवके नामसे हिन्दीके कहानी प्रेमी अपरिचित नही हो सकत, किन्तु उसके जीवन चरित्र एव कृतियो का व्यवस्थित परिचय अभीतक हिन्दी जगत्में कही प्रकाशित नही हुआ है। ससारके चोटीके कथाकारोम स चुन हुए आठ-दस लेखकोकी कृतियाको यदि सामने रखा जाय, तो उनम कम-से-कम एक पुस्तक तो तुर्गनवकी अवश्य ही लेनी होगी। जिस प्रकार रूसी साहित्यकार टाल्स्टाय और गोर्कीसे हिन्दीके साहित्यकार परिचित है, उतने ही परिमाणमें तुर्गनव अभी उनके सामन नही आ सके है। फिर भी उनकी विशिष्ट शैली और कलाका परिचय उनकी एकाध कहानीसे भी सहज ही प्राप्त हो जाता है।

तुर्गनव और शरच्चन्द्र

रचनाएँ किसी भी सहृदय वीय भावना एव कल्पनाका देशम उपस्थित कर सकती है। के लिए लेखकम व्यापक कुशल चित्रण शक्तिकी बडी और तुर्गनवम य तीनो ही कारण बंगलामें शरच्चन्द्र पाश्चात्यसनम सफलता मिली नाते चिरस्मरणीय बन गए। सहृदयता और सहानुभूतिकी स है और इनकी रचनाएँ पढन अनुभव होता है कि लेखकने अ

नामक नगरमे हुआ था। उनके पिता सेनामे लेफ्टिनेंट थे। उनकी माता एक धनवान जमीदारकी पुत्री थी। उसके पिताके अधिकारमे हजारो एकड जमीन एव पाँच हजार गुलाम (दास) थे। बाल्यावस्थामे ही तुर्गनेव अपने माता-पिताके साथ फ्रास, स्विट्जरलैंड, जर्मनी आदि देशोकी यात्रा कर चुके थे। किन्तु नौ वर्षकी अवस्था तक उन्हे अपना जीवन जमीदारीके गाँवोमे ही बिताना पडा। अतएव खाना-पीना और मस्त होकर घूमना ही उस समय उनके जीवनका मुख्य कार्य रहा। गाँवके चारो ओर प्राकृतिक सौन्दर्य बिखरा हुआ था। अतएव कभी वे वन-उपवनकी सैर करते, तो कभी गहन वनमे भटकते रहते थे। इसी प्रकार कभी अपनी छोटी नौकामे बैठकर वे सरोवरके जल विहारका आनन्द भी प्राप्त करते थे। इस प्रकार बाल्यावस्थामे ही प्रकृतिने उनके कोमल अन्त-करणपर अपने अमिट सस्कार अकित कर दिए थे, जो कि आगे चलकर युवावस्थामे उनके साहित्य-सृजनमे परम सहायक सिद्ध हुए।

विलासी पिता और निष्ठुर माँ

तुर्गनेवके पिता तत्कालीन अन्य भूमिपतियोकी ही तरह शौकीन एव विलासी थे, अतएव उनका जीवन आनन्दमे ही व्यतीत होता रहा। साथ ही नीति-नियमोके पालन या सामाजिक बन्धनकी भी वे परवाह नही करते थे। फलत तुर्गनेवने भी अपने पिताका ही अनुकरण किया। किन्तु उसकी माता दिन-रात अपनी जमीदारीकी महत्तामें निमग्न रहती थी। फिर भी उनका स्वभाव निष्ठुर था। एक बार उनकी वाटिकामे काम करते हुए दो श्रमजीवियो ने अपने काममे तल्लीन रहनेके कारण उनके आनेपर उठकर सलाम नही किया, इसीपर क्रुद्ध होकर उन्होने उन दोनोको जन्म-भरके लिए साइबेरिया भेज दिया। इसी प्रकार तुर्गनेवके बडे भाईको भी उन्होने किसी साधारणसे अपराध पर स्वत अपने हाथोसे निर्दयतापूर्वक चाबुक लगाए थे। यहाँ तक कि मारते-मारते जब वे खुद बेहोश होकर गिर पडी, तो नगे बदनसे काँपता हुआ एव बेतरह पीटा जानेके कारण अधमरा हो जानेवाला वही पुत्र चिल्लाने लगा—"अरे, कोई जल्दीसे पानी लाओ। माँ बेहोश हो गई है।"

घरसे पलायन

इसी उपाय (पिटाई) का उन्होने तुर्गनेवपर भी कई बार प्रयोग किया था। तुर्गनेव कहते थे कि "छोटे-से-छोटे अपराधपर पहले मुझे अपने मास्टर धमकाते और बेतरह क्रुद्ध होते, इसके बाद माता मुझे चाबुकसे पीटती और फिर मेरा खाना बन्द कर दिया जाता था। इस प्रकार भूखे-पेट वाटिकामें घूमते हुए रो-रोकर आँसुओकी जो धाराएँ मेरे मुँहमे चली जाती, उन्हीके खारे स्वादके द्वारा मुझे अपनी भूख-प्यास शान्त करनी पडती थी।" फलत माताके इस निष्ठुर व्यवहारसे तग आकर वे एक दिन रातको घरसे भाग निकले। किंतु उनके जर्मन अध्यापकको इस बात का पता चल गया था, अतएव वे उन्हें समझा-बुझाकर वापस घर ले आए।

स्वाभाविक सौंदर्य-दृष्टि

तुर्गनेवका शरीर भरा-पूरा होनेके साथ ही उनकी लबाई-चौडाई भी पर्याप्त थी। साथ ही उनके सिरपर भूरे बालोका जगल-सा बढा हुआ था, और चौडा ललाट उनकी भव्यताको प्रकट करता था। साथ ही उनकी बुद्धिमत्ताकी चमक भी स्पष्टतया दिखलाई देती थी। उनके नेत्रोपर से भी उनकी कुशाग्र बुद्धि एव भावना-प्रधान वृत्तिका परिचय मिलता था। उनके होठोके सिरेपर हमेशा ही हल्की मुस्कुराहट झलकती रहती थी। वे स्वत सुरूप थे, इसी कारण सुन्दर वस्तुओकी ओर उनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी और अभिजात सौन्दर्यकी परख भी वह भलीभाँति कर सकते थे। फिर भले ही वह कोई सुन्दर पुस्तक हो या सुन्दर स्त्री, वे अपने स्वाभाविक उत्साह के साथ उसका स्वागत करते और उसे स्वीकार करते हुए अपनी रसिकता व्यक्त करते थे।

उनकी बाल्यावस्थामे एक बार राज-परिवारकी एक वृद्धा स्त्री उनकी मातासे मिलने आई, तो बालक तुर्गनेवके इन्कार करनेपर भी माताने उन्हें उसकी गोदमें बैठा दया। अत कुछ देर तक उस वृद्धाके मुखकी ओर देखनेके बाद तुर्गनेवने कहा—"तुम तो एकदम बँदरिया-जैसी दिखाई देती हो।"

यह सुनकर तुर्गनेवकी माता उस वृद्धाके विदा होने तक मन-ही-मन फडफडाती रही और उसके जाते ही तुर्गनेवकी इस स्पष्टोक्तिके लिए उसने खासा 'पुरस्कार' दिया।

कविताकी पुस्तकें चुराकर पढ़ीं।

अँगरेजी शासनमें हमारे यहाँ कुछ अल्ट्रा-फैशनेबल लोग देशभाषा और मातृभाषासे विमुख होकर अपने बच्चो को केवल अँगरेजी ही पढाते थे। ठीक यही दशा उस समय रूसमे भी थी—अर्थात् रूसी-भाषा गँवारू समझी जाकर बच्चोको फ्रच सिखलाई जाती थी। इसी कारण तुर्गनेव को भी बचपनमे फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ सीखनी पडी। किन्तु रूसी-भाषा तो वे घरके नौकरोसे ही सीख गए। यहाँ तक कि एक नौकरके लडकेकी सहायतासे घरकी अरगनी

या टॉडपर पडी हुई रूसी-कविताकी पुस्तकें भी चुराकर उन्होंने पढीं।

उनकी माताका परिचित एक भुक्खड रूसी लेखक जब एकबार उनके घर आया, तो उनकी एक कहानी तुर्गनेवको देकर माताने कहा—"जरा इसे पढना तो, बेटा!" और तत्काल तुर्गनेवने वह कहानी पटकर सुना दी। इतना ही नही, उस लेखकसे यह भी कह दिया कि "तुम्हारी अपेक्षा तो काइलोवकी कहानियाँ कही अधिक सुन्दर होती है।" किन्तु इस सम्मति-प्रदर्शनके लिए भी उन्हें माताके चाबुककी मार ही खानी पडी। फिर भी तुर्गनेवने कहा—"अपनी मातृभापाके इस प्रथम लेखककी भटके उपलक्ष्यमें प्राप्त इस पुरस्कारको मैं आजन्म नही भूल सकूँगा!"

नौ वर्षकी अवस्था हो जानेपर तुर्गनेव अपने माता-पिताके साथ मास्को गए और वहाँ जाकर उन्होंने अँगरेजीकी शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने शेक्सपीयर, शेली, कीट्स, बायरन आदिका अध्ययन किया। अन्तत १४ वर्षकी अवस्थामे वे मास्को-विश्वविद्यालयकी प्रवेश-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और तब उन्हें सेंट पीटर्सबुर्गके विद्यालयमें भर्ती कराया गया। उसी समय उनके पिताका देहान्त हो गया। उनकी माता उस समय इटलीमें थी।

बाल्यावस्थाके कुसस्कार

पीटर्सबुर्गसे बादमे वे बर्लिन जाकर तत्वज्ञानका अध्ययन करने लगे। मनोरजनके अन्य प्रयोगोमे भी उन्होंने बहुत-सा समय नष्ट कर दिया। इधर बचपनमें घरके दास-दासियो एव नौकरोकी सगतिसे भी उनमे अनेक बुरे सस्कार आ चुके थे। बर्लिनमें रहते हुए प्रसिद्ध अराजकतावादी बाकुनीनसे उनकी मित्रता हो गई। इधर घरसे आनेवाले रुपए वे नाटक देखनेमें उडाने लगे। साथ ही बाकुनीनने भी उनके रुपयोसे अपने सिरका बहुत-सा कर्ज उतार दिया! इस प्रकार तुर्गनेव कभी तो किसी साहित्य-गोष्ठीमें वाद-विवाद करते दिखाई देते और कभी किसी प्रसिद्ध नटीके साथ होटलमें भोजन करते।

पुत्रके साहित्यकी आलोचनापर माताको खेद

तुर्गनेव यद्यपि अध्ययनमें कुशल थे, किन्तु अपनी माताकी इच्छानुसार कोई उच्च उपाधि प्राप्त करनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति नही थी। अन्तत अठारह वर्षकी अवस्था

कठोर आलोचना प्रकाशित की
उन्होंने कहा—"छि-छि, तुम
पर एक साधारण-से पुरोहित
जाती सर्वथा अपमानास्पद ही
मनोवृत्तिपर खासा प्रकाश

एक [illegible]

तुर्गनेवकी सबसे पहली
कहानी' के नामसे प्रकाशित
बाबूकी 'श्रीकातेर भ्रमन
हो आता है। दोनो
दोनो लेखकोका उद्देश्य अपनी
घटनाका विवरण देना ही नही
कुछ नमूने ही जनताके सम्मुख
तुर्गनेवने अपनी इस पुस्तकमे
प्रकाश डालते हुए गुलामीकी
पूर्वक चित्रित की है। इस
आँसू आए बिना नही रहते।
प्रथा नाम-शेष करानेमें अन्य
इस पुस्तकका भी विशेष
अलेक्जेंडरने भी इस पुस्तकको
भी पढते-पढते आँसू रोकना
यह तो नही कहा जा सकता
सर्वोत्तम पुस्तकोमें इसकी
उस शताब्दिके कथाकारोमें
सेवियोमें अवश्य रहा है।

जेल

सन् १८५२ में प्रसिद्ध
होनेपर तुर्गनेवने उनके
पीटर्सबुर्गके सरकारी सेंसरने
अतएव इन्होंने उसे मास्को भेज
हो गया। इस लेखसे
उन्होंने जारके कानो तक यह
तुर्गनेवको पकडकर जेल
नेवकी लोकप्रियता बहुत बढ
गया था, उसके सामनेवाली

होती है, उसका अनुभव मुझे यहाँ रहते हुए भलीभाँति हो रहा है।"

ससारकी सर्वश्रेष्ठ कथा

जेलमें रहते हुए ही उन्होने 'मम्' नामकी कथा लिखी, जो कार्लाइलके मतानुसार ससारकी सर्वश्रेष्ठ करुणाजनक कथा है। इसमें जिस कठोर स्त्रीका चित्र खीचा गया है, उसकी कल्पना कदाचित् उन्हें अपनी माताके स्वभावपर से ही हुई जान पडती है।

लोकमत और कलाकार

तुर्गनेवका 'फादर एण्ड चिल्ड्रेन' (पिता और पुत्र) नामक उपन्यास प्रकाशित होते ही रूसके युवक-समाजमें एक खलबली-सी मच गई। अराजकवादकी ओर युवकगण विशेष परिमाणमे आकर्षित होने लगे। दासताकी शृखला तोडकर नए प्रयोगके लिए यह अराजकवादी दल आतुर हो उठा था—अर्थात् पुराने नीति-नियमोंके बन्धन तोडनेके लिए यह समूह छटपटा रहा था। इसीलिए इस प्रकारके लोगोंके प्रतिनिधि-रूपमें तुर्गनेवने 'बेजरोव' नामके नायककी सृष्टिकर उक्त उपन्यासमें सामाजिक दोषोका दिग्दर्शन कराया। बस, फिर क्या था? तत्काल ही युवा-समाजमे उनके प्रति अप्रियता बढ चली। किन्तु इन्होने उसकी जरा भी परवाह नही की, क्योंकि लोक-प्रियता *लगभग वारागना-जैसी ही होती है।* अतएव कलाकारको भूलकर भी उसके चक्करमें नही फँसना चाहिए। उसकी अनन्य निष्ठा तो कलापर ही होनी चाहिए। जो-कुछ दिखाई दे तथा जो बात हृदयको पट जाय, वही कलाकारकी कृतिके द्वारा व्यक्त होनी चाहिए। उसके सम्मुख राग-द्वेषकी कोई भावना नही रहनी चाहिए, क्योंकि अपनी आत्म-शान्तिके अतिरिक्त अन्य कोई भी कसौटी उसके लिए श्रेष्ठ सिद्ध नही होती। कलाकारको लोकमतकी तराजूपर अपनी कला-कृतिको तौलकर देखनेकी मूर्खता भूल-कर भी नही करनी चाहिए। तुर्गनेवने प्रत्येक स्वभाव का चित्रण हल्के हाथोंसे ही सहानुभूतिपूर्वक किया है—अर्थात् अपनी किसी भी कथामें उन्होने उपदेशक बननेका प्रयत्न कभी नही किया है। तुर्गनेवके सुसस्कृत हृदयका दर्शन उनकी 'पिता और पुत्र' नामक रचनामें भलीभाँति होता है।

क्रान्तिकारियोंकी सहायता

यद्यपि निहलिस्ट लोगोंने तुर्गनेवके विषयमें अपना मन भले ही दूषित कर लिया हो, किन्तु उनके मनमें तो केवल *अन्यायका विरोध करनेके लिए सर्वस्वकी बाजी लगा देने-*वाले इन क्रातिकारकोंके प्रति आदरकी ही भावना थी। उनके जीवनके अनेक वर्ष रूसके बाहर फ्रास, जर्मनी आदि अन्य देशोमें व्यतीत हुए। साथ ही वे इन देशोंसे अथवा रूससे भागकर अथवा निर्वासित होकर आनेवाले क्राति-कारियोकी यथाशक्ति सहायता भी करते रहे। प्रिंस क्रोपाटकिन जब रूसकी जेलसे सही-सलामत भाग आए, तो तुर्गनेवने उनके स्वागतार्थ एक भोज भी दिया था। तुर्गनेव मिश्किनसे भी परिचित थे। इसी प्रकार जिनीवा के एक समाचारपत्रको तुर्गनेवने तीन वर्षो तक प्रतिवर्ष ५०० फ्राककी सहायता भी दी थी, क्योंकि वह पत्र क्रांति-कारी विचारधाराका था। जार द्वारा फाँसीपर चढाए गए क्रातिकारी विद्रोहियोके चित्रोंका एल्बम भी तुर्गनेवने अपने पास रख छोडा था।

तुर्गनेव और टाल्स्टाय

तुर्गनेव और टाल्स्टाय यद्यपि समकालीन साहित्यकार *थे, फिर भी दोनोंके दृष्टिकोणमें आकाश-पातालका अतर था।* टाल्स्टाय जीवनके लिए कलाका उपयोग करना चाहते थे, जबकि तुर्गनेव नितान्त कलावादी थे। वे 'कलाको केवल कलाके लिए ही' मानते थे। ऐसी दशामें इन दोनोंके बीच विवाद होना स्वाभाविक ही था। किन्तु ऐसा होते हुए भी जब टाल्स्टायको पता लगा कि तुर्गनेव अपने जीवन की अतिम घडियाँ गिन रहे हैं, तब उन्होंने इन्हें एक पत्र लिखा—*"तुम्हारे अस्वस्थ होनेका पता लगा और यह भी* ज्ञात हुआ कि तुम्हे भयकर रोगने त्रस्त कर दिया है। किन्तु तुम्हारे प्रति मेरी कितनी श्रद्धा है, यह मै आज ही अनुभव कर सका हूँ—अर्थात् यदि इस बीमारीमें तुम्हारी मृत्यु हो गई, तो मुझे कितना दुख होगा, यह मै कैसे बताऊँ? परमात्मा करें, हम-तुम परस्पर फिर मिल सकें! यदि सभव हो, तो सविस्तार समाचार तुम स्वत अथवा दूसरेसे ही लिखवाकर अवश्य भेजो।"

वह हृदयस्पर्शी पत्र

जिस समय यह पत्र मिला, तुर्गनेव उस समय तक अत्यन्त दुर्बल हो चुके थे, फिर भी उन्होंने काँपते हुए हाथोंसे स्वत इसका उत्तर दिया—"प्रिय ल्जिो निकोलाय, मै अत्यन्त अस्वस्थ होनेके कारण कितने ही दिनोंसे आपको पत्र नही लिख सका। और यदि सच कहा जाय, तो अब मैं मृत्यु-शय्यापर ही हूँ। अब मेरा इसपर से उठ सकना असभव ही है। और इसीलिए उसके सम्बन्धमें विचार या चिन्ता करना व्यर्थ है! किन्तु एक बात मैं आपसे अवश्य कह देना चाहता हूँ कि मै आपका समकालीन हूँ और इसी कारण मैं अपने-आपको अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ। प्रिय मित्र, आप पुन साहित्य-सेवा आरम्भ कीजिए।

यह ईश्वरीय देन आपको प्राप्त हुई है यदि किसीने मुझको यह समाचार सुनाया कि मेरे इस निवेदनका आपपर प्रभाव पड़ा है, तो सचमुच मुझे कितनी प्रसन्नता होगी ! मैं तो अब समाप्तिपर ही हूँ। लिखनेमें भी मुझे बड़ा श्रम होता है। रूसके महान् लेखक ! मेरे इस अंतिम निवेदनको स्वीकार तो करेंगे न? आपको तथा आपके सम्बन्धियों के प्रति हार्दिक स्नेह स्वीकार कीजिए। अधिक लिख नहीं सकता, थक गया हूँ !"

विवाहोत्तर स्त्री-सम्बन्धका समर्थन

तुर्गनेवकी अधिकांश कथाओंमें सूक्ष्म मनोविश्लेषण अत्यन्त स्पष्ट दिखलाई देता है। उन्होंने मानवीय गुण-दोषोंका समान रूपसे सहृदयतापूर्वक विवेचन किया है। 'रूदीन' तथा 'ए हाउस आफ् जेंटल फोक', 'आन द ईव', 'फादर एण्ड चिल्ड्रेन', 'स्मोक', 'वर्जिन सायल', 'पोर्टमेन्स स्केचेस' आदि उनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। उनके स्वभाव एवं पुस्तकोंपर भी विषाद एवं करुण निराशाकी गहरी छाया स्पष्ट दिखाई देती है। मानवी स्वभावपर उनका विश्वास था। इसीलिए मानवी दोषोंके प्रति वे सहानुभूति प्रकट करते थे, किन्तु वे खुद भी सम्बन्धकी अपेक्षा ... था। किसी नौसिखुए कहते हैं—"विवाह करके कोई आनन्द नहीं। भिन्न-कलाके विकासके लिए जितना तृप्त करनेके लिए नहीं। विवाहिता स्त्रीके प्रेममें उत्साह होता है।"

ठेठ अंतिम क्षण तक सहृदयता कायम रही। नवोदित लेखक उनके पास वानेके लिए प्रकाशकसे प्रार्थना की, तो उस दशामें पत्र देकर उसकी पुस्तक महान् चित्रकार १८८३के यदि पाठक मानव-स्वभावके चाहें, तो उन्हें तुर्गनेवकी

नया मकान

क० ना० सुब्रह्मन्यन्

राव बहादुर नरसिंहम्की अंतिम लालसा भी पूरी हो गई। उनका नया मकान बनकर तैयार था और प्रात-काल होते ही शुभ घड़ीमें वे गृह प्रवेश करनेवाले थे। इस अवसरपर धार्मिक कृत्योंके साथ-साथ वृहत् धूमधाम एवं भोज आदिका प्रबंध भी किया गया था।

प्राय तीस वर्ष पूर्व, नरसिंहम्ने अपना जीवन सरकारी दफ्तरकी एक बहुत मामूली और नगण्य-सी नौकरीसे शुरू किया था। बड़े ही कष्ट और अध्यवसायसे धीरे-धीरे उन्नति करके वे पहले 'अफसर' बने और फिर 'राव बहादुर'। चिरकालसे उनकी इच्छा मद्रासके रईसोंवाले सबसे अच्छे मुहल्लेमें अपना एक मकान बनवानेकी थी और आज उनकी वह इच्छा भी पूरी हो गई थी। कलके स्वर्णिम नव-प्रभात में वे -वदना धमधामके साथ नग ...

सम्पन्नताकी प्रतीक है। वाली चीजोंमें मकान ही इस मौकेपर नरसिंहम्के न था।

कोई खास जरूरत न प्रवेशके उत्सवकी ... नौकरोंके मामलेमें वे ... भी उन्हें ऐसा मिला, जैसा बहादुरका बच्चा, छोटा अपने जीवनके इस परम भी नौकरके ऊपर छोड़ना कारण वे स्वयं ही पूरी

एक बडा-सा शानदार पडाल तैयार किया गया। ऐसे बडे-बडे लोग आनेवाले थे, नरसिहम् जिन सबकी पूजा करते थे। एक-दो राजकुमार और बहुतोंके प्रतिनिधि भी आनेवाले थे। जैसे कोई दूसरे हो, वे कह उठे—'नरसिहम् ने जीवनमें सचमुच कुछ कर दिखाया है!' और अपने जीवनके इस श्रेष्ठतम सुप्रभातका उन्हे जैसे पर्याप्त गर्व था। आम्रपत्र, ताड व केलेके पत्तोसे पडालका कोना-कोना सजाया हुआ था। उस पट्टीदार नीले रगके शामियानेकी शोभा देखते ही बनती थी। बहुत भड-कीला न होनेपर भी वह सुरुचिपूर्ण था। पुरोहित और ब्राह्मण लोग इस वैभव-प्रदर्शनसे हतबुद्धि हो गए थे। बादमें होनेवाला भोज तो लोग लबे अर्से तक याद रखेंगे।

नरसिहम्ने खूबसूरत निमत्रणपत्रोपर स्वय सबके नाम और पते लिखे थे। इन आमत्रितोमे से कुछ उनके मित्र थे। किंतु अधिकतर लोग ऐसे थे, जिन्हें न तो मित्र और न शुभचिंतक ही कहा जा सकता था। कुछ ऐसे भी थे, जो केवल 'परिचित'की श्रेणीमें आते थे। इस अवसरपर नरसिहम्ने शहरके सबसे अच्छे नाद-स्वर-विद्वान को बुलाया था और उनसे कहा था कि ऐसा गाना-बजाना होना चाहिए, जैसा कि कभी न हुआ हो! दिनके बारह घटोमे भला सारे काम पूरे हो सकते थे? अत रातमे बहुत देर तक वे काम देखते रहे। नरसिहम् जब सोने गए, तो बेहद थक गए थे, किन्तु फिर भी उन्हे नीद नही आई। बहुत देर तक वे करवटें बदलते रहे। उनके दिमागमें अनेको प्रसग आ रहे थे, किंतु एक बात बार-बार घूम रही थी कि 'अतमें आज मेरी इच्छा पूरी हुई। अब मे नए मकानमें पदार्पण करूँगा। जीवनमें मुझे अब सब-कुछ मिल गया।' उनके मनमे आता था कि क्यो न अभी ही सबेरा हो जाय और जल्दीसे गृह-प्रवेश कर डाला जाय। घडीकी आवाज़ सुनाई पडी—चार। ओफ्, अभी तो दो घटेकी देर है सबेरा होनेमे। नरसिहम्के लिए बिस्तर पर पडे रहना असभव हो गया। अपने किरायेकी छत के ऊपर एक आरामकुर्सी खीचकर वे लेट गए—नव-प्रभात के स्वागतकी तैयारीमें।

घरके सब प्राणी अभी सो रहे थे। दिन-भर वे व्यस्त रहे और अगले दिन भी बहुत काम था, अत सभी लोग नीद पूरी करनेकी चेष्टामें थे। अगर नीद न थी, तो केवल नरसिहम्की आँखोमें। आरामकुर्सीपर लेटते हुए उन्होने सामनकी ओर एक नज़र डाली। नया मकान इस मकानके ठीक सामने था। अधकारके कारण यद्यपि मकान दिखलाई नही पडता था, पर उन्हें निश्चय था कि नारियलके झुरमुटके पीछे ही वह था। मिलापुर मे यह सबसे अच्छा मुहल्ला था—साथ ही सबसे मँहगी जगह भी। भविष्यके मान-सम्मानकी कल्पनामे नरसिहम डूब गए।

मनुष्य समयके हाथकी कठपुतली है। भविष्यकी कल्पना करते-करते अचानक राव बहादुरका ध्यान अतीत की ओर चला गया। उन्हें पत्नीकी याद हो आई। बहुत वर्ष पूर्व वे उसे याद किया करते थे, पर अब तो वे उसके बारेमे जैसे बिल्कुल ही नही सोचना चाहते। उन्होने अपने सिवा और किसीके बारेमें कभी नही सोचा। फिर भला इस शुभ अवसरपर उसकी याद? वे उसको अपने ध्यानसे दूर करनेकी पूरी चेष्टा करने लगे और अपनी आशा-प्रत्याशापर फिर विचारने लगे। बीते दिनोकी ऐसी स्मृति थी, जिसे वे आज स्मरण करना चाहते हो। भूलमे तो नीरसता और शुष्कताके सिवा और कुछ था नही, जिसे याद किया जाय। स्कूल और कालेजके दिनोमे भूख उनकी चिर-सहचरी थी। नरसिहम्ने जबसे होश सँभाला, अपनेको अकेला ही पाया। अकेले ही उन्होने परिस्थितियोका सामना किया और आजकी इस स्थितिपर भी वे अकेले ही पहुँचे थे। किसीको भी उन्होने पास नही फटकने दिया। आरभसे ही उन्होने अपने-आपको सफलता प्राप्त करनेकी चेष्टामें जी-जानसे लगा दिया। जीवन की शुरुआत उन्होने एक बहुत मामूली नौकरीसे की थी और जार्ज टाउनमें आ बसे थे। जार्ज टाउनको कुछ लोग 'ब्लैक-टाउन' भी कहते है, जो बडा ही उपयुक्त जान पडता है। जार्ज टाउनसे चिंताद्रिपेट तककी यात्रा बडी लबी और कष्ट-साध्य थी। किन्तु उसके बाद रास्ता आसान हो गया और दूसरी मजिल—ट्रिप्लिकेन—की यात्रा उतनी कठिन न रही। फिर तो प्रगति अपने-आप होती गई। ट्रिप्लिकेनसे मिलापूरके पूर्वी भागमे और वहाँसे फिर ठेठ पश्चिमी भाग तक राव बहादुर बहुत सुगमता-पूर्वक पहुँच गए। जिस महान् कार्यको उन्होने उठाया था, वह अतमें पूरा हुआ। साथ ही उनकी चिर-अभि-लषित इच्छाकी भी पूर्ति हो गई। अभी भी वे एकदम अकेले थे। उन्होने मन-ही मन कहा—'मेरी यात्रा अच्छी ही रही। अब तो सतोष और शाति दोनो ही मिल गए!'

और नवीन सुप्रभातमे वे अपने नए मकानमे पदार्पण करेंगे। यद्यपि इसमें रुपए बहुत लग गए थे, तथापि उन्हें इसकी प्रसन्नता थी। प्रत्येक पाई ठीक-ठीक ही खर्च हुई है—उन्होने अपने-आप ही कहा। आज उनके लिए पैसेका आना बहुत आसान हो गया था, किंतु इसका यह

मतलब नहीं कि उसे व्यर्थ फूंका जाय। एक समय था जब उन्हें पैसे-पैसेका मुँह देखना पड़ता था। पर अब तो वे गज़ेटेड आफिसर थे। उनके नामका उल्लेख अक्सर सरकारी गज़टोंमें होता था। एक पूरा विभाग उनके नीचे था और वे अपने विभागके डिक्टेटर थे—एक उपदेवताकी तरह। उनकी पगड़ी, उनकी भाग-दौड़, उनकी भाव-भंगिमा तथा तेवर आदिकी ओर उनके सहकारियोंकी नज़र लगी रहती थी। कभी-कभी वे बड़ी ही निर्ममता और कठोरतापूर्वक राव बहादुरकी आलोचना करते थे, किंतु उनके मुँहपर कुछ कहनेकी हिम्मत किसीमें न थी।

एक दिन अचानक वे राव बहादुर बन गए। निश्चय ही यह कोई अप्रत्याशित बात न थी और वे अपनेको इस सम्मानके लिए बहुत उपयुक्त मानते थे। उसकी खुशी का उत्सव मनाते समय ही उन्हें ख़याल आया था कि यदि अपना एक मकान हो, तो क्या ही अच्छा रहे। और उसी दिनसे वे इस कार्यमें जुट पड़े थे। सवेरा होते ही राव बहादुर नए मकानमें आएँगे। भला एक आदमीको इससे अधिक और क्या चाहिए।

अचानक उन्हें ऐसा लगा कि कोई हँस रहा है। चौंककर उन्होंने इधर-उधर देखा। कहीं कोई भी न था। यहाँ वे अकेले थे। आज ही क्यों, उनका सारा जीवन ही एकाकी रहा है। निश्चय ही छतपर ऐसा कोई न था, जो उनके ऊपर हँस सके। इस समय छतपर हँसनेवाला कोई न था, केवल भ्रम हो गया था उन्हें।

वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि नये मकानमें प्रवेश करनेके पूर्व सभी आदमियोंको बहुत सावधानीसे काम करना चाहिए—विशेषकर मेहमानोंको निमंत्रित करनेमें। ऐसे लोगोंको न बुलाना चाहिए, जिनके पास अपना मकान न हो, क्योंकि उन्हें गृह-स्वामीके भाग्यपर अवश्य ही ईर्ष्या होगी और इस प्रकार शुभ कार्यमें वे अशुभका बीज बोएँगे। ऐसे लोगोंसे भी दूर रहना चाहिए, जिनके पास रहनेकी जगह अच्छी और आरामदेह न हो। ज़िंदगी-भर किराए के मकानोंमें सड़नेवालोंसे तो कोसों दूर रहना चाहिए। मकान-मालिकके सौभाग्यके ऊपर उनकी दृष्टि लगे बिना न रहेगी। ऐसे लोग इस मौकेपर खूब हँसी उड़ाते हैं और

है और दूर नहीं,
अभावग्रसितोंका साथ
हो गया। आज तो
आवेंगे—नई, सुन्दर और
स्वयं राव साहबके पास
श्रीमती स्टोन, लेडी
मिस्टर रत्नम्—एक-ए
बहादुरने गिन डाला।
नरसिंहम् गर्वसे फूल उठे।
उच्चारण किया। थे वे
मधुर और सुखद! हाँ,
जो बोले बिना न रहेंगे,
वे लोग जान-बूझकर नहीं
बुराई करेंगे। ये पुराने
होते हैं—राव बहादुरने
यहाँपर उनकी
नरसिंहम् स्वाभाविक
सोचते थे—जब वह ज़ि
स्मृतिमें भी न थीं।
नरसिंहम्का ध्यान उसीकी
पत्नीकी अनुपस्थितिका
था। या यों कहें कि इसपर
न होगा। जब तक वह
ही रहे। उसके मरनेके
हुई और आज तो वे
जहाँ तक प्रेम या ऐसी
नरसिंहम्ने दुनियामें कभी
अपनी पत्नीसे भी नहीं।
बाद कभी भी वह पतिके
नहीं कर पाई। एक
नौकर थी, बस और कुछ
करते थे—'वह खाना
अस्तित्वकी एकमात्र
पुत्र जरूर पैदा किया,
ऐसी नौकरानी भी न थी,
हो सके। पत्नीकी

आफिस दोनो ही जगह वे सर्वेसर्वा थे। प्रेमको रावबहादुर एकदम अनावश्यक मानते थे, यहाँ तक कि उनका पुत्र भी उन्हे पिताके रूपमे न जानता था। वह तो उन्हें 'राव-बहादुर', 'गज़ेटेड आफिसर' या 'अमुक विभागके प्रधान' के रूपमे ही जानता था। यही पर्याप्त है, मन-ही-मन राव बहादुर बोले।

सबेरा होते ही वे अपने नए मकानमे प्रवेश करेंगे। अचानक भावुकताके वश हो उन्होने मन-ही-मन जिज्ञासा की—मैंने यह मकान किसके लिए बनवाया और क्यो बनवाया? किंतु तुरन्त ही उन्होने अपने-आपको स्वस्थ कर लिया और बोले—मैंने इसे अपने सतोषके लिए बनवाया है। यह मेरे जीवनका एक अग है। इससे अधिक क्या और कोई चीज़ हो सकती है?

आरामकुर्सीपर लेटे-लेटे नरसिंहम्‌को लगा कि उनका मन और शरीर दोनो ही अस्वस्थ-से हो रहे हैं। जीवनमें उन्होने कभी भी किसी विषयपर सोच-विचार नही किया, क्योकि उसे वे समय बर्बाद करना ही समझते थे। किंतु आज ऐसा लगता था, मानो कुछ विशेष घटनाओंपर विचार करना आवश्यक हो गया है। गृह-प्रवेशके-से शुभ अवसरके पूर्व जो चित्र पिछले जीवनका उनके सम्मुख आ रहा था, वह बडा ही नीरस और महत्वहीन था। राव बहादुरने ऐसा अनुभव किया कि कोई उनके पीछे खडा है। उन्हे बडा ही आश्चर्य हुआ। ऐसा लगा कि उस अदृश्य व्यक्तिकी उपस्थिति उन्हें अपनी प्रकृतिके विरुद्ध सोचनेको प्रेरित कर रही है। फिर अचानक ऐसा लगा कि कोई उनके पीछे एकदम सटकर खडा है, बहुत ही पास। वे पीछे देखनके लिए मुडे। कैसी बेवकूफी है? भला कौन हो सकता है यहाँ? राव बहादुर कभी भी भावुक न थे। और आज इस उम्रमें निरर्थक कल्पनाओ और विचारोमे बहना उन्हें महज़ बेवकूफी मालूम पडी।

एक क्षणके लिए उन्हें फिर कुछ भय-सा हुआ। उनको लगा कि उनकी पत्नी खडी है—वह पत्नी, जिससे उन्हे कभी भी कोई आसक्ति न थी। आज वह महाकालीके रूपमें खडी थी। यह सब कुछ नही, केवल क्षणिक भ्रम है राव बहादुरने अपने-आपको स्थिर किया और इस विचार को दिमागसे एकदम निकाल फेंका, जैसे दूधसे मक्खी। फिर कुर्सीपर अपना स्थान ज़रा-सा बदलकर वे आरामसे बैठ गए और अपने-आप बोले—'मैं नरसिंहम्‌ हूँ, राव बहादुर नरसिंहम्‌, मिलापुरके एक नए मकानका मालिक! उन्हें इस बातका हमेशा गुमान था कि उनका मस्तिष्क एकदम स्वस्थ और सुलझा हुआ है। उन्होने कभी भी व्यर्थकी बातोको महत्व नही दिया। ग़लतफ़हमी और रूढिमय विचारोसे वे अपनेको कोसो दूर रखते थे। उन्हे कालीमे कोई आस्था न थी—चाहे वह लौकिक हो या दैविक। अपने जीवनमें उन्होने कभी भी धर्म-कर्ममें विश्वास नही किया।

पूर्वका गहन अधकार धीरे-धीरे कम हो रहा था। प्रात कालका शीतल समीर मद-मद वह रहा था। कौओ की काँव-काँव शुरू हो गई। नरसिंहम्‌का ध्यान उन गरीब मज़दूरोकी ओर चला गया, जिन्होने सुबहसे शाम तक पसीने-पसीने होकर मेहनत की थी और उनका मकान तैयार किया था। किंतु, इसमें एहसान अनुभव करने की तो कोई बात नही। उन्होने काम किया और पूरी मज़दूरी पाई, बस। नरसिंहम्‌ने सामनेकी ओर देखा। सबेरेके बढते हुए प्रकाशमें नारियलके झुरमुटोके पार उनका नया मकान धीरे-धीरे स्पष्टतर हो रहा था। उनका लक्ष्य पूर्ण हो गया था। मेरे नए मकानमें वह सब-कुछ है, जो एक मकानमे चाहिए। कितनी भव्य इमारत है। यह सब मेरा है—मेरा, मेरा। खुशीके मारे राव बहादुर मदहोश हो गए। किंतु यह ऐसी खुशी थी, जो सचमुच राव बहादुर पूरी तरह अनुभव नही कर पा रहे थे। ऐसा लग रहा था कि कही कुछ कमी रह गई है। जी खोलकर खुशी मनानेके मौकेपर लग रहा था जैसे कोई उन्हें पीछे खीच रहा था।

घरमें और बाहर लोगोका चलना-फिरना शुरू हो गया था। आध घटे बाद ही तो गृह-प्रवेशका काम शुरू हो जायगा। नरसिंहम्‌को फिर ऐसा लगा कि उनकी कुर्सी के पास कोई खडा है और चुपचाप हँस रहा है। चौंक कर उन्होने देखा, किंतु वहाँ कोई न था। उनपर कोई हँसे, ऐसी हिम्मत किसमें थी?

उनकी लालसा पूरी हो गई थी। जिस-जिस चीज़की उन्हें कामना थी, वह सब उन्हे प्राप्त हो गई थी। आज का प्रभात, जो धीरे-धीरे स्वर्णिम चरणोसे पदार्पण कर रहा था, आजीवन याद रहेगा। इसी प्रभातमे वे अपने नए मकानके मालिक बनेंगे। और यह कोई मामूली मकान न था, पूरा किला था, किला। बडी ही तबीयत और परिश्रमसे राव बहादुरने इसे अपनी रुचिके अनुकूल बनवाया था। किसीकी हँसी फिर सुनाई पडी। यह आवाज़ जितनी ही आश्चर्यजनक थी, उतनी ही परिचित, जितनी ही दूर, उतनी ही निकट। बडी ही विचित्र बात थी। नरसिंहम्‌ने पुन अपना स्थान ज़रा-सा बदला।

उन्हें लगा जैसे नशा चढ रहा हो। उन्हें नींद-सी आने लगी। यह कोई नींद आनेका समय है? अभी पता नहीं कितने काम पडे हैं!

पूर्वमें सूर्य अब धीरे-धीरे आकाशको आलोकित करता हुआ ऊपर उठ रहा था। शहनाईवाला नीचे सडकपर दिखलाई पडा। अभी ही मगल-वादन प्रारभ होगा, जो पूरे समय तक चलता रहेगा। शहनाईवालेको अपने मकानकी ओर जाते देखकर नरसिंहम्ने उठनेकी कोशिश की। उधरसे शहनाईकी आवाज आने लगी। अभी बहुत-सा काम पडा है, उन्होंने अपने-आपसे कहा।

हा हा हा! इस बार भ्रमकी गुजाइश न थी।

अवश्य ही कोई था, जो बार
उनके कानके पास। यह
खींचे ले रही थी। ऐसा
रहा हो। राव बहादुरने
किंतु वे हिल भी न पाए।
हिला पाए। ऐसा लगता था,
कुर्सीमें ठोक दिया गया हो,
खडे होकर अपनेको देख रहे

इस समय गृह-प्रवेशका
मकानसे शहनाईका मधुर

प्रेमचन्दजीका बचपन

श्री नरोत्तम नागर

खोजनेपर भी ऐसे लेखक विरले ही मिलेंगे, जिनके साहित्य और जीवनमें इतना मेल और इतनी अभिन्नता हो, जितनी कि प्रेमचन्दजीमें पाई जाती है। यही उनकी महानता है, इसी रूपमें हमने उन्हें जाना, पहचाना और परखा है, उनका सम्मान और आदर किया है, साहित्य-जगत्की एक महान् विभूतिके रूपमें उन्हें अपने हृदयोंमें स्थापित किया है। प्रेमचन्दजीकी महानताको सभी स्वीकार करते हैं—वे लोग भी, जो उन्हें गांधीवादी मानते हैं, और वे लोग भी, जो उन्हें समाजवाद-साम्यवादका अग्रदूत घोषित करते हैं। कभी-कभी, बल्कि कहना चाहिए कि बहुधा, इन दोनोंमें झगडा भी उठ खडा होता है और ये दोनों एक-दूसरेसे सीधा सवाल करते हैं, "तुम ढोंगी हो। तुम्हें प्रेमचन्दकी सराहना करनेका कोई अधिकार नहीं है। तुम्हारी सराहना झूठी है, इसलिए प्रेमचन्दजीको जैसा तुम समझते हो, वैसा वे नहीं है।"

इस झगडेमें हम यहाँ नहीं पडेंगे। इसके उल्लेख करनेका प्रयोजन भी इतना ही है कि इसकी वजहसे प्रेमचन्दजीके बारेमें जो-कुछ पढनेको मिलता है, वह अधिकांश एकाङ्गी और बहुत-कुछ अतिरंजित होता है, प्रेमचन्दजीके

गांधीवादका समर्थन करनेवाला
वादी आलोचक इन पात्रोंकी
वादकी आलोचना करना
प्रेमचन्दजीके ये पात्र गद्दारीके
उन तत्वोंको प्रकट करते हैं,

इस प्रकार प्रेमचन्दजीके
उनका मूल्यांकन भी विरोधी
के संघर्षसे पूर्ण है। यह
जीवनके साथ उनके सम्बद्ध
का नाम लेते ही एक ऐसे
सामने मूर्त्त हो उठता है, जो
में धनपता और संघर्षोंमें
इतना ही नहीं, प्रेमचन्दजीका
हमारे सामने उठ खडे होते
साम्यवादी, आदर्शवादी थे या
या क्रान्तिवादी? ऐसे
आसान नहीं होता। उसके
अपने प्रिय साँचेमें ढालनेका
और हम एक खास किस्मकी

और इतना प्रभावपूर्ण चित्रण किया है कि हम प्रेमचन्दजीको उनसे अलग करके नहीं देख सकते—या कहिए कि उन्हें अलग करके देखना हमें अच्छा नहीं लगता। कहनेको तबीयत करती है कि उन्होंने एक ग़रीब किसानके घरमें जन्म लिया था, 'गोदान' के होरीके रूपमें प्रेमचन्दजीने अपने ही जीवनका चित्रण किया है। हमें यह अच्छा नहीं मालूम होता, प्रेमचन्दजीका जो कल्पना चित्र हमारे मनमें बना है, उससे इस बातका मेल नहीं खाता कि वह किसानकी टूटी-फूटी झोपड़ी या किसी मजदूरकी खोलीको छोड़कर और कहीं जन्म लें। इसके साथ-साथ एक और बात है जो प्रेमचन्दजीके साथ सम्बद्ध है। वह यह कि सात-आठ वर्षकी आयुमें उनकी माँका देहान्त हो गया था। इतना ही नहीं, बल्कि उनके पिता घरमें एक विमाता भी ले आए थे। करेलेको नीम चढ़ा बनानेमें और क्या चाहिए। एक तो जानलेवा ग़रीबी, दूसरे माँका न होना, तीसरे विमाता का आगमन। ऐसा मालूम होता है मानो विधाताने कड़वी घुट्टी पिलानेके लिए ही प्रेमचन्दजीको इस दुनियामें भेजा था।

स्थितिके इस कारुण्यकी गहरी रंगत उनमें खुद प्रेमचन्द जीकी कहानियों और उपन्यासोंने भी काफ़ी योग दिया है। माँके परलोक सिधारनेके बाद सदाके लिए अनाथ हो जाने वाले बीसियों पात्रोंकी प्रेमचन्दजीने रचना की है, जिनका एकमात्र लक्ष्य माँकी गोदके सुख और उससे वंचित होनेके दुर्भाग्यको प्रकट करना है। इन पात्रोंको माँकी गोदकी रह रहकर याद आती है और इसी यादमें वे तपेदिकका शिकार होकर मर जाते हैं। माँकी गोदकी बलिवेदीपर इस प्रकार प्रेमचन्दजीने न जाने कितने पात्रोंकी भेंट चढ़ाई है। नतीजा इसका यह है कि प्रेमचन्दजीके बचपनकी कल्पना करते ही हमें इन पात्रोंकी याद हो आती है, और माँकी गोदके सुखके पीछे —जिसका प्रेमचन्दजीने अतिरंजित और कुछ हद तक विकृत चित्रण किया है—उस सुखको हम भूल जाते हैं, जो कि बालकको अपनी माँकी गोद छोड़कर पाँव-पाँव चलने और घरसे बाहर घूमनेमें प्राप्त होता है। प्रेमचन्दजीका बचपन भी इसका अपवाद न था। दाना डैने फैलाकर वह उतना जानता था, उड़ता था।

बनारसके पास लमही गाँवमें प्रेमचन्दजीने जन्म लिया था। उनका घर किसी ग़रीब किसानकी झोपड़ी या मज़दूरकी खोली नहीं, बल्कि ज़मींदारके बँगलेकी याद दिलाता है। अतीत कालमें यह निश्चय ही किसी कोठेसे कम नहीं रहा होगा। यह बात दूसरी है कि चहुँओर किसानोंकी झोपड़ियों और गाँवकी दीनताके बीच होनेके कारण इसका अस्तित्व उल्लासकी जगह हृदयमें वेदनाका संचार करता हो, या उनकी पहलेवाली सम्पन्नता विलीन हो गई हो और उसकी मौजूदा खस्ता हालतको देखकर चहुँओर स्थित किसानोंकी झोपड़ियाँ भी उनका उपहास करती प्रतीत होती हों। पुराना वैभव बीत जाता है, लेकिन उसकी याद फिर भी बनी रहती है। पुरानी आदतें आसानीसे पीछा नहीं छोड़तीं। अतीतका मोह और उसकी यादको अमर बनानेकी कोशिश फटे तकियेमें भरी रुई की भाँति जब-तब अपना चेहरा दिखाती रहती है।

प्रेमचन्दजी तेरह कहलाते थे। तीन लड़कियोंके बाद उन्होंने जन्म लिया था। पिताने बड़े प्रेमसे उनका नाम रखा—धनपतराय। उनके चचा और भी आगे बढ़े। धनपतराय नाम उन्हें हल्का मालूम हुआ। उन्होंने दूसरा

प्रेमचन्द

नाम तजवीज किया—नवाबराय। उन्हें क्या मालूम था कि उनका यह धनपतराय और नवाबराय बड़ा होकर प्रेमचन्द बनकर धनकी दुश्मनीको अपने जीवनका आधार बनाएगा, नवाबोंकी नवाबी और राजाओंकी राजाईकी धज्जियाँ उड़ाएगा।

लेकिन यह बादकी बात है। अभी तो हमें देखना है कि खुद प्रेमचन्दजीको भी नवाबराय कहलाना और नवाबराय बनना अच्छा लगता था, यह बात दूसरी है कि वह नवाब उल्लू बने थे या उनकी रियासत केवल उस डाकखाने तक सीमित थी जहाँ उनके पिता अजायबराय काम करते थे। पूर्वजोंके वैभवका चाहे जो रूप रहा हो लेकिन प्रेमचन्दजीने—बल्कि कहना चाहिए कि धनपतराय

या नवाबरायने—जब जन्म लिया, तब उनके पिता अजायब-राय गाँवके डाकखानेमें मुंशी थे। यह डाकखाना उनकी रियासत था और डाकका थैला लानेवाला हरकारा उनका कारिन्दा, जो जब भी आता था, अपने साथ ईख, अमरूद, मूली और गाजर आदि लेकर आता था। प्रेमचन्दजीकी उससे खूब पटती थी और उसके कन्धोंपर सवार होकर उसे हाँकते और किल्कारियाँ भरते थे। कन्धेपर बल्लम रखे, अपनी फुँकनी बजाता, वह दूरसे आता दिखाई देता। प्रेमचन्दजी को देखकर वह और भी तेज़ दौड़ने लगता, खुशीसे उछलकर प्रेमचन्दजी उसकी ओर लपकते और अगले ही क्षण उसका कंधा प्रेमचन्दजीका सिंहासन बन जाता। प्रेमचन्दजीको कन्धेपर बैठाकर वह और भी तेज़ दौड़ने लगता और प्रेमचन्दजीको ऐसा मालूम होता मानो हवाके घोड़पर उड़े जा रहे हों।

शायद ही कोई बालक हो, जिसने गुल्ली-डंडेके खेलके पीछे खाने-पीनेकी सुधि तक न बिसार दी हो। प्रेमचन्दजी भी इसका अपवाद नहीं थे। सुबह होते ही घरसे निकल जाना, पेड़पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डंडे बनाना ऐसी चीज़ें हैं, जिन्हें भुलाना मुश्किल है। हाथ-भरका डंडा और बित्ता-भरकी गुल्लीमें न जाने क्या जादू समा जाता है कि न नहानेकी सुधि रहती है, न खानेकी, न माँ-बापकी झिड़कियोंकी। खुद प्रेमचन्दजीके ही शब्दोंमें—"गुल्ली है तो ज़रा-सी, पर उसमें दुनिया-भरकी मिठाइयोंकी मिठास और तमाशोंका आनन्द भरा हुआ है।

कनकौवा उड़ानेका शौक भी कुछ कम नहीं होता। कनकौवा उड़ानेसे भी अधिक मज़ा आता है कटा हुआ कनकौवा लूटनेमें। लग्गे और झाड़दार बाँस लिए बालकोंकी एक पूरी सेना जब कटे हुए कनकौएको लूटनेके लिए दौड़ती है, तो आगे-पीछेकी कोई सुधि नहीं रहती। सभी मानो उस कनकौवेके साथ आकाशमें उड़ने लगते हैं, जहाँ सब-कुछ समतल होता है, न वहाँ मोटरकारें होती हैं, न ट्राम, न गाड़ियाँ। लग्गे और झाड़दार बाँस लिए कनकौवा लूटनेमें व्यस्त बालकोंकी इस सेनामें प्रेमचन्दजी भी किसीसे पीछे नहीं रहते थे। माँझा देना, कन्न बाँधना, कनकौवा उड़ाने की कलाकी सभी बातोंमें वह परिचित थे।

आम और अमरूदके पेड़ोंपर चढ़ना, खेतोंमें घुसकर

प्रेमचन्दजी उन बालकोंमें कभी नहीं छोड़ना चाहते, हर रहते हैं। माँ उनकी बहुधा समय बिस्तरेपर पड़े-पड़े बीतता करते थे, लेकिन गुड़की से भी उनका प्रेम कुछ कम नहीं रहता थी। आँखें बचाकर झ फाँकने या हँड़ियामें से गुड़की ... का मोह छोड़ना उनके बूतेसे बैठकर पंखा झलते समय उनकी चायका लेती रहती थी।

खेलनेमें ही नहीं, ... एक मौलवी साहबके यहाँ पढ़ने उनसे खूब खुश रहते थे। पढ़नेमें तेज़ थे, दूसरे इसलिए खुश रखना जानते थे। घरसे लिए कोई-न-कोई सौगात ले मटरकी फलियाँ तोड़ लीं, कभी गेहूँकी हरी बालें।

स्कूल मौलवी साहबके को पढ़ानेके अलावा मौलवी कराते थे। मौलवी साहबको चिड़ियोंके लिए बेसन पीसना लड़कोंके पाठ्यक्रममें शामिल चिड़ियाँ भी पढ़नेमें योग देती हों चाहे न हों, लेकिन ... साहबको एक और हुनर आता भाँति नहीं थे, जिन्हें लड़कोंक सिवा और कुछ नहीं आता, तक वे नहीं टाँक सकते। के सामने अँधेरा छा जाता है साहब हाथ-पाँवके इतने सीनेकी कला जानते थे और का काम करते थे।

प्रेमचन्दजीका काम था -

तो चारपाई खडी करके उनमें से एक रुपया उठा लिया। रुपया हाथमें आते ही ऐसा मालूम हुआ मानो सारी खुदाई अपने हाथमें आ गई हो। बारह आने तो मौलवी साहबको उनकी फीसके भेंट कर दिए। सोचा, मौलवी साहब महीना खत्म होनेसे पहले ही फीस लेकर खुश हो जायँगे। बाकीके अमरूद और रेवडी आदि खरीदकर अपनी जेबें भर ली।

चाचाको जब पता चला कि एक रुपया गायब है, तो दोनोंकी खोजमें निकले। झूठ बोलनेकी कलामें दक्ष न होनेके कारण तुरत सारा भेद खुल गया। चचेरे भाईकी खूब मरम्मत हुई। प्रेमचन्दजी बच गए। चाचा और चाची दोनोंका गुस्सा अपने लडकेपर ही उतरा।

पडौसमें ही एक अहीरन रहती थी। वह विधवा थी। चाचीजीकी उससे बहुत घुटती थी और दोनों मिलकर ऐसी बातें किया करती थीं, जिनका सुनना बच्चोंके लिए वर्जित माना जाता है। प्रेमचन्दजी उनकी बातोंको सुनते और काम विज्ञानकी जानकारी प्राप्त करते!

प्रेमचन्दजीके एक मामू थे। वह अधेड हो गए थे, लेकिन अभी तक बिन ब्याहे थे। पासमें जमीन थी, मकान था, पर गृहिणी-रूपी खूँटेसे बँधे न रहनेके कारण छुट्टा घूमते थे। एक बार, होलीके दिनोंमें, वे प्रेमचन्दजीके घर भी आए। उन्होंने शराबकी एक बोतल मँगाई और कोठरीमें रखकर कहीं चले गए। प्रेमचन्दजीने मौका देखा और कोठरीमें घुसकर ग्लासमें एक घूँट शराब डाली और मीठा शरबत समझकर पी गए। लेकिन उसका स्वाद मीठा नहीं, कडुवा था। अभी गला जल ही रहा था कि मामू साहब आ गए और इतना बिगडे कि जिसका ठिकाना नहीं। पिताजीसे भी उन्होंने शिकायत की और प्रेमचन्दजीपर खूब डाँट पडी। मामूकी यह हरकत और बात-बातमें उनका रौब झाडना तथा पिताजीसे शिकायत करना प्रेमचन्दजीके हृदयमें काँटेकी भाँति खुब गया। आखिर प्रेमचन्दजीकी भी बारी आई और उन्होंने मामूसे ऐसी कसर निकाली कि उन्हें मुँह छिपाकर भागते ही बना।

मामूके यहाँ एक चमारिन गोबर पाथने और बैलोंको सानी-पानी देने आती थी। मामू साहब उसे देखकर मचल गए। वह भी एक ही चण्ट थी। मामू साहबको उसने खूब नचाया, उनसे पैसे व चूनरी आदि वसूल की और अन्तमें चमारोंके एक जत्थेसे मामूको इतना पिटवाया कि उन्हें छठीका दूध याद आ गया। प्रेमचन्दजीको जब यह घटना मालूम हुई, तो बहुत खुश हुए। इस घटनाको लेकर उन्होंने एक नाटक लिखा, जिसे प्रेमचन्दजीकी पहली रचना होने का गौरव प्राप्त है। जब मामू घर आए, तो उनके सिरहाने यह नाटक रख दिया। प्रेमचन्दजी यह देखनेके लिए बेचैन थे कि उनके नाटकका उनपर क्या असर हुआ। लेकिन दूसरे दिन सवेरे ही जब प्रेमचन्दजीने उनकी कोठरी में जाकर झाँका, तो मामू साहब वहाँ नहीं थे। उनका नाटक भी नहीं था। दोनों ही गायब हो गए थे।

प्रेमचन्दजीके जीवनकी इस घटनाको उनके बचपनके अन्तका सूचक कह सकते हैं। उस समय उनकी आयु तेरह साल थी। इसके एकाध साल बाद ही उनका विवाह हो गया। पन्द्रह सालकी आयु तक पहुँचते-न-पहुँचते उनके पिता भी मर गए, पूरी गृहस्थीका बोझ उनके कन्धोंपर आ पडा और उनके जीवनका एक नया दौर शुरू हो गया।

ग़ज़ल

श्री शम्भूनाथ 'शेष'

टूट जायगा कसते-कसते, प्राणोंका यह तार किसी दिन!
आप कहानी बन जाएगा, गीतोंका स्वरकार किसी दिन!
कौन रहेगा आता-जाता, कबतक खुली रहेंगी राहें;
बन्द स्वयं हो जाएगा प्रिय, श्वासोंका सचार किसी दिन!
लहरोंपर बहनेमें क्या है, नौकापर रहनेमें क्या है;
तूफाँके हाथोंमें होगी, जीवनकी पतवार किसी दिन!
मधु-सिंचित उपवनमें कब तक, मुसकाएँगी मानस-कलियाँ:
पतझडमें कजला जाएगा, वासन्ती शृगार किसी दिन!
कबतक सलज उषाकी स्मितिको निर्निमेष अर्घ्य रहेंगे देते;
गहन तिमिरका बन जाएगा, सूर्य स्वयं आहार किसी दिन!
रजकणके नयनोंमें कब तक, थिरकेंगे तारोंके सपने,
हो जाएँगे धरती-अम्बर, दोनों एकाकार किसी दिन!
आशाओंके स्वर्ण-जालमें, कौन रहेगा बैठा खग-सा;
उड जाएगा स्वप्न-सुरभि-सा, साधोंका ससार किसी दिन!
प्रणय-गीत बन लहराएगा, कब तक प्रिय हृदयोंका स्पदन;
निपट शून्यमें खो जाएगा, भ्रमरोंका गुजार किसी दिन!
अन्तरकी अभिलाषा कब तक, पाएगी वाणीका आश्रय;
शब्दहीन हो जाएगा कवि, मानसका उद्‌गार किसी दिन!

तुलसी-रामायणकी रच

श्री ए० पी० वारान्निकोव

तुल्सी रामायणपर प्रथम-दृष्टिपातसे ही ऐसा प्रतीत होता है मानो इस महाकाव्यका सात काण्डोंमें विभाजन उनकी कथावस्तुके आधारपर ही किया गया है। वास्तवमें सातों काण्डोंके नाम ही सम्पूर्ण काव्यकी रूप रेखा हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड किष्किन्धाकाण्ड सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। काव्यमें रामके बचपन, उनका अयोध्याका जीवन, राम वनवास और वहाँ उनकी पत्नी सीताका राक्षसराज रावण द्वारा हरण, वानरदेश किष्किन्धाकी घटनाएँ, हनुमानका लंकागमन और सीताको रामके विषयमें शुभ सूचना देना, लंकामें युद्ध और अन्तमें चौदह वर्षके वनवासके पश्चात् राम और सीताका लक्ष्मण और अन्य मित्रों समेत अयोध्या वापस लौटना इत्यादिका वर्णन है।

काण्ड विभाजनकी रचना

तुल्सी रामायणसे पहले लिखे गए राम विषयक काव्योंके अध्ययनसे पता चलता है कि भारतमें काव्यका केवल सात ही काण्डोंमें विभाजित करनेकी एक परम्परा चली आ रही थी। प्राचीन वाल्मीकि रामायणसे लेकर सारी की सारी वृहत् कथाओंके लेखकोंने अपनी रचनाओंको साधारणतः सात ही काण्डोंमें विभाजित किया है। छठे काण्डको छोड़कर तुल्सी रामायणके सब काण्डोंके ठीक वही शीर्षक हैं, जो वाल्मीकि रामायणके हैं। वाल्मीकि रामायणके छठे काण्डका शीर्षक है 'युद्ध', परन्तु तुल्सीदासने छठे काण्डका लंकाकाण्ड का शीर्षक दिया है। इसी परम्पराका पालन करते हुए तुल्सी रामायणको भी सात ही खण्डोंमें विभाजित करनेके कारण तुल्सी रामायणमें रचना-सम्बन्धी बहुत-सी कमियाँ आ गई हैं। रचनाकी दृष्टिसे बालकाड तथा उत्तरकाण्ड सर्वथा असफल रहे हैं। इन दोनों काण्डोंमें रामकी मुख्य कथाको बहुत कम स्थान मिला है। इनमें तुल्सीदासने अपने दार्शनिक विचारोंका अति विलक्षणतासे निरूपण किया है। इससे रामकी मुख्य कथा सर्वथा पृष्ठ भूमिमें जा पड़ी है। निःसन्देह यदि तुल्सीदास अपने काव्य

पौराणिक कथा

तुल्सी रामायणमें ढंगसे प्राचीन साहित्यिक रामायण—का अ जाता है। तुल्सीदासके अव्यक्त धारणाके तथा उसमें सम्प्रविष्ट भलीभाँति ज्ञात हैं। लिया जाय, तो तुल्सी वालोंका स्वयं ही दासकी रचनाओंकी खोज आज तक इस बातको ध्यानमें रखनेसे इस वाल्मीकि रामायणमें व अपने काव्यमें कैसे और दास इन कथाओंका केवल और केवल निर्देशन मात्र केवल उस कथाके के तौरपर शिव, दधीचि, ययाति, सगर, रति, नामोंका ही उल्लेख है। समझमें आ सकते हैं, य कथाओंका ज्ञान भी रखते स्थानपर ऐसी प कियां गया है जो पूर्ण रूपसे वर्णित हैं। क नाम तक नहीं देते और करते हैं। ऐसी स्थिति बड़ी कठिनाई होती है, कथाको समझनेमें सर्वथा

पौराणिक कथाओंके उल्लेखका उदाहरण

सार इस प्रकार है: एक बार गौतम ऋषि वनमें लकडियाँ लेने गए हुए थे। उस समय स्वर्गलोकसे लौटते हुए देवराज इन्द्र उस वनमें विचर रहे थे। गौतमकी सुन्दर पत्नी अहल्याको देखते ही देवराज इन्द्र उसपर मोहित हो गए। इन्द्रने अहल्याके पतिका रूप धारण करके उसको भ्रष्ट किया। हालांकि अहल्याको भी इन्द्रके इस माया-जालका पता लग चुका था, परन्तु वह बेचारी इन्द्रकी मोहिनी शक्तिके आगे कुछ न कर सकी। गौतमने अपराधीको आ पकडा और दोनोको शाप दिया। इसी शापके कारण अहल्या कई हजार वर्ष तक शिला बनी पडी रही और इन्द्रने अपने अण्डकोष गँवाए। फिर देवताओंकी बहुत प्रार्थनाके पश्चात् इन्द्रको एक बलिके बकरेके अण्डकोष प्राप्त हुए।

इसके अतिरिक्त तुलसी-रामायणमें हम सर्वथा विभिन्न ढगोका प्रयोग पाते है। जहाँ वाल्मीकिने एक कथाका सक्षिप्त रूपमे वर्णन किया है, वहाँ तुलसीदास उसी कथा को एक विस्तृत पौराणिक कथाका रूप देकर वर्णन करते है। उदाहरणके तौरपर वाल्मीकि-रामायणके प्रथम काड के एक छोटे-से अध्यायमें युद्धदेव कार्तिकेयकी कथा कही गई है। वाल्मीकिके समयसे लेकर अनेक कवियोका ध्यान इस कथाकी ओर गया—विशेषकर कालिदासने तो अपने 'कुमारसम्भव' में इस कथाको एक उत्कृष्ट कलात्मक रूप दिया। तुलसीदासने भी बालकाण्डमें इस कथाको एक विस्तृत रूप दिया है। पर तुलसीदासने इस कथाको जो रूप दिया है, वह वाल्मीकि तथा कालिदास द्वारा वर्णित कथासे सर्वथा भिन्न है। यह कथा तुलसीदासके मुख्य दार्शनिक, धार्मिक तथा नैतिक विचारोसे ओतप्रोत है। ऐसा करके उन्होने अपने समयके दो बडे मतोंके अनुयायियो (वैष्णवो और शैवो) को परस्पर मिलानेका प्रयत्न किया।

तुलसी और वाल्मीकि-रामायणमें भिन्नता

तुलसी-रामायण तथा वाल्मीकि-रामायणकी परस्पर तुलना करनेपर सम्प्रविष्ट कथाएँ हमारे लिए एक बडी दिलचस्पीका विषय बन जाती है। रामकी मुख्य कथा दोनो रामायणोमें साथ-साथ चलती है, परन्तु विभिन्न कथाओंके सम्प्रवेशके कारण तथा उन कथाओका विभिन्न ढगोसे वर्णन करनेके फल-स्वरूप इन दोनो रामायणोंमें बहुत अन्तर आ गया है। मुख्य कथाकी मूल घटनाओका पुष्टिकरण तथा पवित्रीकरण चिरकालसे आई एक मौखिक तथा साहित्यिक परम्परा द्वारा हुआ है। सम्प्रविष्ट कथाओका वर्णन भी स्वतत्र ढगसे हुआ है। यही कारण है कि राम-चरित्र-विषयक इन दोनो महाकाव्योमें बहुत अन्तर आ गया है। कई स्थानोपर तो हमें स्वय तुलसी-रामायणमें ही इस बातका स्पष्टीकरण मिल जाता है कि अमुक कथाका सम्प्रवेश क्यो नही किया गया। वे स्पष्ट रूपसे कहते है

सबुक भेक सेवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना॥

जैसा कि विदित है, विषयके तत्वोंके अभावका गुण ही तुलसीदासकी रचनाका एक विशेष लक्षण है, जो उनको अपने युगके बहुतसे कवियोंसे ऊपर उठाता है। उपर्युक्त साहित्यिक परम्पराके अतिरिक्त तुलसीदासके अपने दार्शनिक तथा धार्मिक विचारोका भी उनकी रामायणकी रचनापर कोई कम प्रभाव नही पडा। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वाल्मीकिका राम वीर है, सूर्यवशका राजकुमार है, परन्तु तुलसी-रामायणके प्रारम्भमें ही आता है कि राम विष्णुका अवतार है। वाल्मीकि-रामायणकी खोज करनेवाले सब अन्वेषकोने चिरकालसे ही निर्धारित कर दिया है कि रामका यह रूप केवल बादमें प्रविष्ट क्षेपकोका ही परिणाम है। रामका यह रूप सस्कृत-काव्यमें वर्णित रामके चरित्र से बिल्कुल मेल नही खाता। इसके विपरीत तुलसीके राम ईश्वरीय तत्व हैं। वे मानव-रूप धारण करके इस भौतिक ससारमें आए। तुलसीदास रामको इस भौतिक ससारका प्राणी नही मानते। राम उनके लिए सच्चिदानन्द है, ब्रह्म है, पारब्रह्म है, विष्णु है, हरि है। इसी धारणाके अनुरूप दूसरे पात्रोका रूप भी बदल जाता है। लक्ष्मण जहाँ सच्चिदानन्दका आंशिक रूप है, वहाँ वे सहस्र फनोवाले उस पौराणिक नागका भी अवतार है, जो भारतीय पौराणिक कथाओंके अनुसार समस्त पृथ्वीको धारण किए हुए है। सीता न केवल धरतीमाताकी पुत्री है, वह माया भी है। वह ईश्वरीय तत्वकी रचनात्मक शक्ति है, जो उससे पृथक् नही की जा सकती और जिसका स्वय अपना कोई अस्तित्व नही। सीता माया है, जिसने समस्त ससारका सृजन किया है। उनके अनुसार यह ससार भी रामकी दैवी शक्तिका एक खेल-मात्र है।

रामके नए रूपका प्रतिपादन

रामको इस नए रूपमें दर्शानेके लिए जिन जिन दार्शनिक पुष्टियो तथा आधारोकी आवश्यकता थी, उन सबका निरूपण तुलसीदासने अपनी रामायणके बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्डमें किया है। बालकाण्डमें रामकी मुख्य कथाको बहुत कम स्थान दिया गया है। काण्डके तीन-चौथाई भागमें रामके दार्शनिक अस्तित्व तथा नैतिक समस्याओ (पाप और पुण्य इत्यादि) का वर्णन और रामके अवतार

लेनेकी बातका पुष्टीकरण किया गया है। इसी प्रकार उत्तरकाण्डमें भी रामकी मुख्य कथाका बहुत कम वर्णन है। इस काण्डका अधिकांश विभिन्न महत्वपूर्ण दार्शनिक समस्याओंके स्पष्टीकरणसे परिपूरित है।

तुलसीदासकी विचारधाराका रामकी मुख्य कथामें अन्य कथाओंके सम्प्रवेशपर भी गहरा प्रभाव पड़ा। कागभुशुण्डकी कथा सबसे बड़ी सम्प्रविष्ट कथा है। इस कथाके वर्णनने उत्तरकांडका अधिकांश स्थान घेरा है। इस सम्प्रविष्ट कथाके कारण समस्त गया है। इसी प्रकार करनेकी बातको सिद्ध कथाओंका सम्प्रवेश किया में नहीं है। उदाहरणार्थ मनु और उनकी पत्नी इत्यादि ऐसी कथाएँ हैं, जो में जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं।

हिन्दी और कलकत्ता

श्री भँवरमल सिंघी, एम० ए०, साहित्यरत्न

कलकत्तेके साथ हिन्दी-सेवाका एक पुराना इतिहास जुड़ा हुआ है, जिसके बारेमें हम अक्सर सुनते और पढ़ते हैं। हिन्दी-गद्यके विकासके इतिहासमें, हिन्दी पत्रकारिताके इतिहासमें और अनुवादोंके क्षेत्रमें कलकत्ताका उल्लेख बराबर मिलता है। हिन्दीके ऐसे विद्वान और साधक, लेखक और पत्रकार कलकत्तेमें हो चुके हैं, जिनका आदर और श्रद्धाके साथ स्मरण किया जाता है। उनमें से कुछेक साधक और सेवक आज भी वर्त्तमान हैं, यद्यपि वे अब दूसरे स्थानोंमें रहने लगे हैं। किन्तु हिन्दीकी दृष्टिसे आज कलकत्तेमें जो अवस्था है, वह बहुत ही दुखद और लज्जास्पद है।

पिछले २०-२५ वर्षोंमें कलकत्तेमें हिन्दी भाषियोंकी संख्या काफी बढ़ी है और साथ-साथ हिन्दी पढ़नेवाले छात्र-छात्राओंकी संख्यामें भी अभिवृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद हिन्दीको समस्त देशकी राज-भाषा और राष्ट्र-भाषा होनेका गौरव भी मिल चुका है। इन परिस्थितियोंमें होना तो यह चाहिए था कि कलकत्तेमें हिन्दीके प्रचार प्रसार और साहित्य प्रगतिकी दृष्टिसे भी अधिक कार्य होता, निरंतर विकासमान बँगला-साहित्यके सम्पर्कके कारण यहाँसे साहित्यकी आधुनिक अनेक प्रवृत्तियोंकी धाराएँ विकसित होतीं और पारस्परिक आदान प्रदानके जरिए हिन्दी-बँगला भाषा-भाषियोंके बीचमें भी स्नेह और सम्मानका स्थान प्राप्त करती। किन्तु आज हम जो-कुछ देख रहे हैं, वह इसके बिल्कुल विपरीत है। कभी हिन्दी-सेवाके इतिहाससे कलकत्तेकी वर्तमान हिन्दी-भाषियोंकी बहुत बड़ी के कारण अन्य भाषा- व्यवसायीवर्गका वातावरण हिन्दीके अध्यापकों, पत्रकारों सायिक मनोवृत्ति ही सब-कुछ कैसे हो? आज यह देख दृष्टियोंसे साधन-सम्पन्न इस सेवा भी व्यापार-व्यवसायकी प्रकारकी प्रतिद्वन्द्विता स्तरकी प्रतिद्वन्द्विता हिन्दी में एक 'सेवी'का व्यवसाय रहा है और आपसमें संघर्ष हमारे बहुतसे विद्वानों, साहित्यिक चर्चा और दूसरेकी आलोचना और हिन्दीके विद्वानों और अपना समय लगाना चाहिए, की गतिविधिके बारेमें अन्य चर्चा करते और उनकी करनेका अवसर है, अपना में या आपसके लड़ाई-झगड़ेमें व्यवसाय करे, तो कोई बात या अध्यापक या लेखक या

साहित्यिक संस्था द्वारा आयोजित साहित्यिक समारोहोंमें भी सभापति, प्रधान अतिथि, उद्घाटनकर्त्ता, प्रधान वक्ता और न जाने क्या-क्या बनकर सेठ और राजनेता बैठते है। जो शुद्ध हिन्दी लिख-बोल भी नही सकते, वे हिन्दी-साहित्य के प्रतिनिधि होते है और हिन्दीके पुराने या नए साहित्यके सम्बन्धमें जिनका कोई ज्ञान नही, वे सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी, निराला, प्रसाद किसीपर भी बोलनेकी हिमाकत करते हैं। सस्थाओ और समारोहोके आयोजक इनको भाषण लिखकर तो दे देते है, परन्तु लिखा हुआ भी उनसे शुद्ध पढा नही जाता। इस प्रकारके आयोजनोमे जो स्थिति बनती है, उससे अगर केवल सेठकी खुदकी या आयोजन करनेवाली सस्था और आयोजककी ही हँसी हो, तो कोई बात नही। पर हँसी तो हिन्दीकी होती है, हिन्दी साहित्यकी होती है। मुझे एक आयोजनका स्मरण है, जिसमें बगाली साहित्यिक भी उपस्थित थे। एक मिल-मालिक साहित्य की चर्चा कर रहे थे, पर साहित्य शब्दका उच्चारण भी ठीक-ठीक नही कर पा रहे थे। सभीको हँसी आती थी और हम लोग लज्जाका अनुभव कर रहे थे। इसी प्रकार एक दूसरे आयोजनमे लिखित भाषण पढनेवाले सज्जनने अष्टछापको 'अन्टछाप' उच्चारण करनेमें और पुष्टिमार्ग को 'पस्टीमार्ग' कहनेमे कोई फर्क नही मालूम हुआ। यह दुर्भाग्य इन पिछले कुछ वर्षोमे ही हुआ है कि साहित्यिक आयोजन भी 'सेठोके विवाह'-से होने लगे है। किसी महान् कवि, लेखक और साहित्यिकके कलकत्ता आनेपर उसका सम्मान आदि सेठोके बीचमे होने लगता है, क्योकि उनको बुलाने और यहाँ ठहराने आदिमे रुपया लगता है और उनके नामपर सस्थाओ आदिको भी रुपया लेना होता है। पहले भी रुपया तो सेठोंसे ही मिलता होगा और मिलता था और इसमे अपने-आपमें कोई बुराई नही, परन्तु रुपएका सहयोग देकर भी वे साहित्यका कार्य साहित्यिकको ही करने देते थे। लेकिन अब उन्होने उसमें भी अपना लोभ बढा लिया है। रुपएके बदले उनको ज्यादा-से-ज्यादा जो कुछ मिल सकता है, उसे वे क्यो न लें? हिन्दी-सेवियोने उनको इस व्यभिचारका प्रलोभन दिया है, अवसर दिया है। कवि-सम्मेलन, अभिनन्दन-समारोह, जयतियाँ सब इनके विलास के लिए है, इनका प्रचार करनेके लिए है।

यह दूषित वातावरण हिन्दीके लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो रहा है। हिन्दी-सेवा आज बिक रही है। जिस रूपमें और जिस तरहसे वह ज्यादा बिक सके और ज्यादा मूल्यपर बिक सके, उसी रूपमें बिकती है। फिर हिन्दी की उपाधियाँ बेचनेवाली सस्था भी पैदा हो गई, तो क्या आश्चर्य है? स्कूल और कालेजोमें, परीक्षाओमें, ट्यूशनोमें, पाठ्य पुस्तकोके निर्माण, निर्वाचन और वितरणमें और हिन्दी-प्रचार और हिन्दी-सेवाकी सस्थाओमे सर्वत्र भ्रष्टाचार घुसा हुआ है। और आश्चर्य है कि इस सबको हम लोग हिन्दी-भारतीके आराधक मिलकर बदल नही सकते। कम-से-कम भाषा और साहित्यको व्यवसाय और व्यवसायियो के इस बुरे चगुलसे बचाना बहुत जरूरी है। यह व्यावसायिकता खत्म हुई कि बहुत सारे झगडे और आपसकी तू-तू, मैं-मैं खत्म हो जाय। लडाई-झगडा तो दूकानदारी का है। इसलिए हर प्रकारसे दूकानदारीका भण्डाफोड और विरोध होना चाहिए, और अगर जिम्मेदार लोग इन योजनाओसे असहयोग करने लगें, तो इसमें बहुत फर्क पड सकता है। फिर दूकानदारो और व्यवसायियोको ही सर्वेसर्वा (सभापति, प्रधान अतिथि आदि) बना-बनाकर साहित्यिकोको बुलाने और उनका अभिनन्दन करने, ग्रथों का प्रकाशन करने और उन सबकी ओटमे दूकानदारी करनेवालोके हौसले अपने-आप ठण्डे पड जायँगे। उनको असफल और शर्मिंदा होना पडेगा। जो मुख्यमत्री, मत्री, उपमत्री और साहित्यिक इन सब षड्यन्त्रोको बिना जाने या जान-बूझकर भी जिस किसी तरह कलकत्तेमे एक मच प्राप्त कर लेनेकी ख्वाहिशसे आ जाते है, और भाषण झाड जाते है, किसीके प्रचार और सेवाको प्रमाण-पत्र दे जाते है, और सौ-सौ, दो-दो सौ रुपएके 'वाचस्पति', 'दिवाकर', 'रत्न' और 'मार्तण्ड' बना जाते है, उनको भी हम वास्तविक स्थितिसे अवगत करा सकेंगे, और इन षड्यत्रोका शिकार होनेसे उन्हें या उनके जरिए जन-साधारणको इन षड्यत्रो का शिकार होनेसे बचा सकेंगे। कम-से-कम हिन्दीके नामपर होनेवाला यह व्यवसाय, यह व्यभिचार तो बन्द हो सकेगा।

इस बातके लिए हमें बहुत गभीरतासे विचार करना होगा और अहिन्दी, प्रदेशोमें हिन्दीकी स्थितिके बारेमें सोचते हुए, जैसा कि अभी उत्तर-प्रदेशीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके अध्यक्ष-पदसे श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'ने कहा है—"हमें देखना है कि कही हमारे कारण—अर्थात् हमारे द्वारा स्थानीय परिस्थितियोको ठीक-ठीक न समझे जानेके कारण—ही तो यह दूषित वातावरण नही फैला है। कही ऐसा तो नही है कि हमारी कल्पना-शून्यता होने इस प्रकारका विरोध-भाव उत्पन्न कर दिया हो। हमें मोह-रहित भावसे इस स्थितिपर विचार करना है।"

मृत्युका भय

प्रो० लालजीराम शुक्ल, एम० ए०

मृत्युका भय प्रत्येक व्यक्तिके अचेतन मनमें रहता है। परन्तु वह अपनी सामान्यावस्थामें इसे विस्मृत किए रहता है। जब यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा कि संसारका सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है, तो उन्होंने बताया कि मनुष्य दूसरोंको प्रतिदिन मरते देखता है, परन्तु उसे यह विचार नही आता कि वह भी कभी मरेगा। मृत्युके भयका स्मरण न रहना मनुष्यके समान जीवनको चलानेके लिए नितान्त आवश्यक है। यदि कोई मनुष्य सदा अपने मरनेके विषय मे ही सोचता रहे, तो वह समाज-कल्याणके अथवा अपनी आजीविका कमानेके लिए कोई उपयोगी कार्य कर ही नही सकेगा। कहा जाता है कि मृत्युका विचार दर्शनका प्रारंभ है। जबतक मनुष्य मृत्युके विषयमें चिन्ता नही करता, वह अपनी लौकिक वृद्धिके विषयमे ही सोचता रहता है। किन्तु जब उसे यह विचार आता है कि यह संसारी वैभव चार दिनकी चांदनी है, तो वह धन-दौलत जोडनेसे विमुख हो जाता है। उसे सारा संसार निस्सार दिखाई देता है। संसारके सभी महान् पुरुषोंको किसी-न-किसी समय मृत्यु का विचार आया है। अपनी मृत्युका विचार और संसारकी नश्वरता एक ही तथ्यके दो अंग हैं। एकके आनेपर दूसरा विचार अनिवार्य रूपसे आता है। भगवान रामचन्द्र, बुद्ध और सुकरातके दार्शनिक विचारोंकी जडमें भौतिक जगतकी नश्वरताकी भावना ही पाई जाती है। इसी कारण उन्होंने नित्य रहनेवाले विचार-तत्वकी ही खोज की।

मनुष्यका विचार विवेकशीलताका द्योतक है और मृत्यु का भय अज्ञानका। जो लोग मृत्युसे जितने अधिक डरते हैं, वे मौतके विषयमें सोचनेसे उतनी ही दूर अपने-आपको बचाते हैं। कितने ही लोग श्मशानमें मुर्देको देखकर अपना मान-

कितने ही लोग अपने-आपको
छोड़ते, क्योंकि ऐसी अवस्थामें
विचार आते हैं। इन
मित्रसे वार्तालापमे लगे रहते
अवस्थामें मनुष्यको बीमारी
विचार आते हैं कि इनके कारण
जाता है। कायर और वीर
कि कायर पुरुष मृत्युके विषयमें
बल्कि उसे मृत्युके विषयमें
मृत्युके विषयमें सोचता है।
और इस डरको भुलानेकी चेष्टा
उसका डर कम न होकर और
मृत्युसे नही डरता, इसलिए मृत्यु
भी नही करता। बार-बार
से मृत्युका भय ही समाप्त हो

एक मनुष्य दूसरे मनुष्यपर
पर ही करता है। जो प्राणी
वे मृत्युसे न डरनेवाले प्राणियोंके
एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रपर शासन
के कारण ही करता है। मौत
उन लोगोंके गुलाम होते हैं, जो
प्रकारका डर मनुष्यकी मानसिक
है, अर्थात् उसके सभी पुरुषोचित
है। जिस व्यक्ति अथवा
वही स्वतंत्र रह सकता है।

मृत्युका डर मृत्युके बारेमें न
उससे और भी बढ़ जाता है। प्र

यह रोगका विचार बढ़ता जाता है। जब मनुष्य दृढ़तासे मृत्युके विचारका सामना करता है, और जब वह मरनेके लिए तैयार हो जाता है, तब उसका क्षय रोग और मृत्युका भय भी समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार भूँकते हुए कुत्तेके सामनेसे भागनेसे कुत्ता हमारी टाँग पकड़ लेता है उसी प्रकार मृत्युसे डरनेसे मनुष्य मृत्युको अपने समीप बुला लेता है। नपोलियन बोनापार्टका अपने सिपाहियोंसे कहना था कि 'यदि तुम मृत्युका दृढ़तासे सामना करोगे तो उसको तुम दुश्मनके खेमेमें खदेड़ दोगे।' मृत्युके विषयमें दृढ़तासे चिन्तन करनेवाले व्यक्ति ही आत्माके अमरत्वका अनुभव करते हैं।

मृत्युका भय एक प्रकारका आवेग है। मनुष्य किसी प्रकारके आवेगको केवल विस्तारसे नहीं जीत सकता। एक आवेगको जीतनेके लिए विरोधी आवेगकी आवश्यकता होती है। जिस मनुष्यके स्थायी भाव दृढ़ हैं वह सभी प्रकारके त्यागकी सामर्थ्य रखता है। मानव चरित्रकी भित्ति उसके विचार नहीं, वरन् उसके स्थायी भाव हैं। संसारके अनेक दर्शनशास्त्रके विद्वान मृत्युसे ऐसे ही डरते हैं जैसे चूहा बिल्लीसे। विद्वत्ता मनुष्यको विचारोंसे परिचय कराती है, वह मानसिक दृढ़ता नहीं लाती। मानसिक दृढ़ता अभ्याससे आती है। यह अभ्यास विद्वत्ताके अभाव में भी सम्भव है। गुरु गोविन्दसिंहके बालक हकीकतराय, खुदीराम बसु, गोपीमोहन और चन्द्रशेखर 'आज़ाद' कोई बहुत बड़े विद्वान् नहीं थे, परन्तु भारतवर्षके विरले ही लोगोंने अपने जीवनमें उनके जैसी बहादुरी दिखाई। यह मानसिक दृढ़ता उनकी निष्ठा अथवा देश भक्तिका परिणाम था।

मृत्युका भय संक्रामक होता है। जब फौजका कोई एक सिपाही डरके मारे भागने लगता है तो फौजके दूसरे सिपाही भी डरपोक हो जाते हैं। अतएव ऐसे सिपाहीको फौजके अफसर तुरन्त मार डालते हैं। जिस प्रकार मृत्युका भय संक्रामक है, उसी प्रकार निर्भीकता भी संक्रामक है। जिस समय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस बर्मामें आज़ाद हिन्द फौजका संचालन कर रहे थे, उस समय उनके मृत्युके मुखमें पहुँचनेके अनेक अवसर आए। एक बार जब उनकी टोली पर अमरीकन विमान बम वर्षा करने लगे, तब उनके एक शरीर रक्षकने उन्हें रक्षा-गृहमें चले जानेकी सलाह दी। नेताजीने उस समय कहा कि 'वह बम अभी तक अमरीकन फैक्टरीमें बना ही नहीं है, जो मुझे मारेगा।' उनकी इस निर्भीकताका परिणाम यह हुआ कि न केवल नेताजीके आस पासवाले लोग ही मृत्युसे निर्भीक बन गए वरन् सारी सेना उन्हींके समान निर्भीक बन गई। अँगरेज़ भारत छोड़कर जिन कारणोंसे चले गए, उनमें एक प्रधान कारण भारतीय फौजके मनमें आत्म-सम्मानकी भावनाका जागरित होना और मृत्युसे निडर बन जाना भी था।

मृत्युका भय क्रोधकी अवस्थामें कम हो जाता है। परन्तु क्रोधके समाप्त होनेपर वह और भी बढ़ जाता है। जब दो कुत्ते एक-दूसरेसे लड़नेके लिए उतारू होते हैं, तब उनके सब प्रकारके डर समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार लड़ाईके जोशके समय मनुष्य भी अपने सभी भयोंको भूल जाता है। जहाँ हमारे आत्म-सम्मानको ठेस पहुँचती है, वहाँ हम प्राण गँवानेको तैयार हो जाते हैं। परन्तु इस प्रकार मृत्युके भयका हटना तभी सम्भव होता है जबकि मनुष्यकी आत्म-सम्मानकी भावना प्रबल हो। भयकी अवस्थामें क्रोध नहीं आता और क्रोधकी प्रबलतामें भय नहीं आता।

मृत्युके भयका सफल प्रतिकार प्रेमके द्वारा ही होता है। प्रेम सभी प्रकारके भयोंका विनाशक है। मनकी विकृत अवस्थामें मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके भय अनायास ही उठते रहते हैं। वह जब घरके बाहर चलता है तो डर लगता है कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय। जितनी दुर्घटनाएँ पहलेसे हुई रहती हैं उनके विचार आते रहते हैं। यदि वह किसी रोगीसे मिलने गया तो उसे डर हो जाता है कि उस रोगीका रोग उसे न पकड़ ले। घरमें बैठे-बैठे उसे डर लग जाता है कि कहीं बिस्तरके नीचे छिपा साँप उसे काट न दे। अथवा उसके सिरपर छत ही न गिर पड़े। कितने ही लोगोंको हृदयकी गतिके बन्द होनेसे मृत्युका डर लगा रहता है। इस प्रकारके डरोंका कारण उनका अपने जीवनसे असन्तुष्ट होना होता है। ऐसे लोग अपनी परिस्थितियोंसे इतने परेशान रहते हैं कि वे भीतरी मनसे जीना नहीं चाहते। वे समाजके लोगों और अपने-आपसे बहुत ही घृणा करते हैं। उनका नाते भय उनके अचेतन मनमें उपस्थित है, यह उनकी विरोधी इच्छाका आवरण-मात्र है। मृत्युसे अधिक डरनेवाले लोगोंके भीतरी मनमें जीते रहनेकी इच्छा नहीं रहती है। इसी प्रकार मृत्युका सदा आवाहन करनेवाले लोगोंके भीतरी मनमें जीते रहनेकी इच्छा रहती है। यदि हम किसी व्यक्तिके आन्तरिक जीवनमें इतना परिवर्तन कर दें कि वह भीतरी मनसे मरनेके बदले जीना चाहने लगे तो उसका मृत्यु भय समाप्त हो जाय। अपने आपसे दुखी मनुष्य भीतरी मनसे मरना चाहता है और अपने आपसे सन्तुष्ट व्यक्ति भीतरी मनसे जीना चाहता है इसलिए उसे मृत्युका डर नहीं होता, बल्कि ऐसे मनुष्यसे मृत्यु ही डरती है।

जिस मनुष्यका जीवन प्रेम-रससे सम्पन्न है, उसे ससार छोडनकी आवश्यकता ही क्या ?

मृत्युका भय मनोविश्लपण द्वारा भी समाप्त होता है। मनोविश्लेषणसे दब भावोका चिन्तन होता है। हमारे यहाँ अनेक मानसिक रोगी कई प्रकारके भयोसे पीडित होते हैं। जब मनोविश्लेषण द्वारा उनके मनका अध्ययन किया जाता है, तो हम उन्हें अपनी परिस्थिति, मित्रो और सम्बन्धियो तथा अपन आपसे असतुष्ट पाते हैं। उनकी दु खमय गाथा हम ... उनके असतोषका बहुत-कुछ ... जब उनसे अपनी परिस्थिति, अपने आपके प्रति मैत्री भावना है, तो उनके सभी प्रकारके ... समाप्त हो जाते हैं। प्रेम वह ... इसी लोकमे अमरत्व प्रदान ... मृत्युसे निर्भय हो सकता है।

बस, क्षमा करो—

श्री भगवतीचरण वर्मा

(१)

जग असत्, सत्य तुम ! नहीं किसीका हर्ज
कर लिया तुम्हारा नाम बडोंमें दर्ज !
जीनको ही है हुई तुम्हारी सृष्टि,
जीवित रहना है सदा तुम्हारा फर्ज,
मैं मित्र, तुम्हें कब स्वार्थी कहता ? कब कहता खुदगर्ज ?
लेकिन मै तुमसे करता हूँ यह अर्ज
तुम बुरे समयमें माँग रहे हो कर्ज,
कुछ फटे हाल हूँ, क्योंकि लग गया है
इन दिनों मुझे संगीत, कलाका मर्ज !
मुझको बख्शो, मैं बना रहा हूँ इस गानेकी तर्ज !

(२)

क्या फर्क कि सच है अथवा है यह झूठ ?
तुम गले मिलोगे या जाओगे रूठ ?
वह किसी समयमें था हाथीका दाँत,
तुम जिसे बनाए हुए छडीकी मूठ,
मैं कहता हूँ यह काष्ट-मूर्ति तो है शीशमका ठूंठ !
तुम कला-पारखी, माने हुए रईस,
तुम पढ सकते हो नहीं कभी उन्नीस,
तुम संग्रह करते हो कौडीके मोल
पर जगकी आँखोंमें तुम बडे खबीस !
तो नमस्कार ! तुम मौलिक हो, तो मै भी बडा अनूठ !

(३)

तुम धन्य ! पढ़े हैं तुमने चारो वेद,
तुम जान गए हो ब्रह्म-जीवका भेद,
गम्भीर तुम्हारी मुख मुद्राको देख,
लोगोंको होने लगता है प्रस्वेद !
तुम लिए बुद्धिकी जो पुस्तक वह कोरी और सफेद !

(४)

कल पढा तुम्हारा ...
अब देखी मन मूर्ति ...
तुम नेता हो, तुम ...
तुममें जगके अधिकार ...
तुम तपकी एसी मूर्ति कि ...
भर आया मेरी ...
मैं नहीं कर रहा हूँ ...
तुम बुरा न मानो, तो ...
हो रहा मुझे है तुम ...
इसको मत खींचो, इस ...

(५)

इन दिनो सुना तुम ह...
अच्छा ही है कुछ मे...
पर वहाँ अँधेरे ...
तुम बिठा रहे हो ब...
ओहो ! मुद्दतके बाद ...
बकार कर रहे हो ...
मैं तो योंही था पड...
मैं नहीं विघ्नका या...
हे मित्र तुम्हारी श...
तुम क्षमा करो, मेरी आदत ...

(६)

अनुप्रास व्यर्थ हैं ...
जो इन्हें मानता वह ...
कुछ नई धजा हो, हो ...
बठ-ठाले हो नया ...
फायदके भाई-बन्द जमे ...

अपना अपना दृष्टिकोण

मानसिक सन्तुलन

अभिव्यक्तिकी अपेक्षा अनुभूति अधिक सूक्ष्म व प्रबल होती है। कल्पना कीजिए कि एक शब्द सुना आपने छुट्टी। इस शब्दके श्रवणका प्रभाव 'मन' और 'बुद्धि' पर क्रमशः 'तरंग' और 'विचार'के रूपमें प्रस्तुत हुआ। उसकी प्रतिक्रिया हृदयपर यह हुई कि हृदयमें किसी प्रकार का 'आभास' हुआ। यह आभास मूल रूपमें 'अनुभूति' ही है। अनुभूति ही अभिव्यक्तिका रूप धारण करती है। यह अभिव्यक्ति तो हृदयकी दुर्बलता द्वारा प्रसूत होनेसे उसका 'कूट' है। भेद केवल इतना है कि यह बुद्धिके समवयोगपर उद्भासित होती है, जबकि आभास बिना किसी विधिवत् चिन्तनके प्रतिक्रिया-स्वरूप स्वतः उठा करता है—जैसे 'छुट्टी' शब्द सुननेपर 'उल्लास' वा 'विषाद' की 'लहर', अथवा किसीके मुखसे अपने प्रिय व्यक्तिके प्रति अपमान-बोधक शब्द सुनकर क्रोधकी लहर। यह आभास-मात्र है। इस लहरको जब पूर्वानुभव जन्य आकार सम्प्राप्त होता है, तब उसे अभिव्यक्ति कहा जाता है। कलाकारके हृदयपर उक्त प्रतिफलन कलापूर्ण ढंगपर होता है। तब वही अनुभूति कलाका आकर्षक व कल्याणमय स्वरूप धारण करती है। कलाकारके स्वच्छ मानस पटल के उस ओर जो आत्माभिव्यजनाकी चाँदी पुती हुई है, उसीकी प्रतिफलन प्रक्रियासे यह सब सत्य, शिव और सुन्दर कार्य निष्पन्न हो पाता है। यदि 'हृदय-दौर्बल्य' न हो, तो कविता, संगीत, चित्र, स्थापत्य आदि किसी भी कलाका विकास असम्भव हो जाय, क्योंकि आभास ही जब न होगा, तो उसके प्रतिक्रिया-स्वरूप अभिव्यक्तिकी अभिलाषा एवं त्वरा ही नष्ट हो जायगी। तब आत्माभिव्यजनाकी चाँदी किसे प्रतिफलित करेगी? तभी मनुष्य प्रचार-कार्य, भाषण, लेखन, गायन, शासन आदिसे उपरत हो आचार, आत्मानन्द व आत्मानुशासनकी ओर अभिमुख होगा। नैतिकताका सही विकास उन्हीं स्वर्णिम घड़ियोंमें हो सकेगा, जब आदमी अभिव्यक्तिसे परे अनुभूतिके क्रोडमें शान्ति और गौरव अनुभव करेगा।

विश्व भरकी सम्पूर्ण 'बाह्य-चेतनाएँ' मानवकी दुर्बलता की सूचक हैं। कलाकार और वैज्ञानिक अपने-अपने निराले ढंगपर उसी सार्वभौम दुर्बलताका 'क्षति-पूरण' करते हैं। इसी कारण वे अपने प्रशंसकोंका सम्मान पृथक्-पृथक् प्राप्त करते हैं। क्षति-पूरण प्रकृतिका अटल नियम है। इसी की बदौलत किसी-न-किसी वर्गको अपने समय व क्षेत्रमें क्षति-पूर्ति द्वारा सन्तुलनका महान् धर्म निबाहना पड़ता है। अतएव मानसिक असन्तुलनसे प्रसूत सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक अव्यवस्थाका निराकरण किसी-न-किसी वर्ग द्वारा 'पूरक सन्तुलन' बनाकर चरितार्थ करना आवश्यक हो जाता है। सो यदि पूर्व ही हृदय-दौर्बल्यका परिहार करके मानसिक सन्तुलन बनाए रखा जाता, तो अभाव वा विषमताजन्य अनैतिकता, भ्रष्टाचार और अशांति का प्रयोजन ही विनष्ट हो जाता। यही कारण है कि सच्चे योगीजन बाह्य चेतनामें आस्था नहीं रखते। यह उनकी पलायनवादिता न होकर विशाल आत्मानुभव-सिद्ध सुस्थिर-प्रज्ञता ही है। बुद्धि द्वारा ही मनपर अनुशासन प्रवृत्त होता है, अतएव उसके सुस्थिर हुए बिना मनका सतुलन होना सम्भव ही नहीं। स्थिरबुद्धि नियमित आहार-विहार और मानसिक नीरवता द्वारा ही सम्भव है। यह जानकर लगातार किया गया विधिवत् अभ्यास प्रकृति, प्राण व मनोदशाके रूपान्तरण द्वारा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तदनन्तर क्रमशः सम्पूर्ण विश्वको सम्पन्नता, प्रकाश, शक्ति व महान् शान्ति प्रदान कराता है।—*आचार्य सर्वे*, रमेश बुकडिपो, जयपुर (राजस्थान)।

भारतीय संस्कृतिपर विदेशी प्रभाव

सभ्यताके शैशव-कालमें अपनी उदार भावनाके कारण ही भारतीय संस्कृति विश्व इतिहासमें अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकी थी। वर्तमान दुरवस्थामें भी हम भारतीय अपनी प्राचीन संस्कृतिके स्मरण-मात्रसे विश्व के समक्ष गौरवके साथ अपना मस्तक ऊँचा उठानेका साहस करते हैं। विश्व-सभ्यताके विकासमें भारतीय संस्कृति की अपूर्व देन है। भारतीय संस्कृतिने आध्यात्मिक आधारपर नैतिक उत्थानका वह आदर्श विश्वके सामने रखा है, जिसकी छत्र-छायामें अपने अधिकार और कर्तव्य की निर्धारित सीमाके अन्तर्गत शान्ति एवं सुरक्षापूर्ण भौतिक जीवनकी कामना की जा सकती है। इतिहास साक्षी

है कि हम सकीर्ण बन्धनोमें जकडे हुए नही थे। हम अपने और पराए सभीको समान दृष्टिसे देखते थे। सबके साथ हमारा एक-सा व्यवहार था। हम सर्वेव न्याय-मार्गपर चलना ही अपना मुख कर्त्तव्य समझते थे। मनुष्यताके नाते समस्त मानव-जातिके साथ हमारा व्यापक सम्बन्ध था। अखिल विश्वको हम अपना परिवार समझते थे। सर्वोदय हमारा एकमात्र लक्ष्य था। हम अपने स्वार्थवश कभी स्वप्नमें भी किसीका अहित नही सोचते थे, बल्कि दूसरोंके कष्ट निवारणके हेतु अपने स्वार्थोका हवन करते थे। शरणागतोकी रक्षाका महत्व हम अपनी प्राण-रक्षासे अधिक समझते थे। हम सदैव सबका हित चाहते थे। पर ससारमे किसीका समय सदा एक-सा नही रहता है। उत्थान और पतनका क्रमिक परिवर्तन यहाँका अचल नियम है। हमारे अतुल वैभवने विदेशियो को आकर्षित किया। हममें फूटका बीज बोया जाने लगा और शनै-शनै हमारी एकता भङ्ग होती गई। हमारी सास्कृतिक उदारताको दुर्बलता समझकर वे अनुचित लाभ उठाने लगे। फल-स्वरूप एक दिन हमारा भी सौभाग्य-सूर्य अस्त हुआ और हम विदेशियोके गुलाम हो गए। जब कोई विजेता विजित राष्ट्रपर अपना आधिपत्य जमाता है, तो सर्वप्रथम वह वहाँकी सस्कृतिको लुप्त करनेका प्रयत्न करता है और तदुपरान्त अपनी भाषा-लिपिके माध्यम द्वारा अपने साहित्य-प्रचारके साथ-साथ अपनी सस्कृतिका रग भी उसपर जमाना आरम्भ करता है।

सर्वप्रथम हमारे सामने यवनोका शासन-काल आया। उन्होने हमें ज्ञानसे हटाकर पशुवत् भय और प्रलोभनके महाजालमे फँसाकर हमपर अपना रग जमाया। विवश होकर हमें उनका प्रभाव अगीकार करना पडा। हमारे सास्कृतिक रग मचपर उन्होने अपनी वीभत्स लीला प्रारम्भ कर दी। हम अपनेको बिलकुल भूलकर उनकी लीलाके विवश पुतले एव दर्शक बन गए। तदुपरान्त आया हमारे सामने गौराग प्रभुओका शासन और हमपर लादी गई अँग-रेजी भाषा। हमारे बीच उनके साहित्यका प्रचार हुआ। बस, हम पाश्चात्य सस्कृतिसे अविभूत हो गए। परतन्त्रता और शोषणका शिकार होकर हमारे हृदयमें श्रद्धा, प्रेम और सहानुभूति आदि मानवोचित गुणोका स्थान ईर्ष्या, द्वेष और पारस्परिक वैमनस्यने ले लिया। सर्वत्र शोषण और

सामाजिक और शैक्षणिक
सास्कृतिक विशिष्टताको भी
प्रकारकी ऐंग्लो-इडियन
एक कुप्रभाव यह हुआ कि
अच्छी बातोकी रक्षा कर पाए
करनेके सिवा पाश्चात्य
ही अपना सके। पर आज
इस स्थितिमें आ गए हैं कि
फिरसे नया रूप दे सकें।
है कि मिथ्या गर्व और
सस्कृतिके नव-निर्माणमें ...
नवयुवक पुस्तकालय, पपरौर

सशस्त्र क...

आदिम अवस्थासे आज
वह पत्थरके औजारोसे लेकर
की एक मनोरजक कहानी
मनुष्यके लिए जहाँ सुख
दुख, दुर्बलता, दरिद्रता
दी। ये बुराइयाँ कही-कह
मे हैं कि अब और इन्हे सहन
इसीके साथ जिन्हे इस स
उनसे साधन और सत्ता
अपनी समृद्धिकी इमारत
इन दोनो वर्गोंमे सतत सघर्ष
युद्धोका भक्ष्य लेकर भी आज
बन रहा है। पर अब त
है कि सशस्त्र सघर्ष अथवा
को सशस्त्र क्रान्तिसे दृस्त -
सुरक्षापूर्ण उपाय नही है।
और धनका नुकसान इसके स
इसीलिए हमें तो सारे पं
मुक्तिका एकमात्र मार्ग सत्य
इसमें समय अधिक लग स
अपेक्षा इससे प्राप्त हुई मुक्ति
और मानव दीर्घकाल तक
तनिक भी सन्देह नही।

कला, विज्ञान और साहित्यकी नई भावना

गत १७ जनवरीको अवाडी-कांग्रेसमें पेश की गई अपनी ६००० शब्दोंकी रिपोर्टमें नेहरूजीने कहा है— "सबसे बड़ी खुशीकी बात तो यह है कि आज हिन्दुस्तानमें कला और विज्ञानका पुनर्जागरण हो रहा है, राष्ट्रीय भाषाओं के साहित्यमें एक नई भावना आई है और संगीत तथा नृत्यमें अधिकाधिक लोग दिलचस्पी लेने लगे हैं। यह इस बात का सबूत है कि जनता देशको मिली हुई आजादी और जीवनके आनन्दमें भागीदार हो रही है। उसके नीरस जीवन बेहतर और पूर्ण होने लगे हैं।" इस कथनमें कुछ सचाई जरूर है, पर उतनी नहीं, जितनी कि जाहिर की जा रही है। यद्यपि सरकारी सहायता-प्रेरणासे शहरोंमें आजकल नाच-गानके आयोजन अधिक होने लगे हैं, पर देशके अधिकांश गाँव अभी भी मानो अज्ञान, अकर्मण्यता और आलस्यके महासागरमें ही डूबे हैं। वहाँ कला और विज्ञान या साहित्यका पदार्पण ही कहाँ? यदि सरकार वहाँके लोकगीतों एवं लोकनृत्योंको भी थोड़ा-बहुत प्रश्रय एवं सहायता पहुँचाय, तो अवश्य कुछ हो सकता है। वैसे तो यह प्रश्न भी जन-साधारणकी सामाजिक और अर्थनैतिक खुशहालीसे ही सीधा संबंध रखता है। उन्हींके साथ गाँवोंका कला-पक्ष भी जागृत एवं समृद्ध होगा।

सांस्कृतिक मिशनोंका ढकोसला

'स्टेट्समैन' में पिछले दिनों संपादकके नाम-पत्र लिखकर कई लोगोंने इस बातपर आपत्ति एवं आशंका प्रकट की है कि विदेशोंको जानेवाले भारतीय सांस्कृतिक मिशनोंमें बहुधा ऐसे लोग जाते हैं, जिनका भारतीय संस्कृतिके संबंधमें कोई ज्ञान नहीं। विशेष रूपसे जो मिशन कम्युनिस्ट देशोंको भेजे गए हैं, वे तो लाभके बजाय इस देशकी हानि ही अधिक कर रहे हैं। सरकार अपनी पसन्दके लोग चुनकर उन्हें हवाई जहाजसे विदेश भेजती है, जहाँ उनमें से अधिकांश भारतके बारेमें बड़ी विचित्र और ऊटपटांग बातें करते हैं और लौटकर उन देशोंके बारेमें ऐसा प्रचार करते हैं, मानो इतने दिनोंमें ही उनके बारेमें इन्होंने सब-कुछ जान, सुन और देख लिया है! इसमें धनका जो अपव्यय होता है, वह तो है ही, पर उससे भी ज्यादा नुकसान यह होता है कि कम्युनिस्टोंके स्वर्गसे आनेवाले ये फरिश्ते उनके करिश्मों, कारनामों, अभूतपूर्व सफलताओं और उन देशोंके शासकों की प्रशंसाके ऐसे पुल बाँधते हैं कि बेचारे सीधे-सादे भारतीय उनकी बातोंमें आ जाते हैं और वे भी मार्ग-प्रदर्शनके लिए कम्युनिस्टोंके स्वर्गकी ओर देखने लगते हैं। इसका हमारे देशकी सरकार और उसके द्वारा हो रहे पुनर्निर्माणके कार्यपर क्या असर पड़ता है, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। क्या हम आशा करें कि भारत-सरकार इस महँगी मूर्खतासे बाज आयगी?

चीनमें संगीतका पुनरुद्धार

चीनसे आए सांस्कृतिक शिष्टमंडलने कलकत्तेमें न सिर्फ अपने प्रदर्शन ही किए, बल्कि भारतीय नृत्य, संगीत और यंत्र-वादनके समारोह भी देखे। मंडलके नेताने पत्र-प्रतिनिधियोंसे भारत और चीनके सांस्कृतिक साम्य और आदान-प्रदानकी परम्पराका जिक्र करते हुए कहा—"हम दोनों देशोंकी कला और संस्कृतियोंका समन्वय करना चाहते हैं, ताकि दोनों देशोंकी शान्ति-प्रिय जनता एक-दूसरेके अधिक निकट आय।" नवीन चीनमें हुई संगीतकी असाधारण प्रगतिका जिक्र करते हुए आपने बताया कि "हाल हीमें चीनमें प्राचीन संगीतके क्षेत्रमें एक उल्लेखनीय घटना यह घटी है कि हमने दसवीं शताब्दीका एक संगीत-यंत्र खोज निकाला है, जिसपर १२वीं शताब्दीमें गाए जाने-वाले गाने सुगमतासे गाए जा सकते हैं। इस प्रकार लोक-संगीतमें भी हमने काफ़ी खोज की है। चीनमें कला और संस्कृतिका विकास प्राचीन परम्पराका आदर करके ही हो रहा है। इसी विकासके लिए हम चाहते हैं कि भारतीय संस्कृतिका जो भी श्रेष्ठांश हम ग्रहण कर सकें, अवश्य करें।" आपने बतलाया कि "हमारे देशमें पथ-दर्शक सिद्धान्त है समूची मानवताके विकास और शान्ति-स्थापनाके लिए प्रयत्न करना।" इस उद्देश्यसे हमारी पूरी सहानुभूति है। गनीमत है कि अभी भारतमें कला और संस्कृतिको एकदम सरकारी प्रचारका वाहन नहीं बनाया गया है।

भारतका राष्ट्रीय रंगमंच

पिछले दिनों लंदनके सुप्रसिद्ध अभिनेता सर लूई कैसन और श्रीमती सिबिल थार्नडाइकने दिल्लीमें 'मैकबेथ',

हेनरी अष्टम', 'हेनरी पचम' और 'मीडिया'के कुछ अशो का अभिनय किया और कैसनने कीट्स, शेली तथा कुछ अमरीकी कवियोकी कविताओका सस्वर पाठ भी किया। दोनोका भारतीय साहित्य और रगमचके प्रति बडा अनुराग है। सिविलने पिछले ५० वर्षोमे हजारो ही अभिनय किए है, जिनमे शकुन्तला और सावित्रीके अभिनय अभी भी अनेक भारतीयोको याद है। उनका कहना है कि चूँकि अभिनेता कई तरहके अभिनय करते है, उन्हें मानव-प्रकृति की विशेष परख है, अत वे विभिन्न देशोको निकट लानेकी दिशामे बहुत-कुछ कर सकते है। सर कैसनने नेहरूजीके राष्ट्रीय रगमचकी स्थापनाके विचारका स्वागत करते हुए कहा—"लेकिन उन्हें बहुत अधिक धन व्ययकर राष्ट्रीय रगमचकी विशाल इमारत खडी करनेकी भूल नही करनी चाहिए। बडे-बडे थिएटरो, रगमचो, रोशनियो और शृङ्गार-सज्जावाले नाट्यकेन्द्रोके दिन अब लद चुके। अब तो जनता और अभिनेताके बीच कम-से-कम भेद रहना चाहिए और नाटक जन-साधारणकी पहुँचके अन्दर होने चाहिएँ। भारतका राष्ट्रीय रगमच तो सेक्सपीयर-थिएटरकी तरह जनताका ही होना चाहिए। पेशेवर अभिनेताओंके मुकाबलेमें शौकिया नाटक खेलनेवाले इस दिशामें अधिक सहायक हो सकते हैं।"

बँगला-नाटकोंकी सफलता

बँगला-नाटकोकी सफलताका एक बहुत बडा श्रेय उसके श्रेष्ठ, सुशिक्षित और भावना-प्रवण अभिनेताओको है। जिस स्तरके और जैसे कुशल अभिनेता यहाँ है, अन्य भारतीय भाषाओमें कम ही मिलेगे। पिछले दिनो भारतीय नाटक-समारोहके अन्तर्गत दिल्लीमें बहुरूपीने 'रक्त करबी' और 'छेंगडा तार' का अभिनय किया, जो खूब पसन्द किए गए। 'रक्त करबी' कवीन्द्र रवीन्द्रकी एक पौराणिक गाथा है, जिसका काफी भाग कल्पनापर ही छोड दिया गया है। इसके जो भी अभिनय पहले हुए, वे विशेष सफल नही हुए। इसी प्रकार 'छेंगडा तार' उत्तर-बगालकी भाषामें लिखी गई एक माँझीकी कहानी है, जो जीवनकी बाधाओका अतिक्रमणकर उसे व्यापक रूप देना चाहता है। पर बहुरूपीके कुशल कलाकारोने दोनो को इतना सजीव और सार्थक बना दिया कि देखते ही बनता था। इसी प्रकार हाल हीमें कलकत्तेमें दक्षिणी द्वारा अभि-

छिन्न-भिन्न हो जाता है।
व्यक्ति तो प्राय सभी
बडा सजीव और स्वाभाविक

कुप्रचारपर प्र

कुछ समय पूर्व एक दल-
और द्विजातिकी महत्ताको नष्ट
में रामायणका एक प्रहसन-
कि इसमें रामायणके नामपर
कि कई स्थानोपर उपद्रव हो
काफी गहरा असर
इस प्रहसनको अभिनय
पर वह काफी सिद्ध नही हुआ।
१८७६के नाटक-कानूनके
ऐसे अभिनयोपर प्रतिबन्ध
जो आपत्तिजनक हो और
को आघात पहुँचे या अपमान
उठाना पडे, यह कोई अच्छी
बुरी बात तो यह है कि हमारे
यो दुरुपयोग हो। इसे
जन-रुचि और अधिक नीची

शब्दचक या

मनोरजनके साधनोके
लाटरी आदिपर सरकारको
कि मनोरजनके नामपर ये
यही बात आजकल विविध
प्रतियोगिताओके बारेमें भी
इनपर प्रतिबन्ध लगाए जाने
वहाँसे निकलनेवाले पत्रोने
प्रान्तसे बाहरके एक
बदस्तूर जारी है। कोई
करता है, तो कोई मन
कमाई करनेका। लाखोके
है, जिसके प्रलोभनसे चन्द
का लोभ सवरण नही कर
एक हरीफाई-विरोधी-मडल
प्रचार करेगा। पर इससे
सदिग्ध है। अच्छा हो, यदि
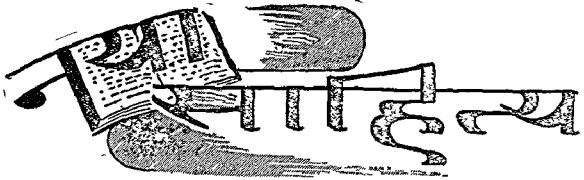
हिन्दी काव्यालंकार सूत्र (आचार्य वामनकृत काव्यालंकार सूत्र-वृत्तिकी हिन्दी-व्याख्या) व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर, संपादक—डा० नगेन्द्र, प्रकाशक—हिन्दी-अनुसंधान-परिषद, दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्लीकी ओरसे आत्माराम एंड संस, दिल्ली-६ ; पृष्ठ ५६५, मूल्य १२)

प्रस्तुत पुस्तक दिल्ली-विश्वविद्यालयकी हिंदी-अनुसंधान-परिषद्की एक सुनिश्चित योजनाके अन्दर प्रकाशित हुई है। इस पुस्तकमें दो भाग हैं। एक तो भूमिका, जिसे 'आचार्य वामन और रीति-सिद्धांत' नाम दिया गया है। यह भूमिका ग्रंथके संपादक डा० नगेन्द्र द्वारा लिखी गई है। १८९ पृष्ठोंकी यह भूमिका ९ शीर्षकोंमें बाँटकर लिखी गई है। पहले शीर्षक 'आचार्य वामन'के अन्तर्गत आचार्य वामनके जीवन-वृत्त, उनके काव्य-सिद्धान्त, काव्यकी परिभाषा और स्वरूप, काव्यकी आत्मा, काव्यका प्रयोजन, काव्य-हेतु, काव्यके अधिकारी, काव्यके भेद और आलोचना-शक्तिका सामान्यतः प्रतिपादन हुआ है। दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें शीर्षकोंके अन्तर्गत रीति-सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या, गुण-विवेचन, दोष-दर्शन तथा रीतिके प्रकारोंपर विचार किया गया है। छठेमें पाश्चात्य काव्य-शास्त्रमें रीतिके स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है। सातवेंमें इस सिद्धान्तका हिन्दी-साहित्य-शास्त्रमें मिलनेवाला स्वरूप स्पष्ट किया गया है। आठवेंमें अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि और रस-विषयक साहित्यके सिद्धान्तोंसे अंतर स्पष्ट करते हुए नवेंमें रीति-सिद्धान्तकी परीक्षा की गई है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि डा० नगेन्द्रने 'रीति'-सिद्धान्तपर बहुत व्यापक दृष्टिसे विचार प्रस्तुत किया है और उसे आधुनिक युगके शास्त्रकारोंके लिए उपयोगी बनानेका पूर्णतः प्रयत्न किया है। भूमिका विद्वत्तापूर्वक लिखी गई है और प्रत्येक तत्वको सुलझाकर रखा गया है। उसका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विश्लेषण दिया गया है और प्रत्येक सिद्धान्त के पक्ष-विपक्षके प्रत्येक महत्वपूर्ण तर्क और प्रमाण दिए गए हैं। इससे यह भूमिका स्वयं ही महत्वपूर्ण हो गई है। इस भूमिका द्वारा ही पाठक समस्त भारतीय साहित्यशास्त्रके स्वरूपसे परिचित हो जाता है और एतद्विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोणको भी जान लेता है। काव्य-विषयक भारतीय सिद्धान्त एक अत्यन्त दीर्घकालीन विचार-परंपराका परिणाम है। भारतीय मेधाने काव्य-विषयक प्रत्येक पक्षका भली-भाँति मंथन किया है। उनकी चेष्टा रही है कि काव्यगत 'सत्य' के यथार्थ और शाश्वत स्वरूपको प्रकट किया जाय। इन सिद्धान्तोंको पाश्चात्य काव्य-शास्त्रमें भी पाया जा सकता है, क्योंकि 'काव्य' तो सर्वत्र समान है, भाषा-भेद तो बाह्य भेद है। आज इस विषयपर और भी गंभीर अनुसंधानकी आवश्यकता है कि भारतीय साहित्य-शास्त्रके किस सिद्धान्तका स्वरूप पाश्चात्य क्षेत्रमें क्या है? डा० नगेन्द्रने इस भूमिकामें इस ओर श्लाघनीय प्रयत्न किया है। संस्कृत-साहित्यशास्त्रके कतिपय ग्रंथोंके हिन्दीमें अच्छे अनुवाद तो मिल जाते हैं, पर उनपर ऊँचे स्तरकी भूमिका नहीं मिलती थी। डा० नगेन्द्रकी इस भूमिकाने ऐसे ग्रंथोंकी भूमिकाओंका आदर्श किसी भी समृद्ध भाषाकी परिपाटीकी भूमिकाके समकक्ष कर दिया है। जैसे परिश्रम से डा० नगेन्द्रने यह भूमिका लिखी है, इसपर विचार भी उतने ही परिश्रम और विस्तारसे होनेकी आवश्यकता है। तभी हिन्दीमें विद्या-व्यसनका स्वरूप चमक सकता और ऊँचा हो सकता है।

दूसरा अंश है 'काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति की व्याख्या'। व्याख्याकार भी विषयके पण्डित हैं आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन। इस व्याख्यामें 'अनुवाद' भी प्रस्तुत किया गया है, फिर पांडित्यपूर्ण व्याख्या दी गई है। 'अनुवाद' कुछ काले टाइपमें देकर व्याख्यासे भिन्न दिखाया गया है। किन्तु उसे व्याख्याके प्रवाहके अंगकी भाँति ही प्रस्तुत किया गया है। विद्वान व्याख्याकारने हिन्दी-मानसको दृष्टिमें रखकर प्रत्येक विषयका स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है, पर न तो उसकी शास्त्रीयता और प्रामाणिकतामें ही शिथिलता आने दी है और न उसका स्तर ही झुकने दिया है। फलतः प्रत्येक पदपर उच्च मर्यादाके साथ विषय के अंग-प्रत्यंगका व्यापक ज्ञान प्रस्तुत होता जाता है और

प्रत्येक सिद्धान्तकी आवश्यक ऐतिहासिक परंपरा और उसके यथार्थ स्वरूपका पाठकको एक साथ ही बोध होता जाता है। पाठ-भेदोंका उल्लेख करना भी लेखक नहीं भूला है। इससे ग्रंथ और उपयोगी हो गया है। यह व्याख्या पठनीय तो है ही, विचारका विषय बनानेके योग्य भी है। डा० नगेन्द्र और दिल्ली विश्वविद्यालयकी हिन्दी-अनुसंधान-परिषद्को हिन्दी-जगत् इसलिए बधाई देगा कि उसने इस योजनाके द्वारा हिन्दीके पाण्डित्य-व्यसनको भारतीय परम्पराके आधारपर ऊँचा उठानेका साधन प्रस्तुत कर दिया है। और वह दृष्टिकोण भी साथमें प्रस्तुत कर दिया है, जिससे हिन्दीका विद्वान् अपनी पाश्चात्य प्रेरणाको भारतीय परिपाटीसे संयुक्त करके देख सकता है। हम इस समस्त योजनाका हृदयसे स्वागत करते हैं और पण्डितों तथा विद्वानोंको आमंत्रित करते हैं कि इस योजनाको सफल बनानेके लिए वे अपने शास्त्रवत धर्मको निबाहें और इन प्रयोंके आधारपर हिन्दी-साहित्यशास्त्रकी चर्चा प्रस्तुत करके नए साहित्यशास्त्रको प्राणवान करें। —(डा०) सत्येन्द्र

स्वाधीनता और उसके बाद लेखक—श्री जवाहरलाल नेहरू, पब्लिकेशन्स डिवीजन, भारत-सरकार, दिल्ली, पृष्ठ ४४५, मूल्य ५)

इस पुस्तकमें स्वतंत्रताके बादसे मई, १९४९ तकके जवाहरलालजीके भाषणोंका संकलन किया गया है। जवाहरलालजीके समय-समयपर दिए गए भाषणोंका संग्रह एक ही साथ हिन्दीमें मिलना बहुत उपयोगी होगा। भिन्न-भिन्न अवसरोंपर विज्ञान, राजनीति, अर्थनीति, वैदेशिक-नीति आदि सभी विषयोंपर इसमें वक्तव्य हैं, जिनसे स्वतंत्रता के बादकी देशकी समस्याओं और घटनाओंका अच्छा परिचय मिलता है। —सुशीला सिंघी

भारत-सरकारके प्रकाशन

विविध विभागोंके विकास-कार्योंकी रिपोर्टों और विविध अभियानोंके सचित्र विवरणोंके साथ ही इधर भारत-सरकार के प्रकाशन-विभागने कई लोकोपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन भी किया है। 'भारतकी कहानी' में सर्वश्री विश्वम्भरनाथ पांडे, इलाचंद्र जोशी और रामचन्द्र टंडनकी ६-६ ऐसी प्रसार-वार्ताओंका संग्रह है, जिनसे भारतके इतिहास, संस्कृति, धर्म, समाज, प्राचीन साहित्य, कला, राजनीति

नार्वेजियन, ग्रिम, इटालियन, कथाओंका सुन्दर संकलन है, जो पृष्ठभूमिको समझनेमें बहुत पहले' एक उपयोगी प्रकाशन है। के अभाव और अशिक्षित कितनी माताओं और संतानोंको पड़ता है। उन्हें इससे काफी का एक दूसरा उपयोगी १२ वर्ष तक'। इसमें इस समस्याओंपर प्रकाश डाला रिपोर्ट, 'आगामी कलके लिए का प्रथम वर्ष), 'फेमीली की रिपोर्ट, 'भारत-चीन और आस्ट्रेलियामें भारतके की रिपोर्ट, पंचवर्षीय टू वेलफेयर स्टेट', 'परिवहन 'एग्रीकल्चरल लेबर', मलेरिया की रिपोर्ट, 'विज्ञानकी प्रगति' भी बड़े जानकारी-भरे उपयोगी गति-विधिका खासा आभास वर्ष' नामक पुस्तिकामें शिक्षा कार्यका विवरण है। शिक्षा रक्षा, रेल्वे, और परिवहन शब्दोंके हिन्दी रूपोंकी है। प्रयास अच्छा है, पर है। यदि यह कार्य कुछ अ कराया जाता, तो शायद ये सकती थी।

अन्याय

चीनी लोक गणतंत्रके नई प्रकाशित 'नए चीनमें खेती वर्क ऑफ़ दि गवर्मेंट'से नए च विवरण ज्ञात होता है। सरकारके लिए 'शिशुपालन' छ वर्ष तक) नामक दो प्रकाशित की है। 'वाट डा जर्मन एकता-संघ, बर्लिन

कम्युनिस्ट और राष्ट्रीय चीनमें संघर्ष

वियतनाममें खींचातानी : स्यामकी 'मुक्ति'की तैयारी

पनामाके राष्ट्रपतिकी हत्या : कोस्टारीकापर आक्रमण

गत १८ जनवरीको कम्युनिस्ट चीनने प्रबल हवाई और नाविक आक्रमणके बाद अपने दक्षिण-पूर्वी तटके सामनेके ताचेन-द्वीपसमूहके यीक्यागशान द्वीपपर कब्जा कर लिया बताते हैं। यह चीनके समुद्र-तटसे २० और फार्मूसासे २०० मील दूर ताचेन-द्वीपसमूहका सबसे उत्तरी द्वीप है। गत नवम्बरमे इसीके पास कम्युनिस्टो द्वारा राष्ट्रीय चीनके एक जगी जहाजके डुबो दिए जानेके फल-स्वरूप चीनी समुद्र-तटपर राष्ट्रीय विमानोने बमबारी की थी। गत १० जनवरीको कम्युनिस्ट विमानोने इस द्वीपपर दिन-भर बमबारी की। इसकी कोई विशेष प्रतिक्रिया न होनेपर गत १८ जनवरीको उन्होने प्रातःकाल ८ बजेसे फिर इसपर विमानो और जगी जहाजोसे गोलाबारी की और तीसरे पहर उसपर कब्जा कर लिया। रायटर के सवाददाताका कहना है कि इस आक्रमणमे कम्युनिस्ट चीनके ६० विमानो (आई-एल० फाईटर्स) तथा ७० आक्रमणकारी और २० जगी जहाजोने भाग लिया। इस सफलताके कोई २४ घटे बाद ही कम्युनिस्ट चीनके २०० बमवर्षकोने ताचेन द्वीपपर ५० मिनट तक भयकर बमबारी की। इसके २॥ मील उत्तरमें स्थित टूमेन द्वीपसे कम्यु-निस्ट चीनकी तोपोने इसपर पहलेसे ही गोलाबारी शुरु कर रखी थी। यूशान, तलूशान और सियाओशानसे कम्युनिस्ट तोपोने ताचेनके ३२ मील दक्षिण पश्चिममें स्थित पीशान द्वीपपर भी गोलाबारी की, जिसमें जगी जहाजोने भी योग दिया। ताचेन-द्वीपसमूहके एक दूसरे द्वीप विहान को भी कम्युनिस्ट जगी जहाजोने घेर रखा है और उसपर भी गोलाबारी जारी है। एक तो ये द्वीप पथरीले हैं, दूसरे यहाँ राष्ट्रीय चीनकी जो थोड़ी-बहुत सेना है, वह भी बड़ी अशक्त एव असगठित है, अतः इनपर कम्युनिस्टो का कब्जा हो जाना बहुत कठिन न होगा। अमरीकी राजनेताओका कहना है कि चूँकि ये द्वीप पिछले दिनों च्याग से हुई फार्मूसा-सन्धिके अन्तर्गत नही हैं, अमरीकाका सातवाँ जगी बेडा इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। कम्युनिस्ट चीनके मुखपत्र 'पीपुल्स डेली'ने इस आक्रमणको फार्मूसाकी मुक्ति के अभियानका श्रीगणेश कहा है और राष्ट्रीय चीनके विदेश-मत्रीने युद्धकी शुरुआत। पर जो भी हो, कोरिया और हिन्दचीनमें हुई क्षणिक सधियोंके बाद एशियामे जो शान्ति स्थापित हुई थी, वह भग हो गई है और एक बार फिर विनाशकारी युद्धकी लपटें फूट पड़ी हैं।

वियतनाममें खींचातानी

वियतनामके अन्तर्राष्ट्रीय कमीशनके अध्यक्ष श्री एम० जे० देसाई वहाँके कार्यकी भारत-सरकारको जानकारी कराने और आगेके लिए हिदायतें लेने कुछ दिनोके लिए भारत आए हैं। उन्होने भारत-सरकारको जो रिपोर्ट दी है, वह तो अभी जन-साधारणके सामने नही आई है, पर पत्रोमे छपे उसके साराशसे पता चलता है कि वहाँकी स्थिति बहुत सरल और सतोषजनक नही है। लगातार आठ वर्षोकी लडाईके कारण दोनो पक्ष एक-दूसरेको सन्देह की दृष्टिसे देखने लगे हैं। सेनाओका स्थानान्तरण और पुन-र्गठन तथा राजबदियोकी रिहाई तो जैसे-तैसे हो गई, पर आवागमनकी सुविधा और स्वतत्रता बड़ी पेचीदा समस्या बन गई है। १७वी समानान्तर रेखाके उत्तरसे आए लगभग ५ लाख विस्थापितोकी समस्या भी कम टेढी नही। समझौतेके अनुसार फासीसी सेनाओको जनवरीके अन्त तक हाइडोंग और १८ मई तक हाइफोंगसे हट जाना चाहिए। पर जितनी आसानी और इच्छासे वे हनोईसे हटे, उसका यहाँ आभास तक नही मिलता। हाइफोंगके पास कोयलेकी बड़ी खाने हैं और युद्ध-कालके प्रमुख बन्दरगाहके कारण वहाँ बहुत बडे पैमानेपर युद्ध-सामग्री भी पडी है। फिर वहाँका शासन अन्य स्थानोसे बेहतर है। इस स्थितिमे इसे खाली कराना आसान काम नही। जबसे अमरीकाने घोषणा की है कि वह बाओ-दाईके शासनको मजबूत बनायगा, दक्षिण-वियतनामवालोका रुख और भी कडा हो गया है। इससे होची-मिन्हके पक्षका रुख भी बदला है। कमीशनके दो अन्य सदस्य—कनाडा और पोलेण्ड—भी प्रायः एक-दूसरेसे असहमत ही रहते हैं। इससे अध्यक्षका काम और भी कडा हो गया है। यदि जुलाई १९५६ तक यही स्थिति रही, तो पता नही चुनावोका क्या हश्र होगा।

स्यामकी 'मुक्ति'की तैयारी

स्यामके एक भूतपूर्व प्रधान मत्री नाई प्रीदी फानोमयोगके पीकिंगमें स्यामकी 'मुक्ति' के लिए तैयारी करनेके अनेक समाचार पहले आ चुके हैं। अब उनके एक सहायक नाई तियाग सिरीखडसे लुआग प्रबद और सामनुआ (दक्षिणी

लाओज) के बीचमें भेंट करके आए एक स्यामी भूतपूर्व पुलिस-अफसरने बताया है कि वे भी वियनमिन्हकी सीमापर आधुनिक शस्त्रास्त्रसे सज्जित २०० थाईवासियोंको स्यामकी मुक्तिके लिए तैयार कर रहे हैं। तियाग पिछले महायुद्ध में स्वतन्त्र थाई-सेनाके सचालक थे। १९४९में स्वतन्त्र राष्ट्रकी स्थापना करनेकी चेष्टा करनेपर वे अधिकारियोंके कोप-भाजन हुए और स्यामसे भाग निकले। कुछ समय के लिए वे स्याम लौटे और १९५२में फिर चले गए। इस समय वे दक्षिणी लाओजमें हैं, जहाँ स्वतन्त्र लाओ-सेनाके अध्यक्ष राजकुमार सुफनूवोंगके साथ मिलकर उन्होंने उत्तर के सामनुआ, ज़िवेंगखान और फोंगसाली प्रान्तोंमें स्वतन्त्र शासन कायम कर लिया है। इन्हें कम्युनिस्टोंका पूरा सहयोग-समर्थन प्राप्त है। इन प्रान्तोंसे मिले-जुले स्यामी क्षेत्रोंके अनेक लोगोंने यहाँ आना चाहा, जिसे स्यामी अधिकारियोंने स्वीकार नहीं किया। पर इस क्षेत्रमें तियागका प्रभाव और प्रतिष्ठा बाकी है।

पनामाके राष्ट्रपतिकी हत्या

गत २ जनवरीको केन्द्रीय अमरीकाके प्रजातन्त्र पनामा के राष्ट्रपति कर्नल एन्टानियो रेमनकी जुआनर्फेका रेसकोर्स में मशीनगनसे हत्या कर दी गई। हत्यारेको पकड़नेके लिए जनताने लगभग दो लाख डालर तक इनाम दिए जानेकी घोषणा की। बादमें पकड़े गए डा० मीरो नामक एक वकीलने अपने इकबाली बयानमें बताया कि यह हत्या प्रथम उप-राष्ट्रपति जोसे रेमन गुइज़ादोकी साजिशसे हुई है, जिन्होंने उनसे मंत्रिमंडलमें मुझे भी स्थान देनेका वादा किया था। गत १५ जनवरीको पनामाकी राष्ट्रीय असेंबलीने सर्वसम्मतिसे जोसे रेमन गुइज़ादोको—जो एंटोनियो रेमनकी हत्याके बाद नियमानुसार राष्ट्रपति हो गए थे—हटाकर उनपर हत्याका मामला चलानेका निर्णय किया है और दूसरे उप-राष्ट्रपति रिकार्डो एरियस एसियोनाज़ाको राष्ट्रपति बनाया है। १९४१से अबतक पनामाके ८ राष्ट्रपति हुए हैं, जिनमेंसे ५को हटाया गया, एकको हटाकर फिर नियुक्त किया गया, एक मर गया और एकने कर्नल रेमनके लिए स्थान खाली कर दिया। रेमनने पुलिस-अध्यक्षके रूपमें अपनी कार्य-कुशलताका जो परिचय दिया और उसीलिए राष्ट्रपति चुन गए। वे पहले राष्ट्रपति हैं, जो कई वर्ष बाद पनामाके जीवनमें व्यवस्था और स्थिरता

उप-राष्ट्रपति डेनियल चैनिसने पनामामें बड़े उपद्रव हुए। क थे। पर उन्होंने ७ ▲ न नहीं की। डा० चैनिसके अपना पद त्यागना पड़ा और कोर्टका फैसला डा० चैनिसके नहीं माना और पहले डा० बनाया और फिर खुद बन गए में एरियसका भी हाथ बताया हिरासतमें है।

कोस्टारीकापर

पिछले महीने पनामाके शिकायत की है कि उसके उसके उत्तरी और दक्षिणी ⌄ पर वायु और थल मार्गोंसे अ के कई नगरोंपर शत्रुका कब्जा विमानोंने सेनवारलोजपर आन नदीसे होकर उनकी सेना कोस्टारीकाके वाशिंगटन-स्थित आक्रमणके लिए अन्तर-अमरी कोई सहायता नहीं माँगी है, राष्ट्रसंघमें विचार किए जाने रेडियोका कहना है कि अम व कोस्टारीकामें यह स्थिति ७८ पूरा अपने प्रभावमें ला सके। सरकारने अमरीकी ठेकेदारोंके और युनाइटेड फ्रूट-कम्पनीपर ता अमरीकाने खुले-आम नि १९४८में जब कोस्टारीकाके निकारागुआ-स्थित प्रवासी विद्रोहका नारा बुलन्द किया जनरल एनस्टेनियो समाज़ाने कर अपने-आपको राष्ट्रपति व फिर सात वर्षोंके लिए अपनेको और १९५१में सारी सत्ता गांठ की। वे चाहते हैं कि आर्थिक तरह

अवाडी कांग्रेसका संदेश

गत २१ जनवरीको सत्यमूर्तिनगर (अवाडी) में हुए कांग्रेसके ६०वें अधिवेशनके अध्यक्ष पदसे बोलते हुए श्री ढेबरभाईने अपने ८००० शब्दोंके अभिभाषणके अंतर्गत कहा— अपने अंतिम लक्ष्यकी दिशामें भारत अपनी मंज़िलके पहले पड़ावपर पहुंच गया है। अब हमें अर्थनैतिक समानता लानेको एक जाति विहीन समाजकी स्थापनाके लिए अंतिम और सुनिश्चित प्रयत्न करना है। आज दुनियाका वातावरण क्रांतिकारी भावनासे ओत प्रोत है। भारत भी एक क्रान्तिकी दिशामें अभिमुख है यद्यपि वह एक दूसरे ढंगकी है। क्रांतिका यह चक्र पूरा घूमना चाहिए ताकि भारतकी न सिर्फ समृद्धि ही हो बल्कि उसकी सुस्थिरता संसारके अन्य भागोंमें संघर्षशील मानवताके लिए प्रकाश रूप भी हो। कांग्रेसने न केवल भारतकी आज़ादी ही हासिल की है, बल्कि सामाजिक जनतंत्रको कार्यान्वित भी किया है और उस नैतिक ढांचेको भी सामने रखा है जिससे कि देशके अर्थनैतिक भविष्यके निर्माणके लिए उसे कार्य करना है। इसके लिए हमें सेवा और आत्म त्याग द्वारा अपनी आन्तरिक शक्ति बढ़ानी है और रचनात्मक कार्यों द्वारा जन हितमें योग-दान कर जनताको नवीन समाज-व्यवस्थाके निर्माणमें अपने साथ लेना है। इस कथनमें जो संदेश और दृढ़ निश्चय है उसकी प्रेरणा और प्रभावका हम स्वागत करते हैं।

समाजवादी समाज-व्यवस्था

पर नैतिक ढंगसे नियोजित हमारी नवीन समाज व्यवस्था क्या होगी इसके स्पष्टीकरणका भार शायद आपने नेहरूजीपर ही छोड़ दिया जिन्होंने गत २१ जनवरीको खुले अधिवेशनमें विषय समिति द्वारा स्वीकृत समाजवादी समाज-व्यवस्थाको कांग्रेसका भावी लक्ष्य घोषित करनेका प्रस्ताव पेश करते हुए कहा— १९२७में मद्रासमें कांग्रेसने पूर्ण स्वराज्यकी नींव डाली और दो वर्ष बाद रावीके तटपर हमने मुकम्मिल आज़ादीकी प्रतिज्ञा की। पर अपनी आज़ादीकी लड़ाईके दौरानमें हमने कभी भी सिर्फ राजनैतिक आज़ादीकी ही बात नहीं सोची। हमेशा हमने आज़ादीके अर्थनैतिक फायदोंकी बात भी सोची है। हमने हमेशा मुल्कके किसानों, मज़दूरों, शोषितों और सर्वहारा लोगोंका ही खयाल रखा है। हमारी आज़ादीकी लड़ाईके दौरानमें मुल्कका अर्थनैतिक और सामाजिक पहलू हमेशा उभरता और रौशन होता चला गया है और अब वक्त आ गया है कि हम साफ-साफ कहें कि हम जो समाज-व्यवस्था कायम करना चाहते हैं वह समाजवादी ढंगकी होगी। मैं इस बहसमें नहीं पड़ना चाहता कि इस समाजवादी व्यवस्थाका ठीक-ठीक रूप क्या होगा क्योंकि इसके मुताल्लिक मुख्तलिफ लोगोंकी मुख्तलिफ राय हो सकती है। लेकिन मैं यह ज़रूर कहना चाहूंगा कि इसका रूप और चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, होगा वह भारतकी तहज़ीबके अनुसार ही। अगर यह बाहरसे थोपा गया तो ज्यादा दूरतक नहीं चलेगा।

'समाजवाद' शब्द पश्चिमसे आया है। यूरोपमें इसका सम्बन्ध वर्ग-संघर्ष और अन्य कई घटनाओंसे है। लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि अपने ढंगकी व्यवस्था कायम करनेके लिए हम भी यूरोपकी-सी अशान्तियोंमें से गुज़रें। हमारे लिए यह निहायत बेवकूफीकी बात होगी कि हम दूसरोंके तौर तरीकोंकी नकल करें और उनकी सी अशांति उपद्रवोंमें से गुज़रें। इसके अलावा भारतका अपना एक सुन्दर व्यक्तित्व है और उसका रहन-सहनका अपना ढंग है और साथ ही उसे दूसरे ढंगसे अपने लक्ष्यकी पूर्ति करनेका तजुर्बा भी है। मैं वर्ग संघर्षको अस्वीकार नहीं करता। वैसा करना हकीकतसे आंख मूंद लेना होगा। लेकिन जिस तरह हमने राजा महाराजाओं, ज़मींदारों तथा तालुकेदारों और जागीरदारोंकी समस्याओंको शान्तिपूर्ण ढंगसे हल किया है—जिन्हें दूसरे मुल्कोंने रक्तपात, गृह-युद्ध और ज़बरदस्त तकलीफोंके बाद हल किया है—उसी तरह हम उद्योग धंधों वगैरा समाजकी दूसरी समस्याओंको हल करने और हिंदुस्तानमें समाजवादी व्यवस्था कायम करनेमें भी शान्तिपूर्ण उपायोंमें काम ले सकते हैं। जब मैं समाजवाद शब्दका इस्तेमाल करता हूं तो यूरोपमें इसका जो एतिहासिक रूप रहा है उस रूपमें नहीं। भारतको इसका रूप कुछ अपने ढंगपर ही निर्धारित करना पड़ेगा। इसीके सार रूपमें आपने कहा— अब हमारी नियोजन कार्य इस बातको दृष्टिमें रखकर होगा कि एक ऐसी समाजवादी समाज-व्यवस्था कायम हो जिसमें उत्पादनके मुख्य

साधन समाजके स्वामित्व अथवा नियंत्रणमें रहें, उत्पादन तर्जीसे बढ और राष्ट्रीय सम्पदाका समान विभाजन हो।

नेहरूजीकी भ्रान्ति

नेहरूजीके प्रस्तावके उद्देश्यकी साधुता उनकी हार्दिक सदाशयता और साधन एवं साध्यकी समान पवित्रतापर ज़ोर देनेकी उनकी नैतिक दृढताके बारेमें कोई दो मत नहीं हो सकते । पर अवाडी जानेसे पहले दिल्लीमें कांग्रेस पार्लमेंटरी बोर्डके सामने इसी विषयपर हुए उनके भाषण से लेकर अवाडीमें विषय-समिति और कांग्रेसके खुले अधिवेशनामें हुए उनके लंबे भाषणोंको पढकर भी हमें इस बातके लिए निराश ही होना पडा कि आखिर उनका अपने ढंग के या भारतीय समाजवाद से क्या अभिप्राय है ? जो बातें उन्होंने कही हैं वे इतनी अस्पष्ट और गोल मटोल हैं कि समाजवादके साधु और जन हितकारी पक्षकी सही जानकारी के अभावमें उसके खिलाफ जो व्यापक भ्रम फैल रहा है उसे शायद तनिक भी दूर न कर सकें । समाजवाद एक नारा या कोरा अर्थनीतिक सिद्धान्त ही नहीं एक जन कल्याणकारी समाज-दर्शन है जिसका मनमाना भाष्य करना खतरेसे खाली नहीं । नेहरूजी-जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोणका दावा करनेवाले राजनेताके मुंहसे हम यह सुनकर सखेद आश्चर्य हुआ कि 'समाजवाद' पाश्चात्य शब्द है ! क्या ज्ञान भी 'मेड इन इंग्लैण्ड' या 'मेड इन जर्मनी' के ढंगकी कोई चीज है या हो सकती है ? क्या गरीबी और पिछडापन भी किसी जाति या देश विशेषका ट्रेडमार्क है ? क्या शोषण और परापहरणकी भी कोई जाति या भौगोलिक सीमाएँ हैं ? यह कहना एक बहुत बडी गलतबयानी है कि क्रान्ति और समाजवाद रक्तपात हिंसा या गृह-युद्धके बिना संभव ही नहीं । यह क्रान्ति और समाजवादके स्वरूप और उनके ऐतिहासिक विकासको गलत और भ्रांत दृष्टिसे देखना, समझना और दूसरोंको समझाना है । क्रान्ति और समाजवाद लानेवालोंने कभी भी सहज भाव और अनिवार्य रूपसे हिंसाको अपनाया हो, ऐसी बात नहीं है । समाजमें जब जब परापहरण शोषण और उत्पीडनकी शक्तियोंने मानवकी सहनशीलता और धैर्यकी अन्तिम सीमाको लांघा है मानवताके सामने एक विषम चुनौती आ खडी हुई है—वैसी ही जैसी कि बलात्कारपर आरूढ किसी गुंडेके सामने आ पडनेवाली एक अकेली

और यह व्यवहार-क्रम किसी व्यक्तियों द्वारा नहीं, किया जाता है । इसलिए को हिंसात्मक कहकर नाक सहज बुद्धिका अपमान करना भी पंडित—जिनकी नेहरूजी की है—या राजनीतिके वि है कि बिना रक्तपात, हिंसा वाद नहीं आ सकते या न अ क्रान्तिके बाद शासन और का मानस क्षितिज इतना केवल हिंसा, रक्तपात और समाजवाद लाना न सिर्फ बल्कि लगभग असंभव भी । समझते और आज भी बचकान हुई पुस्तकोंके ढंगपर क्रांति कर रहे हैं वे आलोचना या सजाए जानेके पात्र हैं ।

भारतीय समाजवादका

हां, नेहरूजीके कथनको जरूर दी जा सकती थी, जब संबंधी अपना धारणा (म भारतीय ढंगके समाजवाद करते । शांतिपूर्ण का परिणाम, सामन्तवादका हल उतने जन-कल्याणकारी उसकी तारीफ वे खुद सामान्य विद्यार्थीसे भी यह व्यवस्थाका सरल और सुबोध और वितरणके साधनोंपर स स्पष्ट मानी है इन स अंत । इसलिए यह कहना कि खानगी पक्ष बडा महत्वपूर्ण विकासमें पूंजीवाद बडा योग ही नहीं, परले सिरेकी प्र है । हां सोचने-समझने अ

सीढ़ियोंका स्पष्ट निर्णय या तो नेहरूजी और ढेबरभाई मिलकर करें, विनोबाजी करें, कांग्रेस करे या फिर हमें उन देशोंसे सबक और सहायता लेनी चाहिए, जिन्होंने इस दिशामें अमली कदम उठाए हैं। उदाहरणके लिए चीनको ही लीजिए। उससे भारतीय स्थितिका जितना साम्य है, और किसी देशसे नहीं है। चीनके कम्युनिस्ट शासकों का ध्येय है उसे समाजवादी व्यवस्थाकी दिशामें अग्रसर करना। चूंकि रूस और यूगोस्लावियाके अनुभव चीन के सामने थे, उसने उनकी गलतियोंसे महत्वपूर्ण लाभ उठाया और एक ही छलांगमें समाजवादके शिखरपर पहुँचनेकी महँगी मूर्खतासे बाज आकर बड़े धैर्य, सोच-विचार और दूरदर्शितासे अपने मंजिलकी सीढ़ियाँ निर्धारित कीं। कृषि और उद्योगोंमें इस समय वहाँ चार तरहकी मिल्कियत है . राजकीय, सहकारी-समितियोंकी, श्रमजीवी-वर्गकी और पूँजीपतियों या धनिकोंकी। पर वहाँका शासन जहाँ पहले तीन प्रकारके स्वामित्वको उन्नत होनेकी पूरी सुविधा दे रहा है, चौथे प्रकारके स्वामित्वको केवल अस्थायी रूपसे सहन-भर कर रहा है और कठोर नियंत्रण एवं करों द्वारा उसके पंख ऐसे काट दिए हैं कि वह तनिक भी अपना प्रभाव-विस्तार न कर पाय। यह हमने केवल उदाहरण-भर दिया है। इससे हमारा यह आशय कदापि नहीं कि हम भी चीनका अंधानुकरण ही करें। पर कृषि-अर्थनीतिवाला एवं पिछड़ा राष्ट्र किस प्रकार शनैः-शनैः समाजवादकी ओर अग्रसर हो सकता है, इस उदाहरणसे हमें अपने चरम लक्ष्यपर पहुँचनेके तौर-तरीके तय करनेमें कुछ मदद तो जरूर मिल ही सकती है।

सरकारी और खानगी पक्ष

अगर चीन और भारतके समाजवादी व्यवस्थाके लक्ष्य पर पहुँचनेके मार्गमें कोई अन्तर है, तो वह यही कि चीनमें अब भविष्यके लिए पूँजीवादके विकासकी न तो गुंजाइश है और न वहाँके अधिकारी ऐसा कहते ही हैं। इसके विपरीत हमारे यहाँ समाजवादी व्यवस्थाके विकासमें खानगी अथवा गैर-सरकारी पक्षको असीम विकासकी गुंजाइश एवं सुविधा का आश्वासन दिया जा रहा है। यदि हमारे देशके उद्योग-पति जरा भी अधिक पढ़े-लिखे, दूरदर्शी और सचमुच उद्योगोंके विस्तार और उत्पादन-वृद्धिके महत्वको समझते होते, तो निश्चय ही वे इस स्थितिसे असीम लाभ उठा सकते थे। पर उनमेंसे अधिकांश न तो उद्योग-विशेषज्ञ हैं, न आर्थिक ज्ञानसे परिपूर्ण और न देश तथा जन-हितकी भावना से प्रेरित-प्रभावित। वे तो केवल मुनाफेकी भाषामें सोचने-समझने और धनसे धन बढ़ानेवाले वनिए भर हैं। उनके मनमें अभी यह आशंका है कि रुपया हम लगायें और उद्योगों के उन्नत होनेपर सरकार ले ले, यह तो कोई अधिक लाभका सौदा नहीं! पर अपने रुपएको छातीसे चिपकाकर और हाथ-पर-हाथ धरे बैठकर वे कबतक खैर मनायेंगे? समाजवादी व्यवस्थाका मतलब ही है उत्पादन और वितरण के साधनोंपर शासनका अधिकार। वह केवल कर लगाकर या कंपनी-कानूनमें सुधार-संशोधनकर ही बैठा नहीं रह सकता। मैनेजिंग-एजेंसियोंकी प्रथाको हटाकर वह केवल हिस्सेदारोंके हितोंकी रक्षा ही नहीं करेगा, उत्पादन और वितरणके साधनोंपर अपना नियंत्रण भी अधिक व्यापक और प्रभावपूर्ण करेगा। यदि इसके लिए उसे कुछ उद्योगों को अपने सीधे नियंत्रणमें भी लेना पड़े, तो वह लेगा। इसीलिए मुआवजा देकर ऐसा करनेकी कठिनाईको दूर करनेके लिए उसने संविधानकी धारा ३१में संशोधन करने का निश्चय किया है। गैर-सरकारी पक्ष देशके नव-निर्माण में पूरा योग नहीं दे रहा। इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि कई उद्योगोंका उत्पादन सिर्फ इसलिए बढ़ाया नहीं जा रहा कि उसके लिए बाजार कहाँ है? और कई चीजोंको जरूरतमन्द देशवासियोंको न देकर मुनाफेके लिए बाहर भेजा जाता है, क्योंकि इनमें क्रय-शक्ति पैदा करने और बेकारोंको काम देनेकी जिम्मेदारी खानगी उद्योगपतियों पर तो है नहीं! इस स्थितिमें देशके नव-निर्माणमें खानगी पक्षका कितना ठोस और हार्दिक सहयोग मिलेगा, यह विचारणीय है। हम कोई नकारात्मक या निराशावादी रुख नहीं अपनाना चाहते, पर इनके सहारे-सहयोगसे यथार्थमें समाजवादी व्यवस्थाके लक्ष्यकी ओर बढ़ा जा सकेगा, इसमें हम नेहरूजी-जितने आशावादी शायद नहीं हैं। यदि सचमुच इस पक्षका विकास हुआ, तो कब कांग्रेस और उसका तथाकथित समाजवादी व्यवस्थाका लक्ष्य इसकी तिजोरियोंमें क़ैद हो जायेंगे, यह कहना मुश्किल है। पूँजीवादके खंभोंपर समाजवादी व्यवस्थाका महल खड़ा करनेका इरादा कितना ही नेक और पाक क्या न हो हम तो उसके बन सकनेकी संभावना कम ही दिखाई पड़ती है।

भूमि-समस्याका हल

यथार्थमें क्रांतिका चक्र पूरा घूमे, तभी हमारे स्वाधीनता संग्रामकी चरम परिणति होगी, अन्यथा विदेशी साहूकारों की जगह स्वदेशी साहूकारोंके शासन और विदेशी पूँजीपतियों की जगह स्वदेशी बनियोंके शोषणसे अधिक हमारी आजादी से हुए परिवर्तनका कोई अर्थ न होगा। पर कहीं ऐसा न हो कि क्रांतिके चक्रके घूमनेके बजाय, उसे रोककर हम स्वयं ही उसके चारों ओर घूमलें और जहाँसे आरंभ किया था,

वहाँ पहुँचकर कहें कि लो, क्रान्तिका चक्र पूरा घूम चुका! यदि सचमुच हमें इस चक्रको पूरा घुमाना है, वास्तवमें समाजवादी समाज-व्यवस्था स्थापित करनी है, तो हमें यहाँकी वस्तुस्थितिपर समाजवादी ढंगसे सोचना और अमल करना होगा। जैसा कि नेहरूजीने कहा है, हमारे देशका सबसे बड़ा और प्राथमिक उद्योग कृषि है। भारतकी जन-संख्याको देखते हुए उसका राष्ट्रीयकरण बेतुकी-सी बात लगती है। पर उसके पूर्ण विकासके लिए केवल देशी राज्यों तथा जमींदारी, ताल्लुकेदारी और जागीरदारी खत्म कर देना या भूदान-यज्ञ द्वारा आदर्शमूलक भावुकतासे भूमिके छोटे-छोटे टुकड़े कर देना ही काफी नहीं हो सकता। अन्यान्य देशोंने यह साबित कर दिया है कि कृषिका उत्पादन बढ़ानेके लिए आधुनिक वैज्ञानिक उपाय-उपकरणोंको काममें लाना अनिवार्य है। भूदान-यज्ञके पुण्य-स्वरूप जमीनके छोटे-से टुकड़ेका मालिक बना किसान या छोटे गाँवके कई किसान मिलकर भी यह कार्य नहीं कर सकते। यह कार्य तो खेतोंकी सहकारी व्यवस्था द्वारा शासन ही करा सकता है। इसी प्रकार इसके परिणाम-स्वरूप बढ़नेवाले उत्पादनके वितरणकी व्यवस्था करनेकी जिम्मेदारी भी शासनको ही वहन करनी पड़ेगी। जमींदारोंके चंगुलसे तो सरकारने किसानोंको मुक्त किया है, पर अभी उन्हें उन पुराने और नए महाजनोंके चंगुलसे भी छुड़ाना है, जिन्होंने उनका जमींदारोंसे कम रक्त-शोषण नहीं किया है। खुशीकी बात है कि रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त कमेटीने इस पहलूपर गंभीरतासे विचार किया है और ग्रामीण बैंकोंकी व्यवस्था करनेका सुझाव सामने रखा है। पर आवश्यकता है इस दिशामें पूरी योजना बनाकर तेजीसे आगे बढ़नेकी।

खानगी उद्योगोंका भविष्य

पर भारतकी आजकी अर्थनीतिक और राजनीतिक स्थितिमें यह जरूरी लगता है कि उद्योग धन्धोंके सरकारी और खानगी पक्षोंको समाजवाद या साम्यवाद नहीं, जन-कल्याण और सबकी भलाईके लिए अधिकाधिक व्यापक और विकसित किया जाय। इसके लिए जहाँ सरकारको अपनी रीति-नीतिमें फिलहाल कुछ परिवर्तन करने होंगे, खानगी उद्योग धन्धोंके मालिकों और सभी श्रेणियोंके श्रमजीवियोंको भी अपने रुख-रवैयमें आमूलचूल

है, जनताका जीवन-स्तर गिरता
मुट्ठी भर धनी अधिक धनी
चारको रोकनेका क्रान्ति, अ
यही तरीका एवं तकाजा है
मिलकर छोटे-बड़े उद्योग-
धिक लोगोंको काम दें, ताकि
तथा भुखमरीसे बेसब्र होकर
रास्ता न अख्तियार करें।
संकीर्ण व्यक्तिगत स्वार्थ और
ऊपर उठकर देशके व्यापक
उनका ही, बल्कि समूचे
सकता है।

कांग्रेसकी क्षमता और

इसे संसारके शोषित-पीड़ि
चाहिए कि अब तक जहाँ कहीं
समाजवादी अर्थ-व्यवस्थाका
वहाँ उनको अर्थनीतिक लाभ
पर जो कुछ हुआ, वह हुआ
के मँहगे मूल्यपर ही। भारत
विश्वके पहले राजनेता है,
स्वतंत्रताओंको बरकरार
स्थापित करनेकी दिशामें
सफल हुआ—और हृदयसे
तो भारत या एशिया ही न
महत्वपूर्ण क्रान्ति होगी और स
शोषित-पीड़ितोंको एक नई
मिलेगी। इसी लिए ऊपर
छिद्रान्वेषण या केवल
भावनासे नहीं, बल्कि हार्दि
ही। हमारे इस प्रश्नको
मकसद यही है कि इस
खराबी या खटक न रहे, ज
न बढ़ने दे और यह केवल
जाय। इसकी सफलताकी
व्यवस्थाके सम्बन्धमें हमारे
उसका एक सुस्पष्ट नक्शा हो

जब हमारी आँखें नेहरूजी और काग्रेसकी ओर जाती हैं, तो हम अपने-आपको बहुत आश्वस्त और आशान्वित नही पाते। समाजवादी व्यवस्था-सबधी उनके विचारो और धारणाओकी अस्पष्टतासे भी ज्यादा हमे काग्रेसकी स्थिति सशक कर देती है। हम यह नही कहते कि दुनियाके अन्य बडे राजनीतिक दल एकदम दूधके ही धुले हैं। पर कथनी और करनीमें इतने बडे विपर्यय और अन्तरवाले लोग इतनी बडी सख्यामें दुनियाके और किसी राजनीतिक दलमें होगे, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। गत २० जनवरीको विषय-समितिने काग्रेससे भ्रष्टता दूर करने और उसे मजबूत बनानेका जो प्रस्ताव पास किया है, वैसे प्रस्ताव और चर्चाएँ पहले भी सामने आ चुके हैं। पर उनका परिणाम ? इस प्रस्तावपर हुई बहससे यह स्पष्ट हो गया कि काग्रेसके धनी-धोरी इस बातसे अनभिज्ञ नही कि त्याग और सेवाकी पवित्र भावनासे प्रेरित यह सस्था आज किस अध पतनकी जा पहुँची है, पर वे कडाईसे इसका उपचार नही करना चाहते—शायद कर भी नही सकते। आज चिराग लेकर ढूँढनेपर भी शायद ऐसा नगर या ग्राम नही मिलेगा, जहाँका काग्रेस-दफ्तर और काग्रेसी उम्मीदवार का चुनाव-खर्च उन थैलीशाहोंसे न आता हो, जो लाइसस परमिट, ठेको और अन्यान्य सुविधाओके बदलेमें यह दान या घूस देते हैं। यही कारण है कि आज वे सच्चे निष्ठावान, आत्मत्यागी और सेवा-परायण व्यक्ति, जिनका पूरा जीवन काग्रेस और उसके द्वारा जनता-जनार्दनकी सेवा में ही व्यतीत हुआ है, उससे उदासीन और विमुख हैं। तब क्या यह काग्रेस समाजवादी व्यवस्थाकी स्थापना करनेमें सफल हो सकेगी ? नेहरूजी क्या इन तथ्योको नही जानते या जानकर भी आज इनकी छान-बीन करने और न्यायोंका ठौर पकडनेकी फुर्सत और दृढता उनमे नही है ?

परिवार-नियोजनकाका दिखावा

निश्चित समयकी योजनाएँ बनाकर काम करनेवाले देशोमे शायद रूस और चीनके बाद भारतका ही स्थान है। पर जिस दृढता, लगन और निष्ठाके साथ इनपर अमल होना चाहिए, वह न होकर प्रचार-प्रोपेगेंडा और छूँछा दिखावा ही अधिक होता है। उदाहरणके लिए स्वास्थ्य-मत्रालय के तत्वावधानमें चलनेवाले परिवार-नियोजनके कार्यको ही लें। प्रथम तो इतने बडे और घनी आबादीवाले देशके लिए ५ वर्षमें परिवार-नियोजनपर बिना किसी सर्वे या कार्यकी रूप-रेखाके केवल ६५ लाख रुपए खर्च मजूर करना बडी बेतुकी-सी बात है; फिर चन्द गुमराह और दुराग्रही व्यक्तियोकी अदूरदर्शिताके कारण इसका भी समयपर समुचित रूपसे व्यय नही किया जाना कहाँकी अक्लमदी है ? गत १से ४ जनवरी तक लखनऊमे हुए भारतीय परिवार-नियोजन-सम्मेलनकी अध्यक्षा श्रीमती धनवन्ती रामरावने बतलाया कि योजनाके ३॥ वर्ष बीत जानेपर भी ६५ लाख का दशाश भी खर्च नही किया गया है। क्यों ? इसका उत्तर अमरीकी 'टाइम'ने यह दिया है कि भारतकी ईसाई स्वास्थ्य-मत्रिणी केवल ऋतुचक्र प्रणालीपर ही जोर देती हैं (जो शत-प्रतिशत प्रभावहीन है) और वे गर्भ-निरोधके वैज्ञानिक उपकरणोके प्रयोग-प्रचारको प्रोत्साहन नही देना चाहती। इसका दुष्परिणाम क्या होगा, इसकी चेतावनी देते हुए डा० राधाकुमुद मुखोपाध्यायने कहा कि भारतमें करीब ५० लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष बढ रहे हैं। यदि आबादीकी यह अबाध वृद्धि जारी रही, तो पचवर्षीय योजनाके पूरे लाभ प्राप्त होनेपर भी देशकी स्थिति बुरी ही रहेगी। गत सितम्बरमे रोममे हुई अन्तर्राष्ट्रीय आबादी-विशेषज्ञोकी कान्फ्रेंसमे भी कहा गया था कि जिस गतिसे भारत की आबादी अभी बढ रही है, यदि उसे शीघ्र और प्रभावपूर्ण ढगसे नही रोका गया, तो १९८१मे वह ३६से बढकर ५२ करोड हो जायगी। क्या हम अपनी पचवर्षीय योजनाओसे इतनी बडी जन-सख्याके लिए खाने, पहनने, मकान, काम आदिकी व्यवस्था कर सकगे ? यदि नही, तो हमें समय रहते चेतना चाहिए और परिवार-नियोजनका केवल दिखावा ही न कर ठीक ढगसे योजना बनाकर आबादी-विशेषज्ञोकी सलाहसे पूरी तत्परताके साथ काम करना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति

जो अन्धेर, अकर्मण्यता और अदूरदर्शिता स्वास्थ्य-मत्रालयमें है, उन्हीका बोलबाला शिक्षा मंत्रालयमें भी है। पचवर्षीय योजनामें शिक्षाके मदमें जितना रुपया खर्च होना चाहिए था, शिक्षा-मत्रीकी अयोग्यता, अदूरदर्शिता और दुराग्रहके कारण उसका भी थोडा अंश ही खर्च हुआ है—और इसे भी फजूलखर्ची या दुरुपयोग ही कहना चाहिए। देशके स्वाधीन होनेके बाद पिछले सात वर्षोसे शिक्षामत्रालयमे तो मानो ताला ही पडा है। इस स्थितिपर खेद प्रकट करते हुए अखिल-भारतीय शिक्षा-कान्फ्रेंसके २९वें अधिवेशन में बडे दबे स्वरमें कहा गया है कि "केन्द्रीय सरकारको केवल राज्य-सरकारो, स्थानीय सस्थाओ और खानगी एजेंसियो द्वारा शैक्षणिक कार्यक्रम कैसे चलाए जायें, यह बताने और इनके कार्योको सुसबद्ध करनेकी अपेक्षा समूचे देशकी राष्ट्रीय शिक्षा-नीतियोको कार्यान्वित करने और जहाँ तक सभव हो, इसी दिशामें काम करनेवाली सस्थाओकी सहायता करनेकी

पूरी जिम्मेदारी भी अपने ऊपर लेनी चाहिए।" पर हमारी सरकारकी तो कोई राष्ट्रीय शिक्षा-नीति ही नहीं, जिसे कार्यान्वित करनेका प्रश्न उठे। लगभग हर महीने पत्रोमें किसी-न-किसी शिक्षणशास्त्रीका अथवा उपाधि-वितरणोत्सवके अध्यक्षका वक्तव्य निकलता है कि विद्यालयो, महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाका स्तर गिरता जा रहा है। मौखिक और लिखित परीक्षाओमें दिए जानेवाले उत्तरोसे भी इसकी पुष्टि होती है। हमारे राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री, अनेक राज्योके मुख्य मन्त्री और अन्य मन्त्रिगण अनेक विश्वविद्यालयोके उप-कुलपति आदि आए दिन गला फाड-फाडकर कहते हैं कि शिक्षाका स्तर गिर रहा है, शिक्षामें हमारे देशकी आवश्यकताके अनुसार सुधार होना चाहिए आदि, पर जैसे किसीके कानोपर जूं तक नही रेंगती—मानो यह काम किसी दूसरे देशके शिक्षा-विशेषज्ञ अथवा किसी दूसरे लोकके फरिश्ते आकर करेंगे। पिछले दिनों दिल्लीमें हुई विश्वविद्यालयोंके उप-कुलपतियोंकी कान्फ्रेन्समें यह शिकायत की गई कि भारतीय विश्वविद्यालयो में भीड अधिक हो जाती है, क्योंकि अयोग्य और लक्ष्यहीन विद्यार्थी भी उनमे घुस जाते हैं। इसे दूर करनेके लिए शिक्षा-मन्त्रीके दिमागमें अब एक माध्यमिक शिक्षा-बोर्डकी योजना आई है, जिसपर १९६१ तक अमल होगा। इस तरहके अपर्याप्त प्रयोगो और खिलवाडोंसे काम नही चल सकता। देशके नव निर्माणकी कोई भी योजना राष्ट्रीय शिक्षा-नीतिके पुनर्निर्माणके बिना अधूरी ही रहेगी। अत हमें अविलम्ब पार्टी और व्यक्तियोंकी कृपा, लिहाज-मुला-हिजा आदिका मोह छोडकर ३७ करोड लोगोके भविष्यकी दृष्टिसे राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धतिका पुनर्संस्कार करना चाहिए। यह कार्य वर्त्तमान शिक्षा-मन्त्री और उनका मन्त्रालय कदापि नहीं कर सकता।

विस्थापितोंकी समस्या

पश्चिमी भारतके विस्थापितोंकी समस्या तो प्राय हल हो चुकी, किन्तु पूर्वी बगालसे आए व्यक्तियोंकी समस्या अभी काफी जटिल रूपमें ही है। पिछले दिनों कलकत्ता आए पुनर्वास-मन्त्री श्री मेहरचद खन्नाने बताया कि अभी कोई डेढ लाख विस्थापित विभिन्न कैम्पो, घरो, आश्रमो आदिमें रह रहे हैं। ९ करोड रुपया सरकार इनके लिए

पर ही बने रहना चाहते है।
स्वार्थवाले 'नेता' इन्हें बरगलाकर
देते है। रहे तथाकथित सामा
कभी उनकी बैठकें देखी है, उससे
सेवाके इन फैशनपरस्तोसे किसी
सकती। यदि ये चाहते या चाहें
वरण पैदा कर सकते हैं कि वि
घरोके द्वार खुल जायँ। अभी भी
जाय, तो यह बहुत मुश्किल नहीं
शिक्षण-केन्द्रोंके साथ हार्दिक
सरकारी तौरपर इतनी बडी स
जनक ढगसे हल कर लेना आस

समाज-सेवाका कार्य

एक समय था, जब हमारे दे
और निष्ठाकी भावनासे प्रेरित
कुछ समय निकालता था। गृहस
से पूर्व वानप्रस्थाश्रम तो एकम
यह या तो कुछ शौकीनोंके मनबह
का साधन बन गया है या फिर
फिर भी यह मानना पडेगा कि
समाज-सेवाके छोटे-मोटे काम
जरूरतमद लोगोको सहायता
इनकी सहायताके बिना राहके
लोगोके कामोमे यदि
तो बहुत बडा काम हो सकता
उत्तर-प्रदेश-सरकारने इसके
स्थापित किया है और आशा की
न्य राज्य तथा केन्द्रीय
खोलेंगे। पर केवल मन्त्राल
जायगा, ऐसा समझना भूल है।
जहनियतके लोग हैं, अगर उ
की गई, तो कामसे ज्यादा क
आवश्यकता इस बातकी है कि
हुए सार्वजनिक सेवा
पूर्ण सहयोगसे चलें। उत्तर-
कार्यका मन्त्रालय खोलकर इस

नही करना चाहिए, जो अपने जीवनकी साँझमें है—भले ही कुछ दिन और वे कुछ उपयोगी काम कर ले। अब आजादीकी मशाल नौजवानोके हाथोमें होनी चाहिए।' सुननमें यह बात बडी अच्छी लगती है और है भी सही। पर अगर दरअसल नेहरूजीकी यही हार्दिक अभिलाषा होती, तो वे उस सचाईसे आँख नही मूँदते, जिसकी वजहसे पिछले सात वर्षोमें छात्रो और युवकोके सघोकी सरगर्मी के बावजूद अधिकाधिक नौजवान काग्रससे विमुख हुए है। नेहरूजी हम क्षमा करें, अधिक कार्य-व्यस्तता और खुशाम-दियोंसे सदा घिरे रहनके कारण वे न सिर्फ नौजवानोके सम्पर्कसे ही दूर हट गए हैं, बल्कि शायद यह भी नही जानते कि आज मुल्कके नौजवान किस भाषामें सोचते और बोलते है! क्या उन्होने कभी सोचा है कि उनकी काग्रसम जो कायमी स्वार्थोके ठेकेदार ऊँचे-ऊँचे आसनोपर बैठ है, जो बूढे और अयोग्य व्यक्ति सिर्फ उनके कृपापात्र होन के कारण मत्रि पदोपर थोपे गए है उनके बारेम नवयुवको की प्रतिक्रिया क्या है? एक दिन नहरूजी नवयुवकोके हृदय-सम्राटके नामसे पुकारे जाते थे। युवक-सघकी स्थापना कर उन्होने नौजवानोम एक नई जान फूकी थी। पर आज नतृत्व और पथ प्रदर्शनके लिए नौजवान उनकी ओर नही देखते, क्योंकि आज उनके विचार और कार्य क्रान्तिसे हटकर सुधार और समाजवादके नामपर कायमी स्वार्थों की रक्षाका ही आभास देत है। उनकी उपस्थितिमें काग्रेस-सस्थाम आई भ्रष्टता, अनुशासनहीनता और डलीगटो तकके चुनावम होनवाली बेईमानी और षड्यत्रोका जो बखान हुआ, अगर नहरूजी २० वर्ष पहलेके नहरू होते, तो शायद भीतरसे काग्रसको खोखला करते जानवाले इस रोग के उपचारके लिए केवल एक अनुशासन-समिति बनाकर ही सन्तोष नही कर लेते। और इस तरहकी भ्रष्ट और दुर्बल सस्थाको लेकर वे समाजवादी व्यवस्था कायम करनका स्वप्न देखते है! काग्रसके नामपर जो राजनीतिक कुम्भ मेला अवाडीमें भरा, उसकी हर्षध्वनिपर खुश होन के बावजूद गत २२ जनवरीको अवाडीम हुई प्रदश-काग्रसो के अध्यक्षो एव मत्रियोकी बैठकम नहरूजीन कहा—मैं यह देखकर दग रह गया कि काग्रसके नताआमें सामयिक समस्याओकी जानकारी और उनका अध्ययन करनकी प्रवृत्ति एकदम नही है। यही कारण है कि वे छात्रो और नौजवानोको अपनी ओर आकृष्ट नही कर पात। काग्रस सिर्फ अपनी अतीतकी प्रतिष्ठापर जिन्दा रह रही है और जनतासे उसका सम्पर्क छूटता जा रहा है। इसमें एस लोग सदस्य बनाए जाते है, जिनके पास पैसा है, सचाई नही। तब नेहरूजी स्वय सोचें कि ऐसे नेताओ और सदस्योकी सस्थाकी ओर भला आजका नौजवान क्यो और कैसे आकृष्ट हो सकता है? और इन लोगो से काग्रेसको भरकर नौजवानोके लिए उसका दरवाजा बन्द करनकी एकमात्र प्रत्यक्ष जिम्मेदारी नहरूजीकी ही है।

अवाडी-काग्रेसकी सफलता'

गत २३ जनवरीको अवाडी काग्रसका आँखो-देखा विवरण भजते हुए स्टेट्समैन के विशेष सवाददाताने लिखा है—काग्रेसके हीरक जयती-अधिवेशनसे उन लोगोको निराशा हुई है, जिन्होन यह आशा की थी कि उसम रोजमर्रा की समस्याओकी गहरी आलोचना होगी और उसीके आधारपर बड और नए निर्णय होगे। किन्तु जैसे उसका यह उद्देश्य ही न था। अधिवेशन आरम्भ होनसे पहल ही उसमें स्वीकृत होनवाले समाजवादी व्यवस्था और उसकी दिशाम उठाए जानवाल पगोका धुँआधार प्रचार आरभ हो गया था। इस अधिवेशनमें खर्च हुए लगभग ३० लाख रुपयोके भारी भरकम खर्चका औचित्य इसम हुई कुछ बौद्धिक वक्तृताओके आधारपर सिद्ध करना असभव है। दोनो प्रस्तावोमें होनेवाली पुनरावृत्तियोंका कारण था सामाजिक और अर्थनीतिक ज्ञानका बडा निम्नस्तर जिसे नेहरूजीन भी स्पष्टतया स्वीकार किया है। डलीगटोकी भाषाओकी विविधता और शिक्षाके निम्नस्तरको देखते हुए समाजवादी लक्ष्यके सिद्धान्तकी शास्त्रीय चर्चा एकदम अनुपयुक्त थी। इस मसलेन जैसे अन्य सभी समस्याओ को छा-सा लिया। इस अधिवेशनकी सफलताको इसके प्रचार प्रोपेगेंडाके प्रभावके रूपम ही देखा जाना चाहिए, जो नहरूजीकी आशाके अनुसार डलीगटोके अपन अपन प्रान्तोमें लौटनपर और भी बढगा!

सोमेशचन्द्र बसु

गत ११ जनवरीको कलकत्तेम सुप्रसिद्ध गणितज्ञ श्री सोमेशचन्द्र बसुका ६८ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। आप जब केवल आठ वर्षके थे, तभी १४ अकोकी राशिका जोड-बाकी ही नही, गुणा तक पलभर मारत ही कर लेते थे। बड होनपर आप १०० अको तककी राशिको इतनी ही बडी राशिसे बिना कागज-पेंसिलकी सहायताके गुणा कर लेते थे। भारतके प्रमुख गणितज्ञोके अलावा आपने दो बार यूरोप-अमरीकाके गणितज्ञोंके सामने जाकर भी अपनी अद्भुत प्रतिभाका परिचय दिया था। कवीन्द्र रवीन्द्रने आपको आइन्स्टाइनसे भी परिचय कराया था। १९०५में आपने स्वदेशी-आन्दोलनमें भी भाग लिया था।

बाबूराव विष्णु पराडकर

गत १२ जनवरीको प्रात. ३।। बजे काशीमें हिन्दी-पत्रकारिताके सिरमौर सम्पादकाचार्य पंडित बाबूराव विष्णु पराडकरजी सदाके लिए हमें छोड गए। यद्यपि इस समय वे ७२वें वर्षमें थे और पहले-जितना काम भी नहीं कर पाते थे, पर उन्हें अपने बीच पाकर ही न-जाने कितनोंको कितना आश्वासन, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता था। उनका निधन केवल एक श्रेष्ठ और कुशल पत्रकार का वियोग ही नहीं है, वरन् वह क्रान्ति और निष्ठाके उस युगका पटाक्षेप है, जिसका आरम्भ लोकमान्य तिलक के समय हुआ था। पराडकरजीने पत्रकारितामें जो प्रतिष्ठा पाई, जो योग्यता दिखाई, वह उनकी अविचल निष्ठा, असंदिग्ध सचाई, अनुकरणीय सेवा-परायणता और अनन्य निर्भीकताका ही परिणाम था। अपने जीवनको होमकर उन्होंने न केवल राष्ट्रके मुक्ति-संग्राममें ही योग दिया, न सिर्फ हिन्दी-पत्रकारिताको ही उन्नत एवं सम्मानित किया, बल्कि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे अनेक व्यक्तियोंको प्रेरित-प्रभावित भी किया। इस दृष्टिसे उनका काम भारतके किसी भी नेता, किसी भी क्रान्तिकारीसे कम नहीं, अधिक व्यापक और ठोस ही है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम पराडकरजीके जीते-जी ऐसी सुविधा नहीं कर सके कि वे अपने संस्मरणों को लिपिबद्ध कर पाते। पर इस पापका थोड़ा-बहुत प्रायश्चित्त हम उनका उपयुक्त स्मारक बनाकर अवश्य कर सकते हैं। यदि कोई मान्य संस्था इस कार्यको अपने हाथमें ले, तो अवश्य ही उसे समूचे देशका सहयोग प्राप्त होगा।

हरविलास सारडा

गत २० जनवरीको अजमेरमें श्री हरविलासजी सारडा का ८८ वर्षकी अवस्थामें देहान्त हो गया। अपने सारडा-कानूनके लिए आप सदा याद किए जायँगे। काफी अर्से तक आप अजमेर, ब्यावर, जोधपुर आदिमें विचारपति रहे, दो बार केन्द्रीय धारा-सभाके सदस्य चुने गए और देश-विदेश की अनेक संस्थाओंके सदस्य तथा पदाधिकारी रहे। १९-२७में आपने बाल विधवाओंकी वृद्धि रोकने और लड़के-लड़कियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करनेके लिए बाल विवाह-निषेधक बिल पेश किया, जिसमें १२ वर्षसे कम उम्रकी लड़की

जा सकता। केवल इसके लिए ही और चिर-ऋणी रहेंगे।

शान्तिस्वरूप भटनागर

गत १ जनवरीको दिल्लीमें भ औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शोध-वि सर शान्तिस्वरूप भटनागरका ६ देहान्त हो गया। १९१९में पंज एस्-सी० करके आप लंदन चले एस्-सी० किया। लौटकर अ भौतिक और रसायनके अ आप पंजाब विश्वविद्यालयमें चले पनके साथ-साथ शोध-कार्य किया अणु और परमाणुसे उसका • रसायन, बुनाई और स्टार्च, भूमि वस्तुओंके निर्माण और शोध की। देश और विदेशकी कई संस्थाओंसे आपका सम्पर्क था। 'इलम-उल्-वर्क' आपके प्रमुख • व्यावहारिक कुशलताके सभी होनेके बाद आप उसकी पंचवर्षीय ले रहे थे। आपका मत था सामग्रीका वैज्ञानिक ढंगसे बहुत शीघ्र समृद्ध हो सकता है

रघुवीरसिंह

गत ७ जनवरीको पेप्सूके का ६२ वर्षकी आयुमें देहान्त हो आप अस्वस्थ थे। पहले आप थे। अवकाश ग्रहण करनेके कु हुआ और विभाजन हुआ। त के विचारसे कांग्रेसमें शामिल और व्यवस्था-कुशलताका ही ५२ और ५४में पेप्सूमें बने म हुए। आपकी सादगी दृष्टिकोण और सेवा-परायणता करते थे। पेप्सूमें राष्ट्रपति

मार्च
१९५५
नया
समाज

सञ्चालक
नया समाज ट्रस्ट

नया समाज

(स्वतन्त्र विचारों का सचित्र हिन्दी-मासिक

विषय-सूची : मार्च, १९५५

विषय	लेखक
ध्यान भूमि (कविता)	श्री सुमित्रानन्दन पंत
मानवके अस्तित्व और विवेकको चुनौती	बरट्रैण्ड रसेल
शान्ति या विनाश ?	क्लेमेण्ट एटली
बुझ न सकेगी जीवन बाती ! (कविता)	श्री महेश सन्तोषी
फारमोसाकी लड़ाई	भग्नदूत
दुश्मनका अत्याचार (कहानी)	श्रीमती उषादेवी मित्रा
बेनियामी हिटलरशाही	पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी
रूसी लोक साहित्य	श्री वा० राजेन्द्र ऋषि एम०
रूसका दर्शन	श्रीमती सावित्री निगम एम
सुनीति (कहानी)	श्रीमती विमला लूथरा
मेरी पत्नी गिरफ्तारी (सचित्र)	श्री भूपेन्द्रकुमार दत्त
काँचकी दो चूड़ियाँ	श्रीमती सरस्वतीदेवी कपूर
मेरे कवि (कविता)	श्री दिवाकर
स्व० हरिहरनाथ शास्त्री	श्री अलगूराय शास्त्री
स्व० 'रंजन' जी	श्री घनश्याम सेठी
आत्म-हत्या (कहानी)	श्रीमती सोमा वीर
रूसमें पट-परिवर्तन	राजनीतिका एक विद्यार्थी
अपना अपना दृष्टिकोण	
नया साहित्य	
कला समाज और जीवन	
दग विशेष	

वर्ष ७ : खंड २] कलकत्ता : मार्च, १९५५ [अंक ३ . पूर्णांक ८१

ध्यान-भूमि

श्री सुमित्रानंदन पंत

आओ हे, हम ध्यान-मौन, एकाग्र प्राण-मन
जीवन का अंतरतम सत्य करें उद्घाटन !
पलक मूंद, अंतःस्थित खोलें मनके लोचन,
परमात्मको करें पूर्ण सब आत्म-समर्पण !

लो, सुन पड़ता सूक्ष्म स्वर्ण-भृंगोंका गुञ्जन,
मन, धीरे, श्रद्धापथसे करता आरोहण !
देखो, छंटता घने कुहासेका छाया-घन,
जिसमें पलता हास-अश्रु-स्मित जगका जीवन !

जिसकी चपल भृकुटिपर इंद्रधनुष-सा प्रतिक्षण
हंसता मानव आशाऽकांक्षाका सम्मोहन !
ओझल होता लो, वह बादल रश्मि-विद्रवित,
गर्जन संर्घणमय, तृष्णा तड़ित् प्रकम्पित !

नए रुपहले क्षितिज निखरते मनके भीतर,
आभाके रस-स्रोत फूटते, पुलकित अंतर !
जगके तमके साथ हुआ 'मैं' का भ्रम भी लय,
अब अवाक् आरोहोंमें उड़ता मन निर्भय !

जहाँ शुभ्र सच्चिदानन्दके शिखर अतंद्रित,
निज असीम शाश्वत शोभामें निःस्वर मज्जित !
मानव-मनकी अंतिम गति, आत्माकी परिणति,
ज्योति-स्पर्श पा निर्मल हो उठती पंकिल मति !

आः, ऊपर वह छाया स्वर्णिम ज्वालाका घन
दिव्य प्रेरणा-तड़ितोंमें लिपटा अति चेतन !
बरस रहे शत सृजन-प्रलय, शत देश-काल-क्षण,
श्री शोभा आनन्द मधुरिमाका भर प्लावन !

अमृत बिन्दुओं-से झरते स्मित ज्योति-प्रीति-कण,
अमरोंके सुख-वैभवमें उर करता मज्जन !
भारहीन अक्षय प्रकाशसे पीड़ित अंतर
मुक्त भावनाके स्वर्गोंमें उठता ऊपर।
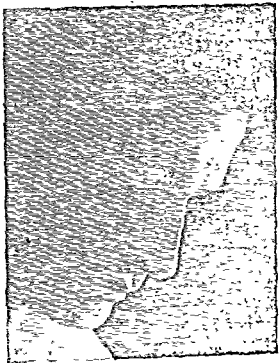
श्री सुमित्रानंदन पंत

अंतर्मनका शांत व्योम रे यह निस्संशय,
ऊर्ध्व प्रसारोंमें खो जाए चित्त न तन्मय !
आओ, इस स्वर्गिक वाड़वमें अवगाहन कर
लौट चलें पावक-पराग-मधुका नव तन धर !

नव प्रकाशके बीज करें जन-भूपर रोपण,
शोभा-महिमासे कृतार्थ हो मानव-जीवन !

मानवके अस्तित्व और विवेकको

बरट्रेण्ड रसेल

ब्रिटेनके सुप्रसिद्ध दार्शनिक और इस युगके महान मानवतावादी विचारक बरट्रेण्ड रसेलने
रही अणु और उद्‌जन-बमकी होडसे होनेवाले सभावित दुष्परिणामके खिलाफ जबरदस्त
सम्बन्धमें बी० बी० सी० से प्रसारित उनकी एक वक्तृताका भाषान्तर नीचे दिया जा रहा
'मंचेस्टर गार्जियन'में सपादकके नाम लिखे गए एक पत्रमें भी आपने लिखा है—"इस
प्रेसिडेंट आइज़नहावर और मि० चाउ-एन-लाई, मानव-जातिके अस्तित्वको जारी रहने
पैदा किए है। यह स्पष्ट है कि इनमें से कोई भी इस खतरेसे पर्याप्त रूपसे आगाह नहीं है। उनके
के सम्बन्धमें मुझे कुछ भी नहीं कहना है। जब किसी मकानमें आग लगी हो, तो व
इस बातका निर्णय करनेके बजाय कि अग्निकाडके लिए दोषी कौन है, भीतर रहनेवालोंकी
व्यक्ति, सर विस्टन चर्चिल और मि० नेहरू, कामनवैल्थ-कान्फ्रेंसमें मिल रहे हैं। दोनोंने
दुष्परिणाम-सम्बन्धी अपनी आशकाओंको प्रकट किया है। क्या ये मिलकर प्रत्यक्ष
उपाय नहीं सुझा सकते? सर विन्स्टनका (अमरीका) के प्रेसीडेंटसे पुराना मैत्री-सम्बन्ध है
कम्युनिस्ट चीनकी सरकारसे मैत्रीपूर्ण सम्पर्क स्थापित किया है। इस समय जिस बातकी
कर सकते हैं, वह यह कि लडाई तो बन्द कर दी जाय और समझौतेके किसी उपायकी खोज
हुआ, तो यह ग़ैर-मुमकिन नहीं कि इस वर्षके अन्तसे पहले ही मानव-जातिका लोप हो जाय
होता है कि गत ९ फरवरीको भारतके प्रधान मन्त्री नेहरूजीने आपके साथ दोपहरी की और
राजी करनेकी चेष्टा की कि ६ भारतीयोंकी एक समिति बनाई जाय, जो उद्‌जन-बमोंसे
को होनेवाली हानिसे सब राष्ट्रोंको अवगत कराए। अभी नेहरूजीने कोई वादा तो नहीं
प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति अवश्य प्रकट की है। यदि इस सम्बन्धमें सभी देशोंमें
जा सके, तो शायद कुछ लाभ हो। —स०

आज मैं एक अंगरेज अथवा एक यूरोपियन अथवा पश्चिमी जनतन्त्रके एक सदस्यकी हैसियतसे नहीं, बल्कि उस मानव-समाज—जिसका अस्तित्व आज गहरे खतरेमें है—के एक सदस्यकी हैसियतसे ही कुछ कहना चाहता हूँ। हमारी आजकी दुनिया तरह-तरहके सघर्षोंमें मुब्तिला है—यहूदियों और अरबोंका, भारतीयों और पाकिस्तानियोंका तथा अफ्रीकामें गोरों और कालोंका। और इन सबसे कहीं बडा सघर्ष है कम्युनिस्टों और कम्युनिस्ट विरोधियोंके बीच। लगभग हर आदमी, जो कि राजनीतिक दृष्टिसे सजग है, इन समस्याओंके सबन्धमें बडी दृढ भावनाएँ रखता है। पर मैं तो केवल यही कहना चाहता हूँ कि यदि किन्हीं एक क्षणके लिए हम इन सारी भावनाओंको भूल सकें कि हम और कुछ होनेसे पहले उस मानव-समाज

सकटको कैसे
मैं ऐसी कोई बात नहीं
पसन्द हो और दूसरेको
तो यह है कि आज हम
और अगर हम इसे ठीक
करना असगत न होगा कि
की प्रबल प्रचेष्टा कर सकते
सोचना सीखना होगा।
दलके साथ क्यों न हो, पर ह
कैसे कदम उठानेसे उस दल
आजकी स्थितिमें ऐसे कोई
अपने-आपसे यह प्रश्न पूछना

यह महसूस ही नही किया है कि उद्जन-बमोंकी लड़ाईका परिणाम कितना भयकर होगा। जन-साधारण अभी यही समझते है कि इससे केवल बड़े नगरोका ही ध्वस होगा। पर सच यह है कि ये बम पुराने बमोंसे कही अधिक विनाशकारी है। जहाँ एक अणु-बमसे हिरोशिमा नेस्त-नाबूद हो सकता है, वहाँ एक उद्जन-बमसे न्यूयार्क, लन्दन और मास्को-जैसे विशाल नगर तक बिल्कुल नि.शेष किए जा सकते है। लेकिन यह भी उद्जन-बमसे होनेवाले विनाश का एक छोटा ही रूप है। यदि थोडी देरके लिए हम मान भी ले कि उद्जन-बमसे लन्दन, न्यूयार्क और मास्कोमें रहनेवाले हर व्यक्तिका अन्त किया जा सकता है, तो यह एक ऐसी हानि होगी, जिसकी क्षति-पूर्ति शायद कुछ शताब्दियो में हो सके। किन्तु बिकिनीमे हुए उद्जन-बमके परीक्षणसे यह स्पष्ट हो गया है कि उद्जन-बममें अनुमानसे कही बडे क्षेत्र तक अपना विनाशकारी प्रभाव विस्तार कर सकता है। अधिकारी विशेषज्ञोंका कहना है कि हिरोशिमाका नाश करनेवाले अणु-बमसे पचीस हजार गुना अधिक शक्तिवाला उद्जन-बम अब तैयार किया जा सकता है। ऐसा बम चाहे जमीनके ऊपर फटे या पानीके नीचे, उसके रेडियो-एक्टिवके कण ऊपर हवामें अवश्य फैलते है और फिर धीरे-धीरे पृथ्वीपर मृत्युके कण बनकर लौटते है। इन्ही कणोके सम्पर्कसे वे जापानी मछुए और मछलियाँ अकाल काल-कवलित हुए, जो कि अमरीकी विशेषज्ञो द्वारा निर्धारित खतरेके क्षेत्रसे कही दूर थे।

सारी मानवताका अंत !

यह निश्चयपूर्वक कहना तो बडा कठिन है कि उद्जन बमके विस्फोटसे फैलनेवाले रेडियो-ऐक्टिवके ये घातक कण कहाँ तक जा सकते है, किन्तु इसके बडे-बडे विशेषज्ञ तक इस बातमें सर्वसम्मत है कि उद्जन-बम मानव-जातिका अन्त करनेकी पूरी क्षमता रखते है। उन्होने यह आशका प्रकट की है कि यदि कई उद्जन-बमोका प्रयोग किया जाय, तो सारी दुनियाके मनुष्योका खात्मा किया जा सकता है। वे कुछ लोग भाग्यशाली होगे, जो उनके प्रभावसे तुरन्त मर जायेंगे; पर अधिकाश लोगोको तो भयकर रोगो और अग-हानिकी दुस्सह यन्त्रणा द्वारा तिल-तिल करके ही मरना होगा। यहाँ मै कुछ उद्धरण देना चाहता हूँ ब्रिटिश हवाई सेनाके युद्धकालीन मुखिया सर जान स्लेशर का कहना है कि "इस युगमें होनेवाला विश्व-युद्ध सामूहिक मानव-हत्याऐं ही होगा। युद्धमे किसी खास अस्त्रके निषेध की बात करना न तो पहले कभी कोई मानी रखता था, न आज ही रखता है। आज तो जरूरत इस बातकी है कि हम युद्धका ही निषेध करें।" स्नायु-विज्ञानके विशेषज्ञ प्रो० एड्रियनका कहना है—"लगातार होनेवाले आणविक विस्फोटोसे वायुमण्डलमे रेडियो-एक्टिवके कण इतने व्यापक रूपसे फैल जायेंगे कि उनसे कोई भी नही बच सकेगा। जबतक हम अपनी कुछ पुरानी मान्यताएँ छोडनेके लिए तैयार न हो जायँ, हमे मजबूरन उस संघर्षमे पडना पडेगा, जिसका परिणाम समूची मानवताका अन्त ही होगा।" हवाई सेनाके मुखिया सर फिलिप जूबर्टका कहना है— "उद्जन-बमके आविष्कारके साथ ही मानव-समाज उस
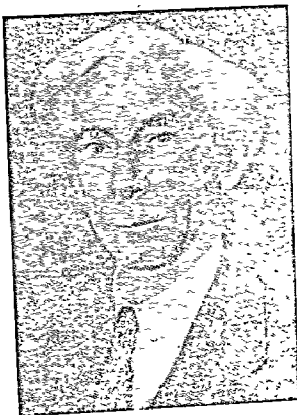
बरट्रेण्ड रसेल

मजिलपर पहुँच गया है, जहाँ कि या तो वह अपनी नीतिके रूपमें युद्धका त्याग करे अथवा अपने पूर्ण विनाशकी सभावना को स्वीकार करे।"

युद्ध-निषेधकी आवश्यकता

ऊपर हमने कुछ विशेषज्ञोंके जो उद्धरण दिए है, वैसे और भी बहुत-से दिए जा सकते है। अनेक विज्ञान-वेत्ताओ और सैनिक-विज्ञानके अधिकारियोने उद्जन-बमके व्यापक विनाशकी सभावनाकी अनेक चेतावनियाँ दी हैं। इनमें से कोई भी यह नही कहता कि उद्जन-बमका निकृष्ट-

तम परिणाम ही होगा, बल्कि उनके कहनेका आशय तो यह है कि इन परिणामोंकी सभावना है। पर किसीको इस गफलतमें नही रहना चाहिए कि ऐसे परिणाम हो नही सकते। जहां तक मेरा खयाल है, विशेषज्ञोका यह मत किसी राजनीति या भ्रान्तिपर आधारित न होकर केवल उनकी शोधका ही परिणाम है। मैंने देखा है कि इस परिणामकी जिसको जितनी अधिक जानकारी है, वह उतना ही अधिक सशक है। इसलिए आज अपने बिलकुल नग्न और अपरिहार्य रूपमें समस्या यह है कि हम लोग मानवताका अन्त करना चाहते है अथवा युद्धको त्यागनेको तैयार है? शायद अधिकाश लोग इस समस्या

अमरीका और रूसमें प्रतिद्वन्द्विता

गत ८ फरवरीको सुप्रीम सोवियत (रूसी पार्लमेंट)के सम्मिलित अधिवेशनमें बोलते हुए रूसके विदेश मत्री मोलोटोवने कहा—"दूसरे महायुद्धके बाद पाश्चात्य शक्तियोंने सोचा कि आणविक शस्त्रास्त्रमें सोवियत-सघको उनके बराबर होनेमें १०-१५ वर्ष लग जायेंगे। पर इस विषय में आज सोवियत-सघ उनके समान स्तरपर है। और उद्‌जन-बमके मामलेमे तो रूस नहीं, अमरीका ही रूसके पीछे है!" इसके उत्तरमें १० फरवरीको वाशिंग्टनके अमरीकी अधिकारियोंने कहा कि "पहले कभी सोवियत-सघ भले ही उद्‌जन-बमके मामलेमें अमरीकासे आगे रहा हो, पर अब यह फर्क नहीं रह गया है।" अमरीकी अणु-विशेषज्ञोंका कहना है कि "आणविक विस्फोटकोंके प्रयोगमें नई विधिके आविष्कारसे शायद अभी कुछ समयके लिए रूसका ज्ञान अधिक हो गया हो। अमरीकी विशेषज्ञोंसे कोई एक वर्ष पहले रूसियोंने समय और घातक पदार्थकी काफी बचतकर अणु-विस्फोटकोंको चलानेकी विधि निकाली है। पर अब अमरीका इस फर्कको पूराकर रूससे आगे बढ़ गया है!"

का सामना करनेको तैयार न होंगे, क्योंकि युद्धका त्यागना आज काफी कठिन बात है। युद्धके त्यागनेका परिणाम राष्ट्रीय सार्वभौमतापर कई तरहके नियत्रण लगाना होगा।

अस्पष्ट धारणा

आज दो देशोंमें समझौता होनेके मार्गमें सबसे बडी कठिनाई यह है कि मनुष्य 'जन' अथवा 'मानव' के बारेमें

इस अस्पष्ट और भ्रान्तिपूर्ण
लोग यह समझते है कि यु
कुछ आधुनिक अस्त्रोका
मुझे भय है कि यह विचार
कालमें चाहे जैसे और
युद्ध-कालमें उनका पालन
यह तो तय है कि युद्ध
बम तैयार करने लगेंगे, क्य
तैयार किया और दूसरेने
तैयार करनेवाले पक्षकी ह

मै देखता हूँ कि लौह
महायुद्धके नाशकारी प्रभाव
काफी राजनीतिक
है कि यदि एक पक्ष इस बालक
दृष्टिसे वह दूसरेकी दयाका
आत्म-रक्षाके लिए हर प
है कि उसे प्रतिपक्षी द्वारा
दी जा रही है, जिन्हें कि वह
ही पक्ष भले ही समझौतेके
ढगसे इस भावनाको व्यक्त
ठीक वैसी ही है, जैसी कि
को द्वन्द्व-युद्धके लिए चुनौत
करती थी। अक्सर ऐसा
देनेवाले दोनो व्यक्ति मृत्युके
रखते थे, किन्तु कोई भी
था कि कही उसे कायर न
में एकमात्र आशा दोनो अ
ही थी, जो कि सहज हीं
आज लौह-आवरणके दोनो
स्थिति है।

युद्ध-निषे

यदि आज युद्धको
तो वह निष्पक्ष राष्ट्रोंके
ये राष्ट्र युद्धकी विनाशका
इन्हें कोई कायर अ
टेकनेकी नीतिका पालन

अधिष्ठाता होता, तो मेरा सर्वप्रमुख कर्त्तव्य यही होता कि मेरे देशके निवासी सुरक्षित रहें; और यह तभी संभव था, जब कि मैं लौह-आवरणके दोनों ओरके पक्षोंमें किसी प्रकार का समझौता संभव करा सकता। व्यक्तिगत रूपसे अपनी भावनाओंमें मैं तटस्थ कदापि नहीं हूँ, इसलिए मैं कभी भी युद्धके खतरेको टालनेके लिए पश्चिमके आत्म-समर्पण अथवा आततायीके आगे घुटने टेकनेकी नीतिका समर्थन नहीं कर सकता। पर एक मनुष्यकी हैसियतसे मुझे यह हमेशा याद रखना चाहिए कि यदि पूर्व और पश्चिम, कम्युनिस्टों और गैर-कम्युनिस्टों, एशियावासियों या यूरोपियनों या अमरीकनों तथा कालों या गोरोंकी समस्याओं का किसी भी प्रकार हल संभव है, तो वह कभी भी युद्धके द्वारा नहीं होना चाहिए।

मेरी हार्दिक कामना है कि यह तथ्य लौह-आवरणके दोनों ओरवाले पक्षोंके द्वारा भलीभाँति समझा जाना चाहिए। केवल एक ओर ही इसका समझा जाना काफी नहीं है। चूँकि निष्पक्ष राष्ट्र आजके इस संकटमें पूर्व और पश्चिमकी तरह ही मुब्तिला नहीं हैं, वे इस तथ्यको दोनों पक्षोंको भलीभाँति हृदयंगम करा सकते हैं। एक या अधिक निष्पक्ष राष्ट्र कुछ विशेषज्ञोंका एक ऐसा कमीशन भी बना सकते हैं, जो न केवल लड़नेवाले पक्ष, बल्कि निष्पक्ष राष्ट्रोंपर भी उद्जन-बमोंके युद्धके संभावित विनाशकारी प्रभावके संबंधमें एक रिपोर्ट तैयार करे। यह रिपोर्ट सम्मति-असम्मति व्यक्त करनेके अनुरोधके साथ सभी बड़े राष्ट्रों के पास भेजी जानी चाहिए। मेरे खयालसे इस रूपमें महान् राष्ट्रोंको इस बातसे सहमत किया जा सकता है कि उनमेंसे किसीका भी मकसद विश्व-युद्धसे पूरा न होगा, क्योंकि उससे मित्र, शत्रु और निष्पक्ष राष्ट्रों—तीनोंका ही समान रूपसे विनाश होगा।

अतीतसे भी बड़ी संभावनाएँ

नृतत्व-विज्ञानवेत्ताओंका कहना है कि अभी मनुष्य पृथ्वीपर बहुत थोड़े समय ही रह पाया है—केवल १० लाख वर्ष। इस कालमें—और विशेषतया पिछले छ हजार वर्षोंमें—उसने जो-कुछ प्राप्त किया है, सृष्टि-विकासके इतिहासमें वह बिल्कुल नई चीज है। असंख्य युगों तक सूर्य और चाँद उगते और अस्त होते रहे, तारे रात भर टिमटिमाते रहे, पर केवल मनुष्यकी उत्पत्तिके बाद ही इनके अस्तित्वके अर्थ और महत्वको ठीक-ठीक समझा गया। नक्षत्रों और अणुकी दुनियामें मनुष्यने उन रहस्योंका आविष्कार किया है, जो आम तौरपर अबूझ ही समझे जाते थे। कला, साहित्य और धर्मके क्षेत्रोंमें कुछ मनुष्योंने अपनी प्रतिभाका ऐसा अद्भुत चमत्कार दिखाया है कि उसे देखकर मनुष्य-जातिकी रक्षा उचित ही लगती है।

क्या मानवका यह सारा अवदान केवल इसलिए समाप्त हो जायगा कि चन्द व्यक्ति मानव और मानवताके व्यापक हितकी दृष्टिसे न सोचकर इस या उस दलके हितकी दृष्टिसे सोचते हैं? क्या आज मानव-जातिमें बुद्धि-विवेक और निर्मल प्रेमकी इतनी कमी हो गई है, क्या आज वह आत्म-रक्षाकी सरलतम बातोंसे इतनी अन्धी हो गई है कि उसकी मूर्खतापूर्ण चतुराईके फल-स्वरूप भूमिपर सब प्रकार के जीवनका अन्त ही हो जायगा? यदि जीवनका अन्त हुआ, तो वह केवल मनुष्य-जातिका ही नहीं, उन पशु-पक्षियों और पेड़-पौधोंका भी अन्त होगा, जिनपर कम्युनिस्ट या कम्युनिस्ट-विरोधी होनेका आरोप नहीं किया जा सकता। मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि हमारी दुनियाका इस प्रकार अन्त हो जायगा।

खतरेकी घंटी

गत १४ फरवरीको लन्दनमें 'संडे पिक्टोरियल'के राजनीतिक संपादकके भेंट करनेपर नेहरूजीने कहा—"पहले की अपेक्षा मैं अब ज्यादा आशावादी हूँ कि युद्ध टाला जा सकता है। इस सम्बन्धमें हाल हीमें एक बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। अब सभी देशोंके जनरल युद्धको टालनेके पक्षमें हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि युद्धका परिणाम क्या होगा। वे जानते हैं कि उसमें जीत किसीकी भी नहीं होगी। मैं जानता हूँ कि ब्रिटेनमें यही मत जाहिर किया जा रहा है। रूसियोंने भी यही बात कही है। और हाल हीमें अमरीकामें जनरल मैकार्थर तकने यही कहा है। ये अच्छे आसार हैं। हाँ, कुछ राजनेता हों भले ही जनरलोंसे भी पीछे हों। पर हमें आशा करनी चाहिए कि वे भी इसी निष्कर्षपर पहुँचेंगे। परन्तु खतरा यह नहीं है कि कोई भी पक्ष जान-बूझकर युद्ध छेड़ेगा। खतरा तो यह है कि दुनिया लड़खड़ाती हुई किसी आकस्मिक घटना अथवा अनायोजित कांडके परिणाम-स्वरूप ही लड़ाईमें न फँस जाय।"

मेरा तो यही अनुरोध है कि मनुष्य एक क्षणके लिए अपने आपसी झगड़े भूलकर जरा सोचे कि यदि वह मानव जातिकी रक्षा करता है, तो इस बातकी अधिक संभावना है कि अतीतमें उसने जो सफलताएँ प्राप्त की हैं, उनके मुकाबले में कहीं बड़ी सफलताएँ उसे भविष्यमें प्राप्त होंगी। यदि हम चाहें, तो हमारे सामने सुख, ज्ञान और बुद्धि-विवेककी दिशाओंमें असीम प्रगतिकी संभावनाएँ हैं। क्या इनके मुकाबलेमें हम सिर्फ इसलिए मौत चुनेंगे कि हम अपने झगड़ों को भूल नहीं सकते? मैं एक मनुष्यके नाते अपने मनुष्य-भाइयोंसे अपील करता हूँ कि वे केवल अपनी मनुष्यताको याद रखें और बाकी सब-कुछ भूल जायँ। यदि हम ऐसा कर सकें, तो हमारे सामने एक नया स्वर्ग दिखाई दे रहा है। यदि हम ऐसा न कर सकें, तो विश्वव्यापी मृत्युके सिवा हमारे सामने और कोई चारा नहीं है।

शान्ति या विनाश ?

क्लेमेण्ट एटली

आज हम अपने सामने एक नई दुनियाको देख रहे हैं—एसी दुनियाको, जिसमे हवाईजहाज़ोने रक्षा-सीमाओं को वेकार कर दिया है और उद्जन-बमने अब तककी युद्ध-नीतिमें आमूलचूल परिवर्त्तन कर दिया है। आज दुनिया के सामने दो ही विकल्प हैं ' शान्ति या सभ्यताका विनाश। इस समय हम एक ऐसी दुनियामे रह रहे हैं, जो मतवादों को लेकर टूक-टूक हो रही है। पर साथ ही आजकी दुनियामें मनुष्यके पुराने शत्रुओ—भूख, अभाव और

क्लेमेण्ट एटली

गरीबी—पर विजय पानेकी सभावनाएँ भी पहलेकी अपेक्षा कही अधिक हो गई हैं।

नैतिक अनैतिकता

सबसे पहले हमें इस वातपर विचार करना चाहिए कि आज परस्पर-विरोधी विचारो और मतवादोंको लेकर दुनियाकी

नैतिकताकी किसी
उसके लिए वही सत्य और
की सरकार तय कर दे। जो
प्रचलित मान्यताओंको मानते
अपील भी की जा सकती है।
या स्तालिन उन्हे कैसे स्व
इससे और स्पष्ट हो जाती है
अथवा कानूनका कोई सच्चा अ

अभी पिछले दिनो जब
मैं चीन गया था, तो बातच
मित्रोने बताया कि यदि
करे, जो कम्युनिस्ट-पार्टीके
फैसला मान्य नही होता है।
आम तौरपर ऐसा होता नही
सरकारसे सहमत ही होते हैं
पश्चिममे अगर किसी न्यायाध
वहुत खतरनाक समझा
आश्चर्य हुआ। नैतिक
निस्ट देशोकी सरकार और
नही डालती, बल्कि उनके अ
भी गहरा असर डालती है।

राष्ट्रके नामपर म

दूसरा मौलिक भेद है
वलि और उसकी सव
मैं इस वातका दावा नही करत
जनतंत्र एकदम निर्दोष है, क्य
रूपमें पूँजीवाद भी नैतिक
और व्यक्तिको अर्थनीतिक
सामने अपनी इच्छाकी बलि
मजदूर-दलका विद्रोह और
इसीके खिलाफ है। पर मैं
के जनतन्त्रने शताब्दियोंके

नैतिकताकी नींवपर ही आधारित है। जब मैं नौजवान था, तो जन-साधारणमें उदारवादको नैतिक मान्यताओं के रूपमें ही स्वीकार किया जाता था। इसका विरोध केवल वे लोग ही करते थे, जो पुराणपंथी थे। यद्यपि पश्चिमके विभिन्न देशोंमें जनतंत्रके अलग-अलग रूप प्रचलित हैं, किन्तु उन सबमें है वह सभ्यताके प्रकृत विकास के रूपमें ही। यह हम पिछली कुछ दशाब्दियोंमें ही देख पाए हैं कि सभ्यताका यह आवरण कई-कई जगह कितना झीना है। पर यह तो सभी मानेंगे कि पश्चिममें जनतंत्र अभी विकासके रूपमें ही है। अधिकाधिक व्यापक मताधिकार, निःशुल्क शिक्षा, समाजके आवश्यक अंगके रूपमें ट्रेड-यूनियनिज्मकी स्वीकृति आदि संपूर्ण जनतंत्रकी प्राप्तिकी दिशामें उठाए गए कुछ महत्वपूर्ण कदम ही हैं।

पूंजीवादका नियंत्रण

इसके साथ ही पूंजीवादको भी कुछ तो उसकी प्रेरणासे और कुछ समाजवादी आलोचनाके कारण राजकीय कार्यों से अधिक सम्बद्ध और नियंत्रित किया जा रहा है। कई देशोंमें तो उसका रूप समाजके नियंत्रणके बहुत निकट आ पहुँचा है। लोग यह मानने लगे हैं कि न्यायकी माँग या अथवा गलतीका फैसला पंचायत और समझौते द्वारा हो सकता है। इस प्रवृत्तिका स्केंडेनेविया, ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया आदिमें बड़ी तेजीसे प्रसार हुआ है, जबकि अमरीकामें बड़ा धीमा, क्योंकि वहाँ अभी सीमान्तके भेदा का असर काफी गहरा है। जर्मनीमें भी इस प्रवृत्तिका विकास धीमा है, क्योंकि वहाँ जनतंत्र किसी प्रणालीके विकासका परिणाम न होकर प्रतिगामी शक्तियोंके विनाश के परिणामके रूपमें ही आया है। पर ध्यान देनेकी बात केवल यही है कि पाश्चात्य देशोंमें रहन-सहनके एक स्तरका विकास उदारवाद और समाजवादकी प्रेरणासे ही हो रहा है।

कट्टरताका पुलिस-राज्य

इसके विपरीत जब हम कम्युनिज्मको देखते हैं, तो पता चलता है कि वह जीवनके अनुभवोंका कोई स्वाभाविक विकास न होकर एक ऐसा कट्टर सिद्धान्त है, जिसे उसके माननेवाले जिस देशमें सत्ता प्राप्त करते हैं, उसमें बड़ी निर्ममताके साथ लागू करते हैं। यह सिद्धान्त किसी भी देशमें शान्ति करने अथवा स्थापित शासनको उलट फेंकनेका बड़ा कारगर हथियार है। जिन लोगोंके दैन-दिन जीवनमें कोई आशा और भविष्य नहीं, उनके लिए इसकी बहुत बड़ी अपील है। पर एक पुलिस-राज्यके सिवा इसमें और किसी तरहके जीवन-मानकी कोई गुंजाइश ही नहीं। इसकी राज्य अथवा शासनके धीरे-धीरे विलय होकर पूर्ण स्वाधीनताके विकासकी सारी मान्यताएँ मृग-मरीचिका ही साबित हुई हैं। जिन साधनोंसे कम्युनिस्ट शासन-सत्ता प्राप्त करते हैं, वे ही उनके शासनका रूप भी स्थिर करते हैं। यदि किसी भी देशमें कम्युनिज्म जन-तान्त्रिक परम्पराओंके स्वाभाविक विकासके रूपमें आया होता, तो शायद उसका विकास भिन्न ढंगसे हुआ होता। पर चूँकि पहले-पहल उसका रूसमें उदय हुआ, उसकी नई परम्परा यूरोपके सबसे पिछड़े हुए देशकी परम्पराके ढंगपर ही बनी। कम्युनिस्टोंने जारके रूसपर अधिकार किया था, अतः उनका शासन भी वहाँ जारसे कम आततायी और आतंकपूर्ण नहीं हुआ। अपनी विदेशी नीतिमें रूसके इन नए शासकोंने भी पुराने शासकोंकी साम्राज्य-वादी नीतिका ही पालन किया। और अपने देशमें तो कम्युनिस्टोंने रूसकी पुलिस राज्यकी परम्पराको और भी कठोर और कट्टर रूप दे दिया।

सह-स्थितिका समझौता

पर आज हम सबके सामने जो स्थिति है वह यह है कि या तो हम कोई ऐसा समझौता करें कि युद्धकी नौबत ही न आए, नहीं तो सभ्यताका पूर्ण विनाश अवश्यम्भावी है। मेरी रायमें ऊपरके विश्लेषणसे यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि आततायीपन और जनतान्त्रिक स्वतन्त्रता में किसी प्रकारका समझौता या सामंजस्य संभव नहीं। पर इतना ही सत्य यह भी है कि इन दोनोंमेंसे कोई भी एक पक्ष युद्धमें विजय प्राप्त करके भी दोनोंके बीचमें भेदा की खाईको पाट नहीं सकता। तब जो एकमात्र विकल्प बच रहता है, वह मतभेदोंके बावजूद सह-स्थितिके लिए एक समझौता ही है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि इस प्रकारकी स्थिति असंभव नहीं। यूरोपके इतिहास में काफी लम्बे समय तक जनतंत्र और स्वेच्छाचारी राजतंत्र साथ-साथ रहे हैं। और जर्मनीमें तो ३०वर्षीय युद्धकी विनाश-लीलाके बाद प्रोटेस्टण्ट और कैथोलिक मतोंके अनुया-यियोंने साथ-साथ रहनेका ही समझौता किया था। जनतन्त्र-वादी देशोंके लिए तो इस प्रकारकी स्थितिमें समझौता करना और भी अधिक स्वाभाविक है, क्योंकि उनमें तो विभिन्न मतोंके लोगोंकी सह-स्थितिको सहज भावसे स्वीकार किया गया है। हाँ, अधिनायकतन्त्री दलोंके लिए इस प्रकारके समझौतेके सिद्धान्तको स्वीकार करना उतना आसान नहीं। किन्तु उन्हें जर्मनीके उन कैथोलिकोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जिनको प्रोटेस्टेंटोंसे कट्टर शत्रुता रखनेके बावजूद युद्धकी भीषण विनाश-लीला देखकर सह-स्थितिका समझौता

करना पडा था। मेरा तो यह दृढ मत है कि एक-न एक दिन कम्युनिस्टोको भी पूजीवादी मिश्रित अर्थनीतिवाले और स्वतन्त्र जनतन्त्रवादी देशोके साथ शान्तिपूर्वक रहनेका समझौता करना पडेगा। यदि इस समय युद्धको टाला जा सके तो यह तय है कि विभिन्न मतवादो और शासन प्रणालियोवाले देशोमें बढनेवाला आवागमन उनके आपसी विरोधो और भेदोको अवश्य नरम करेगा और अतत रूसको भी अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकाक्षाओ तथा गरम या ठढे युद्ध द्वारा विश्व-कम्युनिज्मकी स्थापनाका विचार छोडना पडेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि शाति कालमें वह समय शीघ्र ही आयगा जब कि मनुष्य और उसकी भावनाओंको कैद करनेवाले सीखचे टूट गिरेंगे। यदि परस्पर विरोधी मतवादोमें कोई प्रतिद्वद्विता रही तो वह दूसरे ही स्तरपर होगी।

सामाजिक ढाँचे और विचारोकी भिन्नता

इस सबधमे हम जो कठिनाइयाँ पेश आती हे उनपर भी भलीभाति विचार कर लेना चाहिए। स्वतत्रता और जनतन्त्रका सार ही है कि सामाजिक ढाचे और मनुष्योंके विचारोकी विभिन्नता कायम रहे। यह चेष्टा करना कि सब जनतन्त्रवादी देश किसी एक देशके नियत्रण मे एक सघके रूपमें सगठित हो जायें जनतत्रकी उस मूल भित्तिको ही नष्ट कर देना है जिसकी कि हम रक्षा करना चाहते हे। एक हद तक यह बात ठीक है कि कठोर अधिनायकतत्र कई मामलोमें बडा प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है। इस बातमे कोई सन्देह ही नही कि भौतिक रूपसे रूसी कम्युनिस्टोने बहुत बडी सफलताएँ प्राप्त की हे और ऐसा जान पडता है कि यही चीनमे भी होने जा रहा है। अगली कुछ दशाब्दियोमे ही अपने पिछड

पनके बावजूद य महान देश अमरीकाके बराबर ही हो आगे भी बढ जायँ। उस होगा ? इसका एकमात्र उ अपने अस्तित्वकी रक्षा करना पुरानी सार्वभौम सत्ताकी राष्ट्रोसे अधिकाधिक नजदीक दिशामें आगे बढना होगा। नही कि सघबद्ध यूरोप भी ही एक बडी प्रतिद्वन्द्वी शक्ति आशय तो यह है कि विदेशी ज नजदीकका सहयोग-सबध हो अ एक विश्व-सहयोगकी स्थापना

लेकिन इसके लिए यह राष्ट्र सहयोगके आधारपर और दूरदर्शी राजनेताओका है को अधिकाधिक स्वतत्र शक्तिको जन्म दें। दूसरे राष्ट्रीय क्षेत्रमें है, उसीको हम मान और समूहकी आवश्य व्यक्तिकी स्वतन्त्रताओको इस दिशामे पहल भी हुई व्यापक उद्देश्यकी पूर्तिके लिए पर उत्तरी अतलातिक सघ सयुक्त सघटनके रूपमे हम को सकीर्ण और पुरानी भावनाओको जन्म लेते भी देख शुभ लक्षण ही हे।

बुझ न सकेगी जीवन-बाती !

: श्री महेश

मृत्यु जय को युद्ध मानव करता प्रशस्त अब,
और जिन्दगी स्वय मौतकी सेज सजाती।
स्वय सृजन ही महानाशका दीप जलाता,
निर्माणोका राग ध्वसके गीत सुनाता।
शस्त्रोंकी छायामें मानवता निर्भय है !
शाति युद्धसे युद्ध शातिसे मन भरमाता।
वसुधाके ही रक्त-बिंदुसे निर्मित बमसे,
वसुधाकी फलों भी छाती रौंदी जाती !
अतरालमें लहर-लहरमें ज्वार उठाता,
सुधा सिन्धुसे विषका सागर उमडा आता।

अणु दानव चलता
धरती तो कपती ही, न
यत्रोकी चक्कीमें पि
शस्त्रोकी झकारोमें म
बर्बरता ही म न ०
युद्ध सभ्यताका रक्षक,
पूजीका पुतला
मानव बढता, मनु
लेकिन प्राचीमें नव
देख

फारमोसाकी लड़ाई

'भग्नदूत'

इतिहासमें कई बार बड़े-बड़े संघर्ष हुए हैं, जिनकी समाप्तिके बाद यह आशा की गई है कि अब और रक्तपात और विनाशकी वैसी पुनरावृत्ति नहीं होगी। पर मनुष्य की संकीर्ण स्वार्थपरता, लोभ और बर्बरताने इन बड़े-बड़े संघर्षोंमें छूटी हुई छोटी-छोटी बातोंको लेकर फिर नए विनाश और रक्तपातकी सृष्टि की है। ऐसा करनेवाले दोनों पक्ष सत्य, न्याय, औचित्य और ईश्वर तकको अपनी तरफ बताते रहे हैं। इस बातका ठीक-ठीक निर्णय करना तो बड़ा कठिन है—क्योंकि दोनों पक्ष उस निर्णयको सही मान ही नहीं सकते—पर इतना तो तय है कि बार-बार होने-वाले इन युद्धोंसे मानवके चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास को बड़ी ठेस लगी है। इस लड़ाकू प्रवृत्तिने उसको असा-धारण ज्ञान, विज्ञान, सम्पत्ति, सत्ता आदिका स्वामी बनाकर अपने और दूसरोंके लिए बड़ा खतरनाक भी बना दिया है। इसीलिए आज एक स्वरसे यही पुकार सुनाई पड़ रही है कि युद्ध न हो, शान्ति रहे। पर ऐसा हो कैसे ?

कम्युनिस्ट बर्बरताका उदय

इस शताब्दीका सबसे बड़ा वरदान और अभिशाप कम्युनिज्म है। वरदान इस रूपमें कि इसने मानव द्वारा होनेवाले मानवके शोषणके विरुद्ध पहली बार सफल जेहाद की और सदियोंके शोषित-पीड़ितोंको मुक्तिका एक नया रास्ता दिखाया। पर जिन्होंने यह मुक्ति प्राप्त की, वे इसके वरदानोंका लाभ न उठा सके। इसका एक कारण तो यह है कि यह मुक्ति ऐसे साधनों एवं नेताओंके तत्वावधानमें प्राप्त की गई, जिनमें मानवीय महत्ता एवं सद्विवेककी कमी थी। उन्होंने शोषकों-पीड़कोंके खिलाफ जहर उगला तथा हिंसा और बल प्रयोगको नए धर्मके रूपमें प्रतिष्ठित किया। इसको सफलता मिली, पर वह इतनी विपाक्त थी कि लाखों व्यक्तियोंकी बलि पाकर भी अभी तक उसकी मरणान्तक पिपासा शान्त नहीं हुई है। जो लोग इस प्रकार सत्तारूढ़ हुए, उन्होंने देशमें अपना जालिमाना निरंकुश शासन जमाए रखनेके लिए हमेशा बाहरी खतरेसे जनताकी रक्षा करनेके लिए पहले अपने राजनीतिक विरोधियों एवं प्रतिद्वन्द्वियोंको खत्म किया और फिर जनताकी सब प्रकारकी स्वाधीनताओंको। इस प्रकार असहिष्णुता और निरंकुश स्वेच्छाचारिताके रूपमें जैसे पुरानी बर्बरताका पुनरोदय हुआ।

यह यदि किसी देश-विशेषकी सीमाओंमें ही रहता, तब भी गनीमत था। पर इसके प्रवर्तकोंने महसूस किया कि घृणा, कटुता और हिंसापर आधारित यह अमानुषिकता एक देशमें पनप नहीं सकती, अधिक दिन कायम रह नहीं सकती। अत इसका अन्तर्राष्ट्रीय विधान बना और तथाकथित विश्व-शान्तिके महत् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हर देशमें इसका पाँचवाँ दस्ता कायम किया गया। इसका पेटेण्ट तरीका हुआ मास्कोकी देख-रेखमें हर देशमें वर्ग-संघर्षको तीव्रकर, गृह-युद्धकी आग भड़काकर, क्रान्ति का पथ प्रशस्त करना। सत्य, न्याय, अहिंसा, नैतिकता आदिको बुर्जुआ भावुकता बताकर इस बर्बरताको एक नए आदर्शवाद अथवा मानवादके नामपर प्रवर्तित किया गया। पुराने युक्ति-प्रमाणोंका खोजकर उन्हें तोड़-मरोड़कर

शान्तिके लिए संघर्ष !

और अपने पक्षमें कराकर इसकी एक ऐतिहासिक परम्परा भी खड़ी करनेकी कोशिश की गई। इसने तथाकथित नए मूल्यों एवं मान्यताओंको जन्म दिया, जिनके भाष्य भी उतने ही नए और विचित्र हुए।

दूसरे महायुद्धके बाद

पहले तो 'शान्ति और 'जन-मुक्ति' की एक नई शक्ति समझ दुनियाके बहुसंख्यक लोगोंने इस नई बर्बरताका स्वागत किया। पर ज्यों-ज्यों इसका नग्न, अमानुषिक और साम्राज्यवादी रूप प्रकट होता गया, काफी लोग इससे

सजग हो गए। इस शताब्दीकी तीसरी और चौथी दशाब्दियोंमें इसे पहले म्रियमाण साम्राज्यवादसे और फिर नवोदित फैसिज्मसे टक्कर लेनी पड़ी। फैसिज्मके विनाश के बाद इसने अपने हाथ-पाँव फिर फैलाने शुरू किए। पूर्वी बर्लिन और आस्ट्रियासे लेकर रूसी सीमान्त तकका यूरोपका सारा हिस्सा इसकी माँदमें आ गया। चीनमें च्यांगके भ्रष्ट शासनका अन्तकर यह सत्तारूढ हुआ। इसके बाद तो इसे मानो एशियामें खुला मैदान ही मिल गया। आस्ट्रिया और जर्मनीका विभाजन तो हुआ ही, पर कोरिया की 'एकता' के लिए इसने आक्रमणात्मक कदम उठाया, जो स्वतन्त्र राष्ट्रोंके सघके प्रतिरोधके कारण सफल न हो सका। कोरियके युद्ध-विरामके बाद इसने हिन्दचीनमें सिर उठाया और उसके युद्ध-विरामके बाद अब चीनके पार्श्व द्वीपोंके आक्रमणके रूपमें एक बार फिर इसने विश्व-शान्तिको चुनौती दी है। इस बीच तिब्बतको यह उदरस्थ कर चुका है और थाईलैण्ड, बर्मा, नेपाल, हिन्देशिया आदि में भीतर-ही-भीतर फैल रहा है। जिस तरह पश्चिमी यूरोपकी राजनीतिक फूट और विघटनने इसको सहायता पहुँचाई, एशियामें यूरोपीय राष्ट्रोंके उपनिवेशों और अमरीकाकी अदूरदर्शी नीतिने इसके प्रभाव विस्तारमें बड़ा योग दिया है।

फारमोसाका सवाल

जिस तरह कम्युनिस्ट चीनने तिब्बतपर अपने पुराने कब्जेका हवाला देकर उसे हड़प लिया, उसी प्रकार वह फारमोसा तथा अन्य तटीय द्वीपोंपर भी कब्जा करनेकी फिक्रमें है। ताचेन-द्वीपसमूहके यीक्यागशान द्वीपपर उसने कब्जा कर भी लिया है। जहाँ तक इसका कानूनी पक्ष है, वह चीनके हकमें है। १८९५में जापानने इसे चीनसे ले लिया था, जो १९४५में काहिरो-कान्फ्रेंसके निर्णयकेके अनुसार फिर चीनको लौटा दिया गया। पर वह चीन च्यांगका राष्ट्रवादी चीन था, जिसका अब चीन-महादेशपर कब्जा नहीं है—केवल फारमोसापर है, जो उन्हें मित्र-राष्ट्रोंकी मध्यस्थतासे मिला था। चूँकि चीनपर अब कम्युनिस्टों का कब्जा है, जो कानूनन च्यांग शासनके उत्तराधिकारी हैं, अत कम्युनिस्ट चीन इनपर अपना अधिकार करना चाहता है और इसे वह अपना 'घरेलू' मामला तथा गृह-युद्ध का ही रूप मानता है। अपनी रक्षाके लिए चीन इन द्वीपों

इसे स्वतन्त्र जनतान्त्रिक राज्य
दृष्टिसे ब्रिटेनका खयाल है
दिया जाय। पर चीनको
उसका कहना है कि
होगा अमरीकी तथा
लिए खतरनाक है। और
जा सकता कि प्रशान्त-क्षेत्रमें
लिए अमरीकाके लिए भी
इसलिए आज फारमोसाको
उसका मूल आधार यही है
रक्षाके लिए आवश्यक
लेना चाहता है और अमरीका

समझौते

इस प्रतिद्वन्द्वितामें आज
कि यदि धैर्य, सयम, समझौते
लिया गया, तो यह स्थिति
विश्व-युद्धका रूप धारण
दुनियाके राजनेताओंको
यह आशका है कि यदि युद्ध
उद्जन बमोंसे मानवताकी
लैण्डके प्रधान मन्त्रीने सुरक्षा
सबसे पहले चीनके तटीय
फिर समझौतेकी बातचीत
का पक्ष भी परिषदके
अपना प्रतिनिधि
पर चीनने इस निमन्त्रणको
पर अपने जन्म-सिद्ध
लेनेके प्रयत्नको चीनके गृह
है। उसने अमरीका
जमाए रखने और उसकी
चीनके खिलाफ
घरेलू मामलोंमें हस्तक्षेप न
चेतावनी दी है। रूसने
कर 'अमरीकी आक्रमण'
अपील की है। इस
यह दोनोंके वक्तव्यों एव
इससे तनातनी और बढ़ी

या हिन्दचीनका गृह-युद्ध केवल 'घरेलू' मामले न होकर अन्तर्राष्ट्रीय मामले थे, उसी प्रकार फारमोसाका प्रश्न भी एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न बन गया है। अतः वह अकेला इसे मनमाने ढंगसे सुलझा ले, यह संभव नहीं। उसके और रूसके राजनेता आज जिस भाषामें बात करते हैं, वह ज़िद, झगड़े और स्वेच्छाचारिताकी बदज़बान है। जितना फारमोसापर अमरीकी कब्ज़ा होनेसे रूस-चीन अपनी सुरक्षाको खतरा समझते हैं, उनके उद्गारोंसे वही खतरा अमरीका भी समझे, तो आश्चर्यकी क्या बात है? आस्ट्रिया और जर्मनीकी एकताके सम्बन्धमें रूसका और कोरिया तथा फारमोसाके सम्बन्धमें चीनका जो रुख रहा है, उससे शान्तिपूर्ण सह-स्थितिकी भावनाका कोई आभास नहीं मिलता है। यदि यथार्थमें उसका शान्ति और सह-स्थितिमें कोई ठोस विश्वास होता, तो मनकी बात तो वही जाने, पर कम-से-कम वचन और कर्मसे वह इतना उद्धत और स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। हिंसा, घृणा और कटुताने कम्युनिस्टोंके मानसको इतना कलुषित बना दिया है कि वे 'जियो और जीने दो'-जैसी किसी बातमें विश्वास ही नहीं करते। जिन लोगोंको यह शिकायत है कि कम्युनिस्ट चीनको अबतक संयुक्त राष्ट्रसंघका सदस्य क्यों नहीं बनाया गया, वे भी शायद उसके इस रुखका समर्थन नहीं करेंगे। दुनियाके दूसरे देशोंकी बात जाने दीजिए, पर क्या स्वयं चीनको भी इस नीतिसे लाभ पहुँचेगा? क्या इससे वह अधिक सुरक्षित होगा? क्या इससे उसके मित्रों और उसके साथ सहानुभूति रखनेवाले देशोंकी संख्या बढ़ेगी? उसे यह भूल नहीं जाना चाहिए कि जिन ग़ैर-कम्युनिस्ट देशोंके खिलाफ वह ज़हर उगल रहा है, बल-प्रयोग द्वारा जिन देशोंकी आशंकाओंको ठोस आधार दे रहा है, कमसे कम अभी कई वर्षों तक—और शायद कई पीढ़ियों तक—उसे उनके साथ ही रहना है। इस स्थितिमें उसे बल-प्रयोग नहीं, समझौतेका रास्ता अख्तियार करना चाहिए। और यह समझौता एक-दूसरेके दृष्टि-कोणोंको सहानुभूति-सहिष्णुतासे देखने और तदनुकूल पटरी बैठानेसे ही संभव है—ऐंठ, अकड़, मनमानी या गाली-गलौजसे नहीं।

अमरीकाकी जीत या हार?

दूसरे पक्ष—जिसका सरदार अमरीका है—का रुख और रवैया भी कम खेदजनक नहीं है। वह भी मुँहसे तो शान्ति, सुरक्षा और जनतन्त्रकी स्वतन्त्रता-रक्षाकी बातें करता है, पर उसका आचरण इस तरहका रहा है कि इनके लिए खतरा अधिकाधिक बढ़ रहा है। अमरीकाने चीनके गृह-युद्धमें च्यांगकी भरपूर मदद की और उसकी पराजय के बाद कम्युनिस्ट चीनको मान्यता न देकर 'राष्ट्रवादी' चीनको ही स्वीकार किया। कम्युनिस्ट-विरोध एक बात है, पर यदि किसी देशपर कम्युनिस्टोंका शासन है, तो इस तथ्यकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? अमरीकामें ऐसे कम्युनिस्ट-विरोधियोंकी कमी नहीं, जो यह समझते हैं कि ट्रूमैन-शासनकी कमज़ोरी, ढिलाई और अदूरदर्शिताके कारण ही चीनमें च्यांग-पक्षकी हार हुई और च्यांगको भविष्यमें मदद देकर कभी फिर चीनमें शासनारूढ़ किया जा सकता है। इससे बढ़कर मूर्खता और अदूरदर्शिता की कल्पना नहीं की जा सकती। पहले तो ट्रूमैनकी जगह अगर आइज़ेनहावरका शासन भी होता और च्यांगको कहीं अधिक मदद दी गई होती, तब भी वह जीत नहीं सकता था। च्यांगकी फौजी और राजनीतिक मृत्युका कारण ट्रूमैन-शासन या अमरीकी मददकी कमी नहीं, उसकी अपनी भ्रष्टता, कुशासन और जनताके समर्थन-सहयोग तथा विश्वासको खो देना है। फारमोसा में उसे रखकर फिर किसी दिन चीनपर उसका शासन थोपनेका स्वप्न देखना न केवल अक्लका दिवालियापन ही है, बल्कि परले सिरेका पागलपन भी। राजनीतिक प्रचारवादियोंने अमरीकी जनताको यह विश्वास दिला दिया जान पड़ता है कि उसे संयुक्त राष्ट्रसंघकी सदस्यता से बाहर रखकर और हिन्दचीनके सम्बन्धमें जेनेवामें हुई कान्फ्रेंसमें शामिल न होकर अमरीकाने कम्युनिस्ट-रूसको

फारमोसा-समस्याका शान्तिपूर्ण हल

गत ९ फरवरीको लन्दनमें फारमोसाके सम्बन्धमें पत्र-प्रतिनिधियोंके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए नेहरूजीने कहा—"मेरा अपना खयाल तो यह है कि इस तरहके मामलोंमें बल-प्रयोगको हमेशा टालना चाहिए और शान्तिपूर्ण ढंगसे ही समझौता करनेका यत्न करना चाहिए, भले ही इसमें कुछ समय अधिक क्यों न लगे। विभिन्न देशों—जिनमें रूस भी शामिल है—को इस समस्याको सुलझानेमें दिलचस्पी है और आशा करनी चाहिए कि शान्तिपूर्ण समझौतेका कोई रास्ता निकल ही आयगा। इस सम्बन्धमें एक सम्मेलन बुलाने तथा कूटनीतिक ढंगसे बातचीत करनेके बारेमें कई सुझाव रखे गए हैं। समयानुसार इनकी अपनी उपयोगिता अवश्य है। स्वभावतः भारत और अन्यान्य देशोंके लोगोंने इस सम्बन्धमें बातचीत की और एक-दूसरेके विचार जाने। पर अभी तक कुछ भी निश्चित या औपचारिक रूपसे नहीं हुआ है।"

बड़ा धक्का पहुँचाया है। पर ठोस रूपसे न तो इसमें अमरीकाकी कोई जीत या लाभ ही है और न कम्युनिस्ट-पक्षको इससे कोई हानि ही हुई है। हाँ, उसकी इसी नीतिका परिणाम है कि कम्युनिस्ट चीनने न सिर्फ कोरिया के युद्ध-विरामकी वार्तामें ही शुरूसे ज्यादा कड़ा रुख अख्तियार किया, संयुक्त राष्ट्रसंघकी मध्यस्थताको अमान्य किया, ११ अमरीकी उड़ाकोंको खुफियागीरीके अभियोग में कैद कर लिया और ताचेन-द्वीपसमूह लेनेको आक्रमण किया, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी कम करनेकी दिशामें कोई ठोस कदम भी नहीं उठाया।

अमरीका यदि वास्तवमें युद्ध नहीं चाहता, शान्ति और समझौता चाहता है, तो उसे अपने अंधे कम्युनिस्ट-विरोधसे

कड़ी भाषा क्यों ?

ब्रिटिश राष्ट्रमंडलके प्रधान मंत्रियोंकी कान्फ्रेंसकी समाप्तिके कुछ ही घंटों बाद हुए एक सार्वजनिक स्वागत-समारोहमें नेहरूजीने कहा—"सुदूर-पूर्वके मामलेको लेकर दुनियाके सामने आज एक बड़ी कठिन समस्या उपस्थित है।... और कुछ तो मैं नहीं कह सकता, पर इतना तय है कि यदि आप शान्ति चाहते हैं, तो युद्ध-जैसे उपायोंकी खोजमें बहुत आगे नहीं बढ़ा जा सकता। अगर आप शान्ति चाहते हैं, तो आपके उपाय भी शान्तिपूर्ण होने चाहिएँ। एक बात, जो मुझे अक्सर परेशान करती है, यह है कि आजकल राजनता बड़ी कड़ी भाषा इस्तेमाल करते हैं। शायद कभी जोरदार भाषाका इस्तेमाल उचित हो, पर उससे कोई लाभ नहीं होता। हमें सबसे प्राथमिक शिक्षा तो यह ग्रहण करनी चाहिए कि कठिन स्थितिमें हमें अपना मत शान्तिपूर्वक और बिना कड़ी भाषाका उपयोग किए ही व्यक्त करना चाहिए।"

ऊपर उठकर जरा व्यावहारिक बुद्धि और दूरदर्शितासे काम लेना चाहिए। २० वर्ष बाद सत्तारूढ़ हुआ उसका प्रतिगामी रिपब्लिकन-दल थैलीकी राजनीति चलाकर अपने कायमी स्वार्थोंकी रक्षाके लिए इस अंधेपनको जनतंत्र और स्वतंत्र राष्ट्रोंकी रक्षाके अभियानके रूपमें विज्ञापित कर रहा है, जिसपर अधिकांश गैर-कम्युनिस्ट जनतंत्रवादियोंका कोई विश्वास नहीं। रूस और चीनकी तथा उनके भावी कार्य-क्रमको अमरीका चाहे जितने संदेह और खतरेकी निगाहसे क्यों न देखे, पर उनके अस्तित्व और शक्ति-संचयके ठोस

वह खुद सुरक्षित एवं शान्तिसे
मात्र रास्ता शान्ति और
हो और चाहे एशिया, अगर
नहीं होनेकी बातपर उसका
मानकर चलना होगा कि उसे
रहना है, जिसमें वे कम्यु
रीति-नीति और मूलभूत
तथा मान्यताओंके सर्वथा
की दुहाई देकर उसे टालते
शकारी छायाके नीचे
नहीं है। शान्तिके लिए
जिक, राजनीतिक और
की भी जरूरत है। इस
विरोधसे मुक्त हो तथा
और दूरदर्शितासे काम
कर सकता है।

ब्रिटेन और

ऊपर हमने कम्युनिस्ट
रुख एवं रवैयेकी जो चर्चा
कह सकते हैं कि दोनों ओरके
नहीं चाहती। दोनोंके
बात भी नहीं है—यद्यपि
पूर्ण रुख है, उसका
दोनों ही समझते भी हैं
ज्यादा आज दोनोंके सामने
उस प्रतिष्ठाका, जो
झुकने तथा उन्हें शस्त्र-बल
और चीन (तथा रूसमें
लड़ाईखोर घोषित करने त
सिद्ध करनेसे बढ़ती है।
पक्षोंके विश्वासपात्र और
वे दोनोंको किसी ऐसे
सकते हैं, जिसमें प्रत्यक्ष
छेड़नेके सिवा और किसी
दोनों ही पक्ष इस मिथ्या
'समझौते' का अर्थ प्रतिप
या उसे

तक मानेगा), पर अमरीकामे उसे सही मानीमें तटस्थ या स्वतंत्र न मानकर कम्युनिस्ट-पक्षीय ही कहा जा रहा है। इसके विपरीत कम्युनिस्ट चीनको मान्यता दे तथा फारमोसा पर उसके हकके कानूनी औचित्यको स्वीकार कर ब्रिटेन किसी भी अन्य पश्चिमी देशकी अपेक्षा चीनके अधिक निकट है और साथ ही भारतकी अपेक्षा अमरीकाको भी अधिक समझता है। ये दोनो राष्ट्र दोनो पक्षोको लडाईसे रोक सकते है, ऐसा तो निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता, पर यदि ये दोनो पक्षोको कहदे कि दोनोने समझौता न कर युद्ध छेडा, तो हम उसमें शामिल नही होगे, तो अमरीकाके रुखपर अवश्य कुछ असर पड सकता है (कम्युनिस्ट-पक्ष तो मनसे यह चाहता ही है कि स्वतंत्र जनतंत्रवादी राष्ट्रो में विघटन हो और जितने भी राष्ट्र तटस्थ रह सके, उत्तम है!)। पर ब्रिटेन हागकाग और मलाया आदिके अपने औपनिवेशिक स्वार्थके लिए जहाँ कम्युनिस्ट चीनको अप्रसन्न नही करना चाहेगा, वहाँ उसका यह भी प्रयत्न रहेगा कि प्रबल अमरीकी लोकमतके खिलाफ अमरीकासे जोर देकर वह कुछ भी नही कहे।

किन्तु कितनी भी क्षीण और कम आशा क्यो न हो, अगर आज दोनो पक्षोको युद्धसे विरत रखनेकी कोई संभावना ठोस रूप ग्रहण कर सकती है, तो वह इन दोनो राष्ट्रोके समझौतेके प्रयत्नके रूपमें ही है। यदि हम युद्धकी भयानक विनाश-लीला—मानवता और सभ्यता-संस्कृतिके सर्वनाश—से बचना चाहते है, तो आपसी मतभेदो और विरोधोको स्वीकार कर, उन्हे नजर-अंदाजकर, हमें शान्तिपूर्वक साथ रहनेका ही निश्चय करना होगा—मजबूरन नही, स्वेच्छासे और यह समझकर कि युद्धकी महँगी मूर्खता मोल लेनेके बावजूद कोई समस्या हल तो होगी नहीं, शायद उससे किसी और भावी विग्रहके बीज ही बोए जायँ।

धमकी और सौदेकी भावना

जिस आकस्मिकताके साथ कम्युनिस्ट चीनने गत १८ जनवरीको हवाई और नाविक आक्रमणकर यीक्यागशानपर कब्जा किया और ताचेन-द्वीपसमूहपर गोलाबारी की और जिस त्वरा एव दृढताके साथ प्रेसिडेंट आइजेनहावरने फारमोसा की रक्षाके लिए अमरीकी सैन्य-शक्तिके उपयोगके विशेषाधिकार प्राप्त किए, उससे तो एकबार यह आशका हुई कि शायद यह लडाई किसी बडे युद्धका रूप ही धारण न करले। पर विश्व और दोनो देशोंम हुई इसकी प्रबल प्रतिक्रियाने शायद वैसा नही होने दिया। चीन शायद यह देखना चाहता था कि देख फारमोसाकी रक्षा-सधिके बाद अमरीका उसपर होनेवाले आक्रमणके प्रतिरोधके लिए कहाँ तक आगे आता है और कहाँ तक उसे अपने देशकी जनता तथा गैर-कम्युनिस्ट देशोका सहयोग-समर्थन प्राप्त होता है। पर जब उसने देखा कि अमरीकी सेनट और काग्रेसम डमाक्रेटो का बहुमत होनेपर भी चीनके इस बल-प्रयोग और आक्रमणात्मक कदमके प्रतिरोधके लिए प्रेसिडेटको अविलम्ब और सर्वसम्मतिसे विशेषाधिकार मिल गए तथा फारमोसा पर चीनका कानूनी हक मानकर भी किसीने चीन द्वारा की गई जल्दबाजी, बल-प्रयोग और आक्रमणात्मक कदम का समर्थन नही किया, तो चीन भी रुक गया। जब उसने देखा कि च्यागकाई-शेकके इसरार करनेपर भी अमरीका पेस्काडोरस और फारमोसाको छोडकर ताचेन तथा अन्य द्वीपोकी रक्षाके लिए राजी नहीं हो रहा है और शान्तिपूर्वक ताचेन-द्वीपसमूह खालीकर बिना लडाईके ही उनके लिए छोड रहा है, तब तो उसका बल-प्रयोग भी रुक गया। पर यह कितने दिन रुका रहेगा, यह कहना आसान नही।

राष्ट्रीय चीन ताचेन-द्वीपसमूह खाली करनेके बाद पश्चम है, पर फारमोसाकी रक्षाके लिए वह उत्तरम मीशान और क्यूमोय तथा मत्सू द्वीपोकी रक्षाके लिए अमरीकापर बराबर जोर डाल रहा है। किन्तु अमरीकाने इस सम्बन्धम कोई स्पष्ट उत्तर नही दिया है। लगता है कि इनके लिए वह अपने अस्तित्वको खतरेम नही डालेगा। वह शायद ताचेन-समूहके द्वीप चीनको देकर क्यूमोय और मत्सूको भावी सौदे के आधारके रूपम रखना चाहता है, ताकि ताचेन-द्वीपके बाद इन्हे भी चीनको देकर फिलहाल उसे फारमोसासे अलग रखे। अमरीका और उसके साथी राष्ट्र शायद युद्ध टालनेके इस ढगको नापसन्द न करें, पर चीन कहाँतक और कबतक इस स्थितिको स्वीकार करेगा? परन्तु यह तय है कि इस समय विश्व-लोकमत इस बातका समर्थन नहीं करेगा कि चीन फारमोसा आदि लेनेके लिए लडाई छेड। खुद चीन को भी इस सम्बन्धम कारी सोचना-समझना पडेगा।
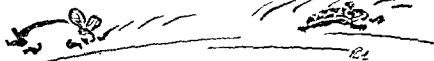
हुकूमतका अत्याचार

श्रीमती उषादेवी मित्रा

अँधेरी रात, वृहत् जेलके अन्दर पुरातन वृक्षोपर पेचकोंकी विचित्र भीतिप्रद बोली, छटपटाहट, पत्तोकी सरसराहट। इन सबको मिलाकर कैदियोंके मनमें कौन-सी भावना उदय हो रही थी, सो तो वे ही जाने। कोई गुनगुनाकर कुछ कहता, दूसरा उसे सुनता। दो-चार कैदी साथ बैठे अपने भाग्यकी मीमासा कर रहे थे। कुछ प्लान बना रहे थे। परन्तु प्रत्येककी दृष्टि चलती-फिरती हुई उस नवीन कारावासीपर पहुँच जाती। वह बलिष्ट युवक इन सबसे दूर सीकचेदार द्वारके निकट बैठा था। बाहरके दालानमें जलती हुई कदीलकी रोशनी उसके मुखकी कठिन रेखाओपर पडकर मुखकी कठिनता एव नेत्रोकी तीव्रताको इस प्रकार ज्योतित कर रही थी, जिससे देखने-वालोके मनमें भय और कौतुहल्का उपजना स्वाभाविक-सा हो रहा था। उस आभामें क्या था, कौन जाने। पर उसने कारावासियोको आकर्षित कर ही लिया। सब-के-सब युवक कैदीके निकट पहुँचे और उसे घेरकर बैठ गए।

"भैया, आज सबेरेसे तुम यहाँ हो, भोजन तक नही किया। आखिर बात क्या है?"

उसने कोई उत्तर न दिया।

"तुम तो शिक्षित मालूम पडते हो। फिर यहाँ कैसे आए?"

युवकने उदास होकर कहा—"मैं कुछ नही जानता, माफ करो भाई। फिर भी सुनना चाहोगे? शायद हुकूमतका अत्याचार हो।"

"हुकूमतका अत्याचार?"—उन्होने गुनगुनाया—"वह कैसा?"

युवक फिर चुप हो रहा। उसे मौन देखकर कैदियोने फिर पूछा—"याने तुमने कुछ भी अपराध नही किया?"

"अपराध?"—एक नारीपर अत्याचार होते देख उसे बचाना कदाचित् अपराध हो।"

"हम अपढ तुम्हारी गोल-मटोल बातोको नही समझे।"

"यदि न समझ पाए हो, तो उसे न समझना ही अच्छा है।"

"नही, नही, हम सुनना-समझना चाहते हैं। क्या आप ?"

ओर मातृमन्दिर है, वह मेरे उसमें भारतमाताकी छोटी-सी दीवालपर तीन बडे-बडे चित्र नही तीसरा तो अधूरा है, पाया! उस छोटे घरमे मेरी माँ, नवविवाहिता पत्नी वही छोटा घर, जिसे पिताजीने लिए दिया। अदृष्टका मैं रहता हूँ। आजका सत्य ढूँढनेके लिए दूसरे शहरमें जा स्टेशनपर उतरा और तब मैंने अत्याचार होते देखा। सुना चीत्कारको—दर्दनाक उससे मेरा खून खौलने लगा। होनेके नाते। उस अत्याचारी युवतीको उसके हाथसे बचाया बन्दूकके कुन्दे और लाठी मुझपर जब होश आया, तो अपनेको हाँ, मैं अपराधी हूँ खून करनेकी युवक चुप हो रहा। न-जाने उसे क्या दिख रहा था।

"आप कहाँके रहनेवाले है

उसके मुखसे जैसे जबरन एम० ए०की डिग्री बेकार ह किसी बन्द सन्दूकमे पडी होगी। मौन हो रहा कि प्रश्नकारीगण

(२)

भोरकी खेद-मन्दपूर्ण वेलामें नव-सन्देश लेकर समस्त स था, तब एक मनुष्य गगाके बैठा हुआ था। स्नान-यात्री ओर बढे चले जाते। कोई

पूछा—"क्यों परदेशी, तुम यहाँ क्यों बैठे हो? कहाँके रहनेवाले हो?"

"मैं?"—देवेन्द्र विस्मित हुआ! ऐसा प्रश्न तो कभी उसके मनमें ही नहीं उठा था। सच तो है, वह है भी कहाँ का रहनेवाला? बहुत सोचनेपर भी उसे कुछ स्मरण न आया और कल द्विप्रहर जब दीर्घ दिवसके कारावाससे छुट्टी मिली तथा वह पथपर आकर खड़ा हो गया, तब भी उसके मनने उससे ऐसा प्रश्न नहीं किया। जब चलता-चलता थक गया, तो पेडकी छायामें बैठ गया। बस, सही और सत्य तो यही है।

नारीने उस छोटे-से उत्तरको सुनकर अचम्भेसे उसे देखा। पूछा—"तुम शायद यहाँके रहनेवाले नहीं हो। तुम्हारा घर कहाँ है, बेटा?"

"मेरा घर?" और तब देवेन्द्र अपनी स्मरण-शक्ति पर ज़ोर देता हुआ सोचने लगा मेरा घर कहाँ है, कहाँ हो सकता है? और उसने धीरेसे उत्तर दिया—'मैं तो नहीं जानता, माँ!"

मुखसे 'माँ' शब्द निकलनेके बाद देवेन्द्रकी पूर्वस्मृति अस्पष्ट होकर कुछ जागी—'माँ माँ!' इसके बाद उसकी स्मरण शक्ति विभ्रान्त-सी हो रही।

दयार्द्र स्वरमें नारीने पूछा—"क्या तुम्हें कुछ भी याद नहीं? क्या तुम्हारा कोई भी नहीं है?"

"मेरा?" और वह स्तब्ध होकर सोचने लगा, सोचता ही रह गया। क्रमश भीड इकट्ठी हो गई। नाना प्रकारके प्रश्न होने लगे। और तब कुछ उक्तियाँ उसके कानो तक पहुँची—'अरे, कोई पागल है। उसकी आँखोको देखो, पहनाव और लम्बे-लम्बे बाल दाढी-मूँछो को देखो।'

'पागल तो है ही। चलो, चलो।'

पागल है? वह पागल है, पागल, पागल! उसके मनके प्राणम, शिरा-उपशिराओंमें ये उक्तियाँ झंकृत होने लगी, प्रतिक्रिया होने लगी। हाँ, वह पागल है और अवश्य पागल है।

'ले पगले, यह प्रसाद खा ले!'—देवेन्द्रके सामन नारियलका एक टुकडा और पेडा रखते हुए एकने कहा।

पागल? पगला? उसने कान लगाकर इन शब्दो को सुना और उसके कानोंके पर्देम वह स्वर भर उठा—'पागल है, पागल, पागल!' वह पागल है? 'है ही तो!' उसके मनके प्रश्नने तुरन्त उसे उत्तर दे दिया। सबने देखा पागल सहसा उठकर भाग चला वहाँसे।

(३)

देवेन्द्र? परन्तु वह कदाचित् जगलमे जगलियोके साथ रहते रहते अपना नाम तक भूल गया हो, तो विस्मय नहीं। नित्य प्रात उठना, साथियोके साथ जगल जाकर लकडी बटोरना, बेचना और कभी नमक रोटी तो कभी कुछ खाकर सतोषसे अपनी पत्तोकी छावनीदार कुटियामे सो जाता। न उससे कोई कभी घरका पता पूछता, न परिचय। यो इन सब बातोसे उसकी लुप्तप्राय स्मृति ने तो उसे बहुत पहले हीसे छुटकारा दे दिया था। अब ससारने भी उसे छुट्टी दे दी और जगलियोके बीच कभी भी उसके पागल होनेका प्रश्न नहीं उठा।

दिवा द्विप्रहरकी कडी धूपम उस दिन देवेन्द्र लकडी बटोरता हुआ अनमना-सा गहन वनम चलता चला गया। जगलके बीच टूट फूट मन्दिरने सहसा उसकी गति रुद्ध की, और चुम्बककी नाई आकर्षित होता हुआ वह मन्दिरके द्वार तक पहुँचा। काँटोसे उसके पैर क्षत-विक्षत हो रहे थ, धोती छिन्न भिन्न हो गई थी। मन्दिरम वह पहुँचा, तो एक ओरकी गिरी दीवालके भीतरसे सर्पकी फुत्कार आन लगी। परन्तु वह खडा-का-खडा ही रह गया—उस अर्द्धभग्न अन्नपूर्णा मूर्तिके सामन। और धीरे-धीरे नहीं, सहसा ही उसकी लुप्तप्राय स्मृति जागृत हो उठी—विस्मृतप्राय उस अतीत जीवनकी। वह बड-बडाया—'यह मन्दिर, ऐसा मन्दिर मेरा है, मातृमन्दिर। और मेरी चिरस्नेही माँ, जो अपने आँचलसे सदा ही मुझे ढाँके रहा करती थी और और गायत्री—किशोरी, लावण्य-मयी, नववधू गायत्री। तीव्रगतिसे वह मन्दिरके बाहर निकला और बढा उस अधूरे चित्रकी ओर, जिसे अभी उसे पूरा करना था।

उसके साथियोन विस्मयसे सुना कि परदेशी घर जा रहा है। सब उसे घेरकर खडे हो गए, वृद्ध कठहारा भी अपनी लडकीका हाथ पकडे उपस्थित हुआ। साथियान पूछा—"क्या तुम्हारा घर-बार भी है?"

'है, है, मुझे मत रोको। मुझे उस अधूरे चित्रका पूरा करना है।'

'वाह रे जानवाला, और मेरी लडकीका क्या होगा? अगले मास तो तुम्हारे साथ इसका ब्याह होना तय हुआ है।

'मेरे साथ? और किसने कहा? मेरा ब्याह और मैं ही न जानूँ?"

"तुमसे कहनेकी जरूरत? हम लोगोने सब ठीक कर लिया है।"

परन्तु अपनी धुनमें मस्त देवेन्द्र कह उठा—"कोई भी ताकत अब मुझे रोक नहीं सकती। अधूरे चित्रको पूरा करना है।" और तब जाते हुए देवेन्द्रपर प्रहारकी वर्षा-सी होने लगी।

एक अँधेरी रात, वर्षाका घनघोर निनाद, देवेन्द्र उस छोटी झोपडीके दालानमें पडा-पडा उठ बैठा। वृद्ध और उसकी लडकीकी आहट उसने ली। फिर प्रहारकी चोटको भूलकर उठा और उस घोर वर्षामें भाग निकला। मस्तककी पट्टियासे खून बह चला और वह भागता चला गया आगे-आगे। वह नहीं जानता कि इस निरुद्देश्य यात्राका अन्त कहाँ है! जानता केवल इतना था कि उसे अपने अधूरे चित्रको पूरा करना है और बस!

(४)

एक श्यामल सध्याम मातृमन्दिरके नवनिर्मित श्वेत पत्थरका वृहत दालान, सगमरमरका आँगन और प्रकाण्ड लौहद्वार स्वप्नपुरीकी याद दिलाते और मन्दिरके बाईं ओर प्रासादतुल्य अट्टालिका ऐश्वर्यका आडम्बर दर्शाती। एक भग्नस्वास्थ्य प्रौढ व्यक्ति मन्दिरके लौहद्वारपर आकर खडा हो गया और विस्मयसे देखता हुआ किसी पथयात्री से पूछा—"भाई, यहाँ जो छोटा-सा घर और मातृमन्दिर था, वे कहाँ गए?"

"यही तो है मातृमन्दिर! लाटरीके असख्य रुपयोसे बहूरानीने इस प्रकाण्ड अट्टालिका और मातृमन्दिरका सुधार किया है।"

"लाटरी?"

"हाँ, हाँ, देवेन्द्रनाथ यहाँसे जाते वक्त कई टिकट खरीद गए थे।" इसके बाद दो पैसे देवेन्द्रकी तरफ फेंककर बोला—"ले भिखारी" और वह चल पडा।

भिखारी? हाँ, आज वह भिखारीके अतिरिक्त है भी क्या? यह सोचता हुआ वह वहीं बैठा रह गया।

कुछ देर बाद मन्दिरमें शख, घण्टा, घडियाल सब साथ ही बज उठे। द्रुतगतिसे देवेन्द्र उठा और मन्दिरमें जाकर खडा हो गया। पुरोहितसे लेकर पके बालोवाली माता नर्मदा तक चिल्ला उठी—"भिखारी, यहाँ नहीं, बाहर जाओ।"

देखा उसने माताकी ओर, धूप-दीप देती हुई उस गत-यौवनाकी ओर, सामनेकी दीवालपर टँगे हुए उस अधूरे

हास्यप्रद, कुत्सित हो रहा था।
की मातृमूर्तिको।

"निकलो भिखारी,
पसारकर देखा उसे धक्का देने

"माँ, क्या आज तुम अ
रही हो?"

देवेन्द्र? मौदा हृदय
निरीक्षणकर देखा, फिर
चोर है, मेरा देवेन्द्र नहीं है

"और तुम भी नही

नारीने आँखें फाडकर
बाहर जाओ!"

पास-पडोसके नर-नारी
स्वरसे सबने कहा—"यह

धीरतासे उसने सब-कुछ
पहुँचा—"माता, क्या तू भी
देगी?"

परम आश्चर्यसे सबने
हुए स्थूपिकृत पुष्पसे
आ गिरा। और देखा
के चरण-तलमे लुढकते हुए।

"नहीं-नहीं, इसे बाहर
पडा रहने दो।"—नर्मदाने
कैसा कर उठा।

(५)

भोर-वेलामें किसी तीव्र
मन्दिरमें पहुँची। द्वार
के सामने यह किस पहेली
उठी हुई है! वह दे
कैसे पूरा हुआ? हाँ, उस
भाँति जानती-पहचानती है।
जो बडे-बडे सुडौल अक्षर f
परिचित है। उसने पडा
अत्याचार।"

देवीके पदतले मृत्यु-
देखती ही रही।

केनियामें हिटलरशाही

पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी

आगामी अप्रैलमें इंडोनेशिया (भारतीय द्वीपसमूह) की राजधानी जकर्त्तामें एशियाई-अफ्रीकी देशोंका जो सम्मेलन होगा, उनमें केनिया-जैसे पददलित देशकी गुहार कौन मचाएगा, यह हम नहीं जानते। परन्तु इसकी सूचना-मात्रसे उपनिवेशवादी राज्यों और उनके पिट्ठुओंके पेटमें घोड़े दौड़ने लगे हैं, क्योंकि एक बार एशिया और अफ्रीकाके देश अपने हिताहितका विचार करने लग जायँ और अपने मामलोंमें यूरोपीय और अमरीकी घुसड़-पचौ न होने दें, तो केनिया, मालय, मोरक्को, ट्यूनिसिया, अल्जीरिया आदि परतन्त्र देशोंका उद्धार अनिवार्य है। अंगरेजोंने केनियाके अफरीकियों—विशेषकर कीक्यूयू-जातिके लोगोंपर जैसा अत्याचार कर रखा है, उससे यहूदियोंपर हिटलरके अत्याचारोंकी ही तुलना हो सकती है। हिटलरकी तरह अँगरेज औपनिवेशिक कीक्यूयू जातिका अस्तित्व मिटानेपर तुले हुए हैं। पर 'राखन-हार भयो भुज चार तो का उजरे भुज दुइके उखारे ?' वाली बात है।

केनिया कैसे गुलाम बना ?

केनिया पूर्वी अफ्रीकामें ब्रिटिश उपनिवेश है, जहाँ १८३६ में पहले-पहल अँगरेज पहुँचे थे। इसके पहले वहाँ अफ्रीकी लोग स्वच्छन्दतासे रहते थे। वे पशु पालते और खेती करके बहुत अन्न उपजाते थे। लार्ड लुगार्डने १८९० में लिखा था कि "कीक्यूयू देशमें सर्वत्र खेती होती है। हमने २० हजार पौंड अन्न और फलियाँ ऐसे समय सस्ते दामोंपर खरीदी थीं, जब कुछ ही समय पहले टिड्डी-दलका आक्रमण हो चुका था। यहाँके लोगोंकी सिंचाई की व्यवस्था भी सुन्दर है।" केनियामें १८८६से अँगरेजोंके दल लगातार पहुँचने लगे थे। इसमें पहले ईस्ट-अफ्रीका कम्पनीने और बादको ब्रिटिश सरकारने सहायता पहुँचाई। अफ्रीकियोंने इसे रोकनेके यत्न किए, पर ब्रिटिश फौजी ताकतके सामने वे कुछ कर न सके। अँगरेजोंने पहले नाकेबन्दी कर दी और बादको मार-धाड़ शुरू कर दी। इसके बाद तो गुलामोंका व्यापार रोकने के बहाने वे केनियाके मालिक बन गए।

केनियाका क्षेत्रफल २२४९६० वर्गमील है और यहाँ की भूमि ४२०९,३०० मनुष्योंका भरण-पोषण करती है। यह देश ब्रिटिश सरकारका उपनिवेश और सरक्षित राज्य दोनों है। अँगरेजोंका प्रतिरोध करनेके अपराधमें केनिया की ब्रिटिश सरकारने अफ्रीकी मूल निवासियोंकी जमीनें जब्त करलीं और उनका वितरण ब्रिटिश औपनिवेशिकों और कम्पनियोंमें कर दिया। अब अफ्रीकी अपनी जमीन के मालिक न रहकर रैयत रह गए। इसपर भी उनका रैयत-रूपसे भी सदाके लिए अधिकार नहीं रहा और ये जमीनें सस्ती दरोंपर यूरोपियनोंको दी जाने लगीं। मई, १९०३ और दिसम्बर, १९०४ के बीचमें ईस्ट अफ्रीकन सिंडिकेट, अपलैंड्स ईस्ट अफ्रीकन सिंडिकेट और ईस्टर्न फारेस्ट कन्सैशनको बहुत-सी जमीनें दे दी गईं। उप-निवेश-मन्त्री श्री लिटिल्टनने १६ जुलाई, १९५२ को कामन्स सभामें बताया था कि दी हुई जमीनके सातवें भागमें ही खेती होती थी। पर इस वक्तव्यमें सचाई कम ही जान पड़ती है, क्योंकि श्री आर० म्यूरने 'मार्डन कामनवेल्थ' में बताया है कि ब्रिटिश सरकारका हार्दिक समर्थन औपनिवेशिकोंको प्राप्त है और उन्हें जो जमीनें दी गई हैं, उसकी पुष्टि साम्राज्यवादी राज्योंके साथ सन्धियोंमें की गई है।

शर्मनाक और मूर्खतापूर्ण !

गत १५ फरवरीको तथाकथित माऊ-माऊ आतंक-वादियोंकी रिहाईके लिए सरकार द्वारा घोषित शर्तोंका विरोध करनेके लिए केनियाके गोरोंने 'पार्लमेंटपर मूक चढ़ाई' की। इसमें लगभग ७० गोरोंने भाग लिया। धारा-सभाके गोरे सदस्योंने उनका हर्षध्वनिसे स्वागत किया। चढ़ाई करनेवालोंने केनियाके २२ हजार गोरेवासियोंके हस्ताक्षरोंकी एक फरियाद धारा-सभाके सदस्य कप्तान लिवलिन ब्रिग्जको दी, जो उन्होंने उसी समय धारा-सभामें पेश कर दी। इसमें केनिया-सरकार द्वारा माऊ-माऊ आतंकवादियोंके सामने आत्म-समर्पणके लिए रखी गई शर्तों को शर्मनाक और मूर्खतापूर्ण बतलाया गया है।

इस प्रकार जब गोरोंके पास जमीनें हो गईं, तब इन्हें जोतने-बोनेके लिए मजदूरोंकी जरूरत पड़ी। इसका उपाय यह सोचा गया कि अफ्रीकियोंपर टैक्स लगाओ। ये जानते ही नहीं थे कि टैक्स कैसा होता है। इनमें टैक्स देनेकी समाई भी नहीं थी। इससे इनकी आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी। ये गोरोंके खेतोंपर काम करनेको बाध्य

हुए। इस प्रकार उन्हें सस्ते मजदूर मिलने लगे। १९२२ में जबरदस्ती काम लेनेका आर्डिनेंस बना दिया गया। एक बार लोकमान्य तिलकने कहा था कि अँगरेज अत्याचार करनेके लिए भी कानून बना रहे हैं, सो इस आर्डिनेन्ससे प्रकट हो रहा है। ईस्ट-अफ्रीकन प्रोटेक्टोरेट कमीशनके सर चार्ल्स इलियटने १९०५ मे अपनी पुस्तक 'ईस्ट-अफ्रीकन प्रोटेक्टोरेट' में लिखा है—"पूर्वी अफ्रीका शायद कुछ ही समय बाद गोरोंका देश हो जायगा, जहाँ देशी जातिके प्रश्नोंमें किसीका कोई अनुराग न रहेगा।'

श्वेत भूमिकी रक्षाके लिए लड़ेंगे !

गत २९ जनवरीको नान्यूकीमें ३०० गोरोंने सभाकर केनिया और ब्रिटेनकी सरकारोंको चेतावनी दी है कि "यदि आवश्यकता हुई, तो वे श्वेत-भूमिकी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिए लड़ेंगे। जिन शर्तोंपर १२,२३३ वर्गमील भूमि गोरोंको दी गई है, उनमें अगर किसी भी तरहका परिवर्तन किया गया, तो हम उसका शक्ति-भर विरोध करेंगे।" धारा-सभामें गोरोंके प्रतिनिधि कप्तान लिवलिन ब्रिग्जने कामन-सभामें कन्जर्वेटिव-सदस्य सी० जे० एम० एल्पोर्ट द्वारा कही गई इस बातकी निन्दाकी कि "श्वेत-भूमि एक राजनीतिक और अर्थनीतिक असंगति है।" ऐसा कहकर उन्होंने इस उपनिवेशमें बसे गोरोंको उनके भविष्यके सम्बन्धमें सशंक बना दिया है। पहले भी इस प्रकारकी नीतिसे सामूहिक रूपसे गोरोंने अपने स्थान छोड दिए, जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें कम कष्ट-कठिनाइयोंका सामना नहीं करना पड़ा। ऐसा केनियामें फिर हो सकता है।" जंगलात विभागके मंत्री लारेंस मेकोनोनी वेलवुडने कहा कि "यद्यपि सरकारने माऊ-माऊ आतंकवादियोंके आत्म-समर्पणकी जो शर्तें रखी है, उन्हें मैं भी स्वीकार कर चुका हूँ, तथापि मेरे खयालसे अधिक अच्छा यही रहता कि अभी वैसा न कर और भी कड़ाईसे उनका दमन किया जाता।"

विद्रोह और संगठन

मसल मशहूर है कि 'अति संघर्ष करे जो कोई। अनल प्रगट चन्दनसे होई।' जो जाति जितनी ही दबाई जाती है, वह उतनी ही प्रबलतासे उठती है। जार के जमानमें रूसी प्रजा यदि बहुत अधिक न दबाई जाती, तो कम्युनिज्मका जन्म न होता। अफ्रीकी लोगोंके खेत

कोई संगठन न था। इसके
मजदूरीमें कटौती की
इन्होंने खुल्लमखुल्ला वि॰
दमन कर दिया गया।
कटौती कैसे रुक सकती थी ?
बैठे। उन्होंने ट्रेड-यूनियन
१९३४ में पूर्वी अफ्रीकाके
१९४७ मे मोमबासा
इस संघके तत्वावधानमें
सफल हुई, क्योंकि इसकी
इसके नेता चेगे
नी हुआ। इस दमन-
पर भी पड़ा, जिसका अपना
फल यह हुआ कि ये भी अम
में अफ्रीकियों और
ट्रेड यूनियन कांग्रेस नामसे

इन श्रमिक सघोंको
समझना चाहिए, क्योंकि
नैतिक और अर्थराजन
कीक्यूयू जाति ही केनियामें
१९२२ में कीक्यूयू सट्रल
म एक बड़ी संस्था बनी,
प्रतिनिधि थे। इसका
में इस केनिया अफ्रीकी
के लिए अधिक सुभीते
करना, जातीय भेद भाव
देने, टाउन लंडस
को जमीनोंका अधिकार
ने अन्तम अपनी मांगें
सघसे अपील की। इस
ससारके सामने अपनी
गोरोंकी

केनियाके
यह सीधा वार था।
इसलिए अपने इलेक्टर्स
स्मरणपत्रक सरकारको
का खात्मा करनेकी माँग

सघटनोको समाप्त करनेकी माँग की। इसके प्रतिवाद-स्वरूप केनिया लेजिस्लेटिव कौंसिलके अफ्रीकी सदस्योंने अपने वक्तव्यमें कहा कि लेजिस्लेटिव कौंसिलके यूरोपियन मेम्बरोंकी यह माँग स्वार्थसे प्रेरित है। जिसे वे केनियामें अपराध और अशान्ति कहते हैं, उसका अभिप्राय उन अफ्रीकियोंके उन सामाजिक और आर्थिक प्रश्नोंसे लोगोंका ध्यान हटाकर अपराधो और उलट-पुलट करनेवाली वातो का अतिशयोक्त वर्णन करना है, केनिया अफ्रीकन यूनियन केनियाके अफ्रीकियोंकी एकमात्र सस्था है, उसे नष्ट करने का प्रयत्न करना है।

स्वराज्य नहीं, प्रतिनिधित्व

केनियाके अफ्रीकी सघकी माँग अभी स्वराज्यके लिए नहीं है, अधिक प्रतिनिधित्वके लिए ही है। पर सघकी बढती हुई लोकप्रियतासे डरकर गोरोंके दबावमें आकर २ अक्तूबर, १९५२ को केनिया लेजिस्लेटिव कौंसिलने यूरोपियनोका तात्कालिक आवश्यकतावाला प्रस्ताव मान लिया। जोमो केनयाटाके मुकद्दमे और सजाके बाद भी गोरोंकी छाती ठडी नही हुई और उन्होंने तथोक्त 'माउ-माउ'-आतकको दबानेकी तात्कालिक आवश्यकताकी घोषणा कर दी। गोरोका कहना है कि माउ-माउ-आन्दोलन सरकारको उलटनेके लिए है। सरकार विद्रोहका स्वप्न देख रही है और माउ-माउके दमनके नाम पर नादिरशाही या हिटलरशाही चला रही है।

कालोंके प्रति राक्षसी कर्म

ब्रिटिश उपनिवेश मत्री श्री लिटिलटनने बताया है कि १९५३ तक केनियामें १५३३३९ आदमी गिरफ्तार हो चुके हैं। कप्तान ग्रिफिथने अदालतमें स्वीकार किया है कि मैंने हर एक अफ्रीकीका वध करनेवालोको ५ शिलिंग दिए हैं, जब कि दूसरे अफसरोने आदमी-पीछे १० शिलिंग दिए हैं। लदनवालोको बताया गया कि अफसरोको हुक्म है कि काले आदमीको देखते ही गोली मार दो। आर० म्यूरका कहना है कि ब्रिटिश औपनिवेशिकोने केनियामे बहुतसे सुधार किए हैं, अनेक क्रूर और बर्बर प्रथाएँ बन्द कराई हैं, स्कूल और गिर्जे खोले हैं और जीवन-यापनके अच्छे रास्ते बताए हैं। परन्तु जो वर्तमान कार्रवाइयाँ सरकार कर रही है, उनसे ब्रिटिश सरकारकी सबसे बडी प्रजातात्रिक सस्था होनेकी प्रतिष्ठा नहीं बढती।

केनियामे भारतवासी अँगरेजोंके पहले पहुँचे थे। वहाँकी उन्नतिका बहुत-कुछ श्रेय भारतवासियोंको है। पर वे अफ्रीकियोंके दोहन या उनपर अत्याचार करनेमें यूरोपियनोका हाथ नहीं बँटाते, इसलिए इनके कोप-भाजन हैं। एक भारतीय बैरिस्टरको केनियाकी सरकारने निकाल दिया है। यह स्थिति शोचनीय है। हम देखते हैं कि यह महत्ता अँगरेजोंको ले डूबेगी। इनके साम्राज्य से भारत, लका और बर्मा तो निकल ही गए हैं, शेष उपनिवेश भी रहते दिखाई नहीं देते। केनियामें जैसे क्रूर कार्य गोरे कर रहे हैं, वैसे यदि भारतमें करते, तो सारे एशियामें आग लग जाती। यदि अँगरेजोको अपना भविष्य बिगाडना नहीं है, तो राक्षसी कर्मोंका परित्याग करना ही उनके लिए उत्तम मार्ग है।

रूसी लोक-साहित्य

श्री वी० राजेन्द्र ऋषि, एम० ए०

ससारमें न केवल सर्वप्रथम पुस्तक प्रकाशित होनेसे पहले, बल्कि लिखाईके लक्षणोंके प्रादुर्भावसे भी कई शताब्दियों पहले जगलोमें बसनेवाले लोग गीत, कथाएँ तथा नृत्य जानते थे। मौखिक शब्द और प्राचीन कथाएँ—जो पीढी-दर-पीढी पिताके मुखसे पुत्र तक पहुँचती गईं—एक आरम्भ था, जिससे सहस्रों वर्ष पश्चात् देवता-विषयक कल्पित कथाओ, किस्सो, कहानियों और तत्पश्चात् विज्ञान और साहित्यका जन्म हुआ। शताब्दियाँ बीतनेके साथ-साथ ये मौखिक शब्द और लोकगीतोंकी तालें आदिम-युग के जगलोंसे निकलकर समस्त पृथिवीपर बिखर गईं और भिन्न-भिन्न स्थानोपर भिन्न-भिन्न सस्कृतियोंका निर्माण करके मौखिक तथा सगीत-नृत्यमय लोक-रचनाओंका आधार बन गईं।

लोक-साहित्यका विकास

रूसी लोक-साहित्य पुस्तक-रूपमें आजसे केवल लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व लिखा जाने लगा और अधिकाश गीत, कथाएँ, कहावतें और बुझारतें जो आज उपलब्ध हैं, केवल उन्नीसवीं शताब्दीमें ही लिपिबद्ध हुईं। ग्यारहवीं शताब्दी से आरम्भ हुए रूसके प्राचीन इतिहासमें रूसी लोक-साहित्य के कुछ नमूने मिलते हैं। उदाहरणार्थ ग्यारहवीं शताब्दी

के इतिहासने ही हमें कहावतों, कहानियों, गाथाओं और अन्य लोक-रचनाओंके उद्धरण मिलते हैं। ग्यारहवीं शताब्दीसे लेकर चौदहवीं शताब्दी तक उस समयके लोक-साहित्यके विषयमें केवल पृथक्-पृथक् तथा अधूरे प्रमाण मिलते हैं। परन्तु ये सब रचनाएँ लिपिबद्ध हुए बिना ही लुप्त हो गईं।

इसी दौरानमें रूसमें लिखाई तथा शिक्षाका आविष्कार, विकास और प्रसार हुआ। इच्छा होनेपर उस समयके अधिकांश रूसी लोक-साहित्यको लिपिबद्ध किया जा सकता था। परन्तु उस समय रूसमें लिखाई प्रधानत चर्चके ही हाथमें थी। चर्च लोक-गीतों, खेलों और रस्म-रिवाजोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता था और उनकी निन्दा करता था। ये गीत और खेल, जो मुख्यत किसानों द्वारा रचे गए थे, चर्चवालोंको पैशाची और पापजनक दिखाई देते थे। इसलिए लोक-रचनाएँ लिपिबद्ध न हो सकीं।

एक कारण और भी था कि क्यों किसीने भी रूसी लोक-साहित्यके स्मारकोंको लिपिबद्ध नहीं किया। स्पष्ट रूपसे उन शताब्दियोंमें प्राचीन रूसकी सब जातियोंका जीवन एक अत्यन्त व्यावहारिक वस्तुकी भाँति लोक-साहित्यसे पूर्णत ओत-प्रोत था। न तो गाँवोंमें और न ही शहरोंमें (जो उस समय बड़े-बड़े गाँवोंके ही समान थे) गीतों, कहानियों और लोक-तमाशोंके अतिरिक्त मनोविनोदकी कोई सामग्री थी। किसीके मस्तिष्कमें यह नहीं आया कि वे लोक-साहित्यकी ओर उचित ध्यान देते और उन लोक-गीतों और कहानियोंको लिपिबद्ध करना आरम्भ कर देते, जिनको वे जीवित रूपमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे-से-आगे देते जा रहे थे और जो अलिखित होते हुए भी सबको याद थे।

लोक-साहित्यका संग्रह और प्रकाशन

सत्रहवीं शताब्दीके पश्चात् लोक-साहित्य विषयक बहुतसे लेख सुरक्षित हो गए, भले ही वे प्राय फुटकर रूपमें तथा अपूर्ण थे। तत्कालीन शिक्षित लोगोंके पास कहावतोंके हस्तलिखित संग्रह थे। अधिकांश बिलीनें और गीत भी लिपिबद्ध हो चुके थे। कानून-सबंधी प्राचीन रक्षा-गृहोंमें जादू-टोनोंके बारेमें पत्रक सुरक्षित हो गए। किसी 'जादुई' चिकित्सा करनेवाली बुढ़ियाको पकड़ लिया जाता और उनको तरह-तरहके दुख दिए जाते। उसका अपराध सिद्ध करनेके लिए प्रमाण-रूपमें अभियोग-पत्रके साथ जादू-

कुछ बदल गई। सरकारने रहवीं शताब्दीके रईसोंके मल्लाके दरबारमें भी ... को देखा जा सकता था। कलाकार मल्का ... द्वितीयके दरबारमें शाही ... किया जाता था। शिक्षित प्रति गम्भीर और लगभग चुकी थी। अठारहवीं ... साहित्य-संग्रह तथा उसको लग गए। लोक-गीत पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित

अन्वेषण और

उन्नीसवीं शताब्दीके साहित्य-संग्रह तथा ... होने लगा। शताब्दीके बुझारतों और अन्य लोक ... शित हुए। संग्रह तथा साहित्यके विज्ञानका भी निक संस्थाओंने लोक ... पर महत्वपूर्ण अन्वेषण कार्य

आजकल रूसमें लोक ... दिया जाता है। लोक-का कार्य सुव्यवस्थित ढंगसे वैज्ञानिक प्रतिवर्ष अपनी तथा व्यक्तिगत रूपसे मास्को आदि बड़े-बड़े शहरोंमें अजायबघर होनेके अलावा रूपसे किया जाता है। स्थानीय अजायबघर भी हैं

रूसी लोक-साहित्यका है। रूसी जनता इनको कहती है। ये पद्यबद्ध जन्म रूसी शूरवीरोंकी के रूपमें हुआ। दो भागोंमें विभाजित किए

'नोवोगोरोदका बिलीना' कहते हैं। बिलीनोंमें अपने देशकी स्वतत्रता और ख्यातिके लिए लडनेवालोका वर्णन बडे आकर्षक ढगसे किया जाता है। इनमें उन कायर रईसो और रूसी कन्याज़ो (राजाओ) का मज़ाक उडाया जाता है, जो उस समय टाँगें तानकर आरामसे सोते थे, जब कि जनता शत्रुओंसे जान तोडकर लड रही थी।

रूसी बिलीनोंका केन्द्रीय पात्र ईल्या म्यूरोम्येत्स है। यह शक्तिशाली बोगातीर टाँगोकी बीमारीके कारण दीवार की अँगीठीके पास तेंतीस वर्ष बैठा रहा और अलौकिक शक्ति द्वारा स्वस्थ होकर उठ खडा हुआ तथा अभूतपूर्व कारनामे करनेके लिए निकल पडा। गम्भीर और निर्भीक ईल्या चेरने गाँवके समीप तातारियोको हराता है, मूर्तिपूजक विधर्मियोको कीवसे भगा देता है, रूसी धरतीकी शान्ति-प्रिय जनताको रास्ता चलनेवाले डाकुओंसे नजात दिलवाता है और अन्य वीरताके कारनामे करता है।

एक आधुनिक बिलीना देखिए। अपनी मृत्युके पूर्व लेनिन स्तालिनको अपने पास बुलाते हैं और उनको जनताके नेतृत्वका भार सौंपते हैं। यह बिलीना इस प्रकार है :

प्रिज़ीवाल इलिच क सेब्ये दा द्रुगा स्तालीना,
गोवोरील येमू गोलोसोम श्रौत झेलानिया पौलनीवो'
—नेदौल्गी वेक तो मोये, औन कोन्चायत्सा,
स्मेरत्-तो स्कौरो मोया दा प्रीब्लीझायत्सा।
बेरी, बेरी दा ती प्रोमी कुल्यूची,
ज़ोलोती कुल्यूची श्रौत फस्येई ज़ेमेल्यूश्की,
उश कौमू, कौमू दा प्रीनीमाच देला,
वज्याच-तो व रूकी ते ज़ोलोती कुल्यूची,
काक ने तेब्ये, दा द्रुगू मीलौमू,
द्रुगू मीलोमू, दा फ्स्ये वेद् वेरनौमू,
उश्रावलमायी देला, तेब्ये स्चास्तलीवो झिच,
तेब्ये स्वास्तलीवोझिच, दा दौल्गू वेकू बिच .

अर्थात् इलिचने मित्र स्तालिनको अपने पास बुलाया और अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करते हुए कहा—मेरे अन्य जीवनका अब अन्त हो रहा है। मेरी मृत्यु समीप आ रही है। लो इन कुंजियोको सँभालो—सुनहरी कुंजियाँ सारी धरतीकी। और यह कार्य किसको सौंपूं? इन सुनहरी कुंजियोको सँभालनेका कार्य क्यो न तुझे, प्रिय मित्रको, हाँ प्रिय मित्रको, सबके विश्वासपात्रको, सौंपूं। कार्य-भार सँभाल, तुम्हारा जीवन सौभाग्यशाली हो, तुम्हारा जीवन सौभाग्यशाली हो—शताब्दियो लम्बा।

चास्तुश्की

चास्तुश्की लोक-गीतोका एक सर्वप्रिय प्रकार है। यह अत्यन्त सक्षिप्त प्राय चार पक्तियोका होता है। इसे लोग बाजेके साथ चलते हुए या नाचते हुए गाते हैं। चास्तुश्कीमें अभिव्यक्त की जानेवाली भावनाएँ किसी-न-किसी कलात्मक चित्रसे मेल खाती हैं, जिनको प्राय प्रकृति से लिया जाता है। प्रफुल्लित गुलाब या अन्य फूल, ताजी और हरी घास, भाग्यशाली अनुभूतियोका प्रतीक है। मुरझाया या पाँवसे रौंदा हुआ फूल या घास, गँदला पानी, ठण्ड, बर्फ और बादलोका सम्बन्ध शोकजनक भावनाओका प्रतीक है। एक नमूना देखिए।

क्रान्ति-पूर्व रूसम एक लडकीका विवाह उसकी इच्छाके विरुद्ध किसी रईससे कर दिया जाता है। लडकी रोकर एक चास्तुश्कीमे कहती है

त्यातेन्का इ मामेन्का स्वास्तया उवावल्याइत्ये।
कौवो ल्यूब्लयू इ सोझालेयू स त्यॅम् ने पोवेन्चाइत्ये।

अर्थात् चाची और अम्मा, सौभाग्य नष्ट कर रही हो? जिसका प्यार करती हूँ और चाहती हूँ, उसके साथ विवाह क्या नही करती?

एक और चास्तुश्कीम आजकलकी एक युवती अपने मँगतरको सेनाम भर्ती होनेके लिए विदा करती है। वह कहती है

मीली मोये, खोरोषी मोय मी रास्ताल्यॅम्सा स तोबोये।
फ्स्ये नाउकी इज़ूचाई, कौमान्दीरौम प्रीयज़्ज़ाई।

अर्थात् मेरे प्रियतम, मेरे अच्छे, हम जुदा होते हैं। सब विद्याएँ पढना, कमाण्डर बनकर लौटना।

बच्चोकी लोरियाँ और चिढानेके गीत

रूसी लोक-साहित्यके अन्य प्रकारोके साथ-साथ बच्चो के विषयमें लोक-साहित्यकी ओर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। इस विषयमें बहुत-से सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। एक नमूना देखिए

बायू-बाई, बायू-बाई क नाम प्रीयेखाल मामाई,
प्रोसील-वासेन्कू श्रौतदाई।
अ मी वास्यू ने दादीम प्रीगोदीत्सा नाम सामीम।

अर्थात् बायु-बाई, बायु-बाई, हमारे यहाँ आई मामाई। माँग रही है वास्या (बच्चेका नाम) को, हम वास्या नही देंगे, हमें स्वय चाहिए।

बच्चेकी चिढ

कोल्या नामके बच्चेको एक तोन्या नामकी लडकी चिढाती है.

कोल्या, कोल्या निकोलाई कौनुल शापकू ना साराई
शापका वेरतीत्सा, कोल्या सेरदित्सा ।

अर्थात् कोल्या, कोल्या निकोलाई, टोपी फेंक दी छप्परपर । टोपी चक्कर खाती है, कोल्या गुस्से होता है ।

कोल्या तीन्काको उत्तरमें चिढाती है
तीन्का स्वीन्का, स पेची उपाला,
गोरशोक स्लोमाला ।

अर्थात् तीन्का सूअरी, अँगीठीपरसे गिर पडी, तोड डाला वर्तन ।

एक बुझारत देखिए,
कूलो, कूलो, आ
जेलेनो, जेलेनो, दा ने
येस्च खवोस्त—दा
अर्थात् लोहे घोडा

एक और बुझारत देखिए,
कोन् स्तालनोये खव
अर्थात् गोल-गोल
पूँछ है, चूहा नही ! (

लंका-दर्शन

श्रीमती सावित्री निगम, एम० पी०

लका जाते समय पासपोर्ट-सम्बन्धी जाँच-पडतालके लिए हमें कुछ देर मडपम्-कैम्प नामक स्थानपर रुकना पडा । गर्मी और उमसके बाद समुद्र-तट्की शीतल हवा और हहर-हहर करते हुए नील समुद्रका सगीत हम वडा सुहावना प्रतीत हुआ । किन्तु उसके किनारेकी चमकीली और भूरी रेतीपर ज्यो ही हमने टहलनेका प्रयत्न किया, हमें लगा कि पैरोको डगमगानेवाली और कपडोको उडानवाली वह तेज हवा एक वडी वाधा है । पर वहाँसे जैसे ही हमारी ट्रेन धनुपकोटीकी ओर वढी, तेज हवा धीमी होती गई और थोडी देर वाद ही हमारी ट्रेन केवडेके हरे-भरे जगलके वीच दौडने लगी । लगभग एक-डेढ घटे सुगन्धित वायुका आनन्द लेते हुए हम फिर समुद्र-तटके निकट आ गए और गोधूलिके समय हमारी ट्रेन विल्कुल जहाजके निकट आकर रुक गई। उस समय वहाँका दृश्य वडा मनोरम था । पूर्वीय आकाशकी अनुपम आभा नील समुद्रपर प्रतिविम्वित हो रही थी । ऐसा प्रतीत होता था मानो अग्निके गोले की भाँति रक्ताभ सूर्यदेव अपने तापसे व्याकुल होकर स्नान करनेके लिए धीरे-धीरे नील जलमें उतर रहे हो ।

प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पन्नता

जहाजने ज्यो ही सीटी वजाई रग विरगे कपडे पहने हुए स्त्रियाँ, वच्चे और लुगी-कमीज पहने हुए मुस्लिम और तमिल यात्री जहाजपर चढकर अपनी सीटें ढूँढने और सामान सँभालने लगे । लगभग डेढ घटे वाद जहाज लका

होते ही हमने देखा कि सुथरे गाँवोंके बीचसे द वृक्षोंकी सघनता तथा हुआ । कटहल, नारियल पेडोकी दोनो ओर लम्बी होती थी । वर्षाके को देखकर कभी-कभी बरसातके बाद बगालके वर्षाके बाद धुले नीले वना-बनाकर उड रही थी । अधिकतर पक्के ही ओढनेके ढगसे भी सम्पन्नता तथा भीतरी व्यवस्था हम न्यूयार्ककी किसी ट्रेनमें चमकदार रवरका फर्श, आकर्षक थी । वाथरूम और एक कम्पार्टमेंटसे लिए सुन्दर गेलरीवाली यह प्रतीत हुई ।

भारतके

लगभग ७॥ वजे हम गए । भारतीय हाई अफसर स्वागत

चाहती थी कि हम लोग लकाकी सैरके लिए ही बिल्कुल स्वतत्र रूपसे आए है पर उनकी तर्क और न्यायसगत माग के सामने झुकना पडा। उन्होंने कहा—'भारत-जैसे महान राष्ट्रकी गौरवशालिनी ससदकी आप सदस्या है आप इससे तो इन्कार नही करती। फिर उस हैसियतसे आपसे जो प्रश्न हम करें उनके उत्तर देनेमें आपको कोई आपत्ति तो न होनी चाहिए।' इसके बाद उन्होंने भारत की विदेशी नीति निकटवर्ती राष्ट्रोंमें हमारे सम्बन्ध पच वर्षीय योजनाकी प्रगति आदिके बारेमें कई मिलते-जुलते से प्रश्न किए। एक विदेशी पत्र प्रतिनिधिने यह भी पूछा कि लका-सरकारने जो भारतीयोके प्रति नीति अपनाई है उसका भारतवासियोपर क्या असर पडा है। मैंने कहा—'वे खिन्न दुखी और चिन्तित है और समस्याके न्यायपूर्ण हलकी प्रतीक्षा कर रहे है।

कोलोम्बोका बदर और शहर

स्टेशनसे सीधे हम लोग इडिया-हाउस पहुचे। स्नान और नाश्तेसे निबटकर हम लोग शहरकी ओर निकल पडे। कोलम्बोका कृत्रिम बन्दरगाह ससारके श्रेष्ठ बन्दर गाहोमें से एक है। प्रकृतिने तो इसका सौन्दर्य और भी अधिक बढा दिया है। पानीके ऊपर उठी हुई कगारोपर खजूर और नारियलके पेडोकी कतार ऐसी लगती है मानो किसी चतुर मालीने उन्हें चुन चुनकर लगाया हो। खुले आकाशके नीले चँदोवेके नीचे चमकती हुई बालू और इधर उधर बिछी हुई हरियाली कवियोको कौन कहे साधारण व्यक्तियोको भी भावुकतासे भर देती है। सात समद्रो से आनेवाले छोटे-बडे जगी और यात्री तथा माल लादने वाले तरह-तरहके जहाज यहा रुकते है। विशाल और चमकीली लहरोपर नाचती हुई छोटी नाव कभी-कभी लहरो में ऐसा छिप जाती है कि अनजान व्यक्ति उनके डूबनेकी आशकासे घबरा उठता है।

बन्दरगाहसे लौटकर हम फोर्ट-एरियाकी तरफ बढे। सरकारी टूरिस्ट-ब्यूरो और शानदार ओरिएटल होटल के सामनेसे निकलते हुए हम उस स्थानपर पहुँचे जहा सैकडो आने जानेवालोकी भीड और उनके रूप रग तथा पहनाव उढावकी विभिन्नता देख हम बम्बईके फोर्ट-एरिया की याद आ गई। क्या इमारतोकी ऊँचाई और क्या दुकानो की सजावट सभीमें एक विचित्रता भरी समानता नजर आ रही थी। प्रिंस स्ट्रीटकी दुकानोंसे बडी सुघरतासे सजे हुए हीरे-जवाहरात पन्ने लाल और अन्य कीमती नग तथा सच्चे मोतीके जेवर इतने मनमोहक प्रतीत होते है कि अक्सर लोग अपनी जेबकी शक्तिका अनुमान लगाए बिना ही चीज खरीद लेते है। लकाकी कारागारोके नमने सिहली तथा तमिल दुकानदारोका छोटी दुकानोमें ही अच्छे मिलते है। कछुएकी खोपडी नारियल तथा हाथी-दात और बेत तथा मिट्टीकी कलापूर्ण छोटी-छोटी सस्ती चीजे बडी सुन्दर होती है।

सेंट पीटर्स चर्चकी एतिहासिक इमारत जो डच-साम्राज्य में कौंसिल चेम्बर था एक कृत्रिम उद्यानके सामने स्थित है। इससे थोडा ही आगे चलकर हम लोग क्वीन्स हाउस जो क्वीन्स स्ट्रीटपर है पहुच गए। गवर्नर जनरलका यह निवासगृह दुमजिला बना हुआ है और छायादार घने वृक्षोके बागमें घिरा है। प्रचलित शिष्टाचारके अनुसार हम थोडी देर भवनमें रुके और मेजबानकी अनुपस्थितिमें उनके ए० डी० सी० ने हमारा स्वागत-सत्कार किया। फिर हम गालफेसके सुन्दर चौरस तथा हरे भरे लानकी तरफ बढे। समुद्रकी धवल लहरोके मधुर सगीतसे गूजते हुए इस मैदानमें मानो प्रकृति मुस्करा उठी है। समुद्रकी उज्वल लहरें किनारोके बार बार चरण चूमती है और चलनेवालोपर नन्ही फुहारोकी थोडी-थोडी देरपर वर्षा होती है। मार्गेस होटलकी ऊची लाल ईंटोकी बनी हुई शानदार इमारतकी अरुणिम आभामें नीचेका हरा भरा मैदान बडा सुन्दर लगता है। कहते है इस मैदानसे लकाका सूर्यास्त सबसे सुन्दर और मनोरम दिखाई देता है।

दर्शनीय स्थान और व्यक्ति

लौटकर हम लोग फिर क्वीन्स रोडपर स्थित सिनेट भवन पहुचे। बाहरसे देखनेमें यह बिल्कुल साधारण सी इमारत दिखाई देता है। लाइब्रेरी भवन देखनेके बाद रबडके मोटे कारपेटपर चलते हुए हम उस कमरेमें पहुँचे जहा सिनेटर्स बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। यह देखकर हमें बडी प्रसन्नता हुई कि वहापर वे सभी सदस्य मौजूद थे जो कुछ दिन पहले दिल्लीमें हमारे अतिथि रह चुके थे। उनका स्नेह प्रदर्शन तथा सत्कार देख हमें बहुत आनद हुआ। महिला सिनेटरने हमें बताया कि सीमित सख्या के बावजूद वे बडी सतर्कता और तत्परतासे ससदकी कार्य वाहीमें भाग लेती है। सभी सदस्योने भारतकी आश्चर्य जनक तरक्कीपर प्रसन्नता प्रकट की। इसके पश्चात हम लोग हाउस आफ रिप्रजेन्टेटिव्ज देखने गए। सिनेट भवनकी अपेक्षा यह इमारत काफी आधुनिक ढगका और शानदार है। स्पीकर तथा अन्य सदस्योके साथ चायपान और बातचीतके पश्चात हम लोग फिर मिनमन गार्डन्स (इडिया-हाउस) लौट आए। मिनमन गार्डन्सका सुन्दर चौरस सब्ज दोना ओर लाल फूलोंसे लदे हुए बृक्षोंकी

कनार तथा गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ और उनके सामने सुरुचिपूर्ण ढगसे ला फूलोकी क्यारियाँ और मखमली मैदान देखकर मन पूछा कि आखिर इसका यह नाम क्या पड़ा ? एक मार्गदर्शकने बताया कि किसी जमानेमे वहा सचमुच सिनमनकी खेती होती था ।

भोजनके उपरान्त हम लोग विक्टोरिया पार्क देखने गए । इस सुदर पार्ककी प्राकृतिक शोभा देखने लायक है । जगह जगह वलमे बने हुए कुजोमे चहकने-फुदकने वाली सुदर चिडिया और तितलियाँ बडी ही आकर्षक प्रतीत होती है । कोलम्बोका टाउनहाल भी काफी विशाल सुन्दर और आधुनिक ढगसे बना हुआ है । इसे देखनेके बाद हम लोगोने आर्ट गैलरीमे एक गुजराती नवयुवक कलाकार द्वारा आयोजित चित्र प्रदर्शनी देखी । आर्ट गैलरीके पास ही म्यूजियमका एक बडी शानदार इटालियन ढगपर बनी हुई इमारत है । इसमे अन्य कलापूर्ण वस्तुओ के साथ ही प्राचीन कैंडी नरेशोकी तलवार भी रखी है ।

एक छोटे द्वीपके ऊपर स्थित यहाकी लाइब्रेरीमे सब प्रकारका सिंहली भाषाका प्राचीन एव नवीन साहित्य इकट्ठा किया गया है । रेड एवेन्यू और हैवलोक रोड होते हुए हम लोग प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर अशोका रमया देखने गए । यहाकी गौतम बुद्धकी मूर्तिया बहुत ही विशाल चमत्कार और कलापूर्ण है । इस मठमे अशोकके पुत्र महेन्द्रकी भी मूर्ति है । कोलम्बोमे पाटाहके बाजारकी तुलना हम दिल्लीके चान्दनी चौकसे अथवा आगरेके किनारी बाजारसे कर सकते है । इटलानी कलवाता हुई किलाना नदीपर बना हुआ विक्टोरिया-पुल शायद लकाका सबसे बडा पुल है । कोलम्बोसे आठ मील दूरीपर स्थित माउण्ट लैविनियाका सुन्दर पर्वत-शृखला लकाके बडे ही रमणीक स्थानोमे से है । रामकृष्ण मिशन लकामे भी भारतकी तरह ही अपने सेवा कार्यके लिए प्रसिद्ध है ।

शामको हम इण्डियन मर्कण्टाइल एसोसियेशन तथा सीलोन डेमोक्रेटिक काग्रेसके मित्रोकी चाय-पार्टियोमे जाना पडा । बारी-बारीसे हम उनका स्नेहपूर्ण आतिथ्य स्वीकार करके लौट आए क्योकि उसके बाद ही हम लकाके प्रधान मत्री द्वारा दिए गए प्रीतिभोजमे भी जाना था । भोज बहुत ही शानदार और तडक भडकवाला था । टम्पल ट्रीजकी सजावट और रोशनीकी छटा अनुपम था । प्रधान

मिला । सिहली स्त्रियाँ
कुल्लूके नाककी-सी ठोढा,
समय हँसनेको तैयार श्वेत
और आकर्षक प्रतीत होता

दूसरे दिन प्रात काल
धानी अनुराधापुरके लिए
वक्षोकी कतारके बीचमे
वक्षोपर लिपटी हुई काली
कोकोके सुदर फलोसे लदी
होती थी । सडकके
और उनके चारो ओर
नारियलके बगीचोको
मानो हम लोग कोचीनके
जा रहे है । प्राकृतिक
गावोके लोगोके रहन
कि लगभग हर १०वें
अथवा बाग है । गावोके
सुदर और समतल है ।
सामान बडे सुदर ढगसे

अनुराधापुरमे बौद्ध
मठोके अवशेष हम बौद्ध
दिलाते है । पोलोनरुवा
जाना था । रग बिरग
सराहना करते हुए हम
तालाबके पास पहुँच गए ।
मूर्तिया एक ही चट्टानकी
लेटी हुई मूर्ति सबसे
रगीन रेशमी साडिया और
स्त्रियाँ और लुगी-कमीज
सुड विशाल बौद्ध वि
पूजने आते है । विशाल
स्नानागारके घुमावदार
अनुमान लगाते है कि यह
के ऐतिहासिक विद्यालयकी

पोलोनरुवाके
एलिजबेथ ठहरी थी हम

कवितामयी अँगरेजीमें उसने उन वार्तालापोंको दोहराया, जो रानी एलिज़बेथ, मिसेज़ पंडित तथा पंडित नेहरूसे हुए थे। चलते समय बड़े अधिकार एवं स्नेहपूर्ण ढंगसे उसने हमारी सारी तैयारीकी ओर आँखोंमें आँसू भरकर कहा—"आप भारतीय लोगोंके प्रति मेरे हृदयमें बड़ा प्रेम और श्रद्धा है। मैं एक दिन भारतवर्ष जरूर जाऊँगा और पंडितजीके दर्शन करूँगा।"

गुनाहोंकी यादगार

लगभग ४० मील लगातार घने जंगलोंके बीच चलनेके बाद हमें एक बहुत बड़ी कमलके फूलोंसे भरी हुई झील दिखाई दी। पर झीलपर न रुककर जब हम लोग एक अजीब भोंडी-सी चट्टानकी तरफ बढ़े, तो मैंने मार्गदर्शकसे पूछा कि हम लोग इधर क्यों जा रहे हैं? उसने कहा—"प्रेम और त्यागकी यादगारें तो आपने बहुत देखी होंगी, पर गुनाहोंकी ऐसी अनोखी यादगार दुनियामें शायद ही कहीं होगी, जैसी आप देखने जा रही हैं।" और एक ठंडी साँस लेकर वह फिर बोला—"पापियोंको उनके पापका असली दंड उसी समय मिलता है, जब उनकी आत्मा उन्हें खुद धिक्कारती है। और जब पापोंकी भयानक छाया उनके सिरपर सवार होकर उन्हें बेचैन करती है। फिर भयभीत होकर वे इधर-उधर छिपते फिरते हैं। पर उन्हें कहीं चैन नहीं मिलता। तभी तो पितृघाती राजा कश्यप अपने पिता धातुसेनका वध करनेके पश्चात् इसी घने खतरनाक एवं भयानक जंगलमें छिपनेके लिए आया था। उसने यह शेरकी शक्लकी जगह, जिसका नाम सिगरिया है, बनवाई थी। चलिए, देखिए।" चूने और ईंटके बने हुए पंजोंकी बगलसे पूँछके आकारकी सीढ़ियोंपर चढ़ते-चढ़ते हम काफी ऊपर पहुँच गए। जहाँपर पहाड़ी चट्टानका निचला हिस्सा बहुत ही चिकना और चमकदार है और उसपर रंग-बिरंगे बड़े सुन्दर अनेक चित्र बिल्कुल अजन्ता-एलोराकी गुफाओंके समान ही कलाकारितापूर्ण ढंगसे बने हैं। पहाड़ीके ऊपर ही तालाब, पानी जमा करनेका स्थान, अदालत तथा दरबारके भवनों के अवशेष आश्चर्य-चकित कर देते हैं। सबसे ऊँची मंजिलपर रहनेके भवन हैं।

सिगरियासे १० मील चलनेके पश्चात् हम दम्बुलाके दर्शनार्थ-मन्दिरके निकट पहुँच गए। श्वेत कमलके फूल तथा नारियलकी छोटी दुकानोंमें भक्तोंकी भीड़ लगी थी। वहीं कोई यजमान बौद्ध भिक्षुओंको भोज दे रहे थे। ढालू पर्वतपर काफी कठिन चढ़ाई तथा ऊपरसे कड़ी धूपके बावजूद सैकड़ों सिंहली स्त्री, पुरुष और बच्चे काफी ऊँचाईपर स्थित लगभग १५० बौद्ध प्रतिमाओंके दर्शनार्थ बड़ी श्रद्धापूर्वक जा रहे थे।

कैंडीकी प्राकृतिक छटा

मन्दिर देखनेके पश्चात् हम लोग कैन्डीकी उस सुन्दर नगरीकी ओर चले, जिसकी प्राकृतिक छटा, अद्भुत वनस्पतियों और मनोहर झीलोंके कारण लोग उसे 'एशियाका जिनेवा', 'लंकाका कश्मीर' तथा 'पृथ्वीकी इन्द्रपुरी' कहते हैं। हरे-भरे विस्तृत कुदरती लानों और कल-कल करती सुन्दर छोटी नदियोंमें नहाते हुए हाथियोंके समूहोंको देखकर मन बड़ा प्रफुल्लित हुआ। स्वच्छ आकाश और चमकते हुए सूर्यकी पूरी उपेक्षा करती हुई नरम लहलहाती पत्तियाँ चमक और आकर्षणमें फूलोंसे होड़ लगा रही थीं। घासपर खिले हुए फूल देखकर कभी-कभी यह भ्रम हो जाता था कि शायद वे किसी अनाड़ी मालीसे तोड़ते समय बिखर गए होंगे।

उस दिन हम लोग कैन्डीके राजाके सुपुत्रके भोजनपर आमन्त्रित थे। उनके यहाँके शाही रिवाजके अनुसार हमें तीस प्रकारके पकवान खानेमें दिए गए। लंकामें पहली बार हमें सिंहली सभ्यता और रीति-रिवाजोंका मधुर परिचय यहाँ हुआ। सबसे अधिक प्रसन्नता और आश्चर्य हम इस बातपर हुआ कि सिंहली तरकारियाँ बनानेका ढंग और स्वाद उत्तर-भारतसे बिल्कुल मिलता-जुलता है। इतनी समानता तो दक्षिण और उत्तर-भारतमें भी नहीं है। खानदानी इज़्ज़तपर मर मिटनेकी आदत, अपने पहनाव और रहन-सहनके ढंगपर गर्व करनेकी बान और महमानोंके स्वागतार्थ दिखाई जानेवाली तत्परता सभीमें भारतीयताकी अद्भुत छाप थी। इसकी चर्चा जब मैंने अपने मेज़बानसे की, तो वे हँसकर कहने लगे—"आपका कहना ठीक है। हम लोग उत्तर-भारतीयोंके ही वंशज हैं।" उन्होंने कैन्डीके नर्तकोंके नृत्यका भी आयोजन किया था। उनका नृत्य भी कत्थक-नृत्यसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता था। नर्तकोंका अद्भुत अभ्यास, भावपूर्ण मुद्राएँ और आकर्षक वस्त्र सचमुच अद्वितीय थे।

निःशुल्क शिक्षा-व्यवस्था

कैन्डीके चीफसे विदा लेकर हम लोग वहाँका विश्वविद्यालय देखने गए। विश्वविद्यालयके भवन आधुनिक कारीगरीके अत्यन्त शालीन और भव्य नमूने हैं। छःसात फर्लांगके दायरेमें बनी हुई सुन्दर इमारतें भीतरसे भी उतनी ही सुरुचिपूर्ण थीं। सभी आधुनिक फर्नीचर तथा रबरके कार्पेटोंसे कलात्मक ढंगसे सजाई गई थीं। हर विद्यार्थीको एक ड्राइंग-रूम, एक बेड-रूम तथा बाथरूम

मिला हुआ है। रसोईघरोमें कही घी या तेलका निशान नज़र नहीं आता। सारा भोजन बिना हाथसे छुए वैज्ञानिक यन्त्रोकी सहायतासे बनता है। आलू छीलने तथा रोटी बेलनेकी भी मशीनें हैं। विद्यार्थियोंके रहन-सहनका स्तर इतना ऊँचा देखकर मन पूछा कि आखिर इतनी शानदार व्यवस्थाके लिए प्रतिमास कितना खर्च करना पडता है? तब एक प्रोफेसरने बड़े गर्वसे कहा— मुझे यह बतानेमें बड़ा हर्ष हो रहा है कि लकामें प्राइमरीसे लगाकर यूनीवर्सिटी तक सारी शिक्षा नि शुल्क दी जाती है। सारे खर्चेकी जिम्मेदारी सरकारपर ही है।"

पदनियाँ गार्डेन

यूनीवर्सिटी देखनेके बाद हम लोग पदनियाँ गार्डेन देखने गए। करीब डेढ मीलके दायरेमें फैला हुआ यह बाग ससारके श्रेष्ठ उद्यानोमें एक कहा जा सकता है। इसकी निगरानी इतने अच्छे ढगसे की जाती है कि पूरा बाग सुरुचिपूर्ण ढगकी अदभुत फूलोंसे भरी हुई अनुपम आकृतियो की सुदर क्यारियोसे सजा हुआ है। बागमे सारे गरम मसाले जायफल, जावत्री लौंग, इलायची, तेजपात, दाल चीनी तथा कुनैनके वृक्षोकी पत्तियाँ और फल देखनको मिले। पैदल चलते चलते थक जानेके कारण हमने फिर मोटरमें ही चलना शुरू कर दिया। बागके अन्दर ही बडी सुहावनी झीलें हैं। हमारे मार्गदर्शकने बताया कि यहाँ दुनियाके सभी गरम देशोके वृक्ष मँगाकर लगाए जाते हैं।

हमें उसी दिन कोलम्बो लौटना था, इसलिए वहाँका प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर 'टैम्पल आफ द टुथ' देखकर, जिसमे बड़े कीमती और भारी सोनेके अनेक डिब्बोको खोलनेके बाद पुजारीने हमें कुछ हड्डीके टुकड़े और एक पत्नेकी तेलकी काफी बडी शीशी दिखाई। यह सामान करोडो की कीमतका है। मन्दिरके नीचेसे एक बडी सुरगसे होकर भिक्षु लोग भीतर-ही भीतर पीछेकी ओर स्थित तालाबमे स्नानके लिए जाते थे। यहाँ प्राचीन बौद्ध ग्रथोका बडा अमूल्य सग्रह भी है।

सामाजिक समानता

लकामें अधिकतर लोग मांसाहारी हैं। बौद्ध धर्म को माननेवाले भी स्वतत्रताके साथ सभी कुछ ग्रहण करते हैं। अदालतोका काम तथा राज्यका कार्य सब अँगरेजी

में होता है। सिंहली
समझी जा सकती है,
अँगरेजी और फ्रेंच शब्द
प्रयोगमे लाए जाते हैं।
प्रभावित होनेके कारण
समान उतने
पुरुषोको समान रूपसे
की स्वतन्त्रता है।
दिया जाता, इसलिए
सामूहिक नृत्य तथा
फैशन है। स्वतन्त्र और
वैवाहिक जीवनका विशेष
स्वाभाविक ही है।
तथा सामाजिक अधिकार
जिक कुरीतियाँ तथा
महिलाएँ बडी कुशलता
सेवा करती हैं। लका
भी शिक्षा प्रसार,
के शिक्षण तथा शाक-स
ही सराहनीय कार्य कर
हुए सस्ते भोजनगृह तथा
भी अवसर मिला।
कुशलतापूर्वक सेवा-शु
सहायता की जाती है।

लकाकी

लकाका हालचाल
स्वागतके लिए अधीर बूढ
लकामें निजी उद्योग
और आवश्यक सामान
प्रकृति-माँ हमपर बडी
रबर और गरममसाले ही
स हम बिना माँ। सब
हुए भी हमें कोई अभाव
कि लका अपने आकर्षक
वनस्पति-परिवार तथा
एक दर्शनीय स्थान है।

सुनीति

श्रीमती विमला लूथरा

सुनीति मिश्राका नाम तो आपने जरूर सुना होगा। वही न लंबी, पतली, गोरी-सी लडकी, जिसके सौंदर्यकी चर्चा दूर-दूर तक थी। परन्तु अब तो इस बातको भी कोई पन्द्रह वर्ष हो गए। तब मैं इलाहाबादमें कालेजमें पढती थी—सुनीति हीके साथ; एक ही क्लासमें। होस्टलमें भी हमारा कमरा बराबर-बराबर ही था। मुझे अब तक याद है सुनीति कैसी आकर्षक थी। देखनेमें तो सुन्दर थी ही, पढने-लिखनेमें भी दक्ष और बातचीत करनेका ढंग इतना सरल कि जिससे बात करती, उसीको मोह लेती। ऐसा अनोखा संयोग था सब गुणोंका उसमें।

प्रोफेसर लोग उसे घर बुलाती, पढनेको किताबें देती। सुनीति भी उनसे खुलकर बातचीत करती, जब कि हम लज्जाके कारण झिझकती रह जाती। सप्ताहमें दो बार हमें संध्या समय होस्टलसे बाहर जानेकी छुट्टी मिलती थी। हमें समझ ही न आती कि कहाँ जायें, क्या करें? कभी महीनेमें एक-आध बार सिनेमा देख आए या बाजार तक घूम आए। किन्तु सुनीतिको फिरने-फिरानेसे फुरसत ही न होती। उसके लिए यह दो दिन भी कम थे। बहुधा कोई-न-कोई बहाना करके वह एक-आध दिनकी छुट्टी और मार लेती। इन सब बातोंके कारण हम सुनीतिसे जला करती। मुझे याद है कि हम लोग ईर्ष्या, जिज्ञासा तथा द्वेषसे प्रेरित होकर उसकी हरएक गतिको यूँ चौकस होकर देखा करती, मानो हमें सी०आई०डी०का काम सौंपा गया हो। और सुनीति बिलकुल बेधडक बिना किसी हिचकिचाहटके जो जीमें आता करती। जब बाहरसे लोग मिलने आते, व उसके लिए उपहार लाते व उसे मोटरोंमें घुमाने ले जाते, तो हमारी छातीपर मानो साँप लोटने लगता। हमारा भी जी चाहता कि हम भी कहीं आयें-जायें, घूमें-फिरें, मिलें-मिलायें, परन्तु इतना साहस कहाँसे लाती? अत हम बैठी सुनीतिके चाल-चलनकी निंदा करती न अघाती। "देख लेना इसका अंत बुरा होगा।" हम सब कहा करती—"किसी दिन पछतायगी।" फिर जब वह रातको हँसती, खिलखिलाती, बातें करती लौटती, तो जैसे हमारे घावोंपर कोई नमक छिडक देता। हमें अच्छा भला मालूम था कि वे नवयुवक, जिन्हें वह अपने ममेरे-चचेरे भाई बताती है, उसके भाई नहीं हैं, वे उसके मित्र हैं और इसीलिए जब-जब वह उनके साथ घूमने जाती, तो हम तरह-तरहकी कल्पनाएँ किया करती। आए दिन नई सूरतें दिखाई देती, नई मोटरें आती, उसके कमरेमें सुन्दर-सुन्दर फूल होते और तरह-तरहके इत्र, पाउडर, क्रीम इत्यादि इतनी छोटी-छोटी चीजें, जिनकी कोई गणना ही न थी। हमें दुःख होता कि अच्छे-भले घरकी लडकी कैसे अपना जीवन नष्ट कर रही है।

किन्तु सुनीतिपर हमारी इन बातोंका कुछ असर नहीं हुआ। युनिवर्सिटीकी परीक्षामें भी वह अच्छे नंबर लेकर पास हुई—उन लोगोंसे बहुत अच्छे, जो यह समझकर दस-दस, बारह-बारह घंटे पढती थी कि जितना परिश्रम किया जाय, उसीके अनुरूप परीक्षा-फल भी अच्छा होगा।

बी० ए० पास करके मैंने तो कालेज छोड दिया और घरके काम-काजमें माँका हाथ बँटाने लगी। सुनीति एम० ए० में दाखिल हो गई। कहते हैं कि उसके माता-पिताकी बहुत इच्छा थी कि सुनीतिका विवाह कर दिया जाय। अच्छे-अच्छे लडके भी मिल रहे थे, परन्तु सुनीतिने उनकी एक न सुनी। और सुनती भी क्या, एम० ए० की लडकियोंको तो कालेजमें और भी स्वतन्त्रता थी। लडके-लडकियोंकी शिक्षा एक साथ होती थी। होस्टलके नियम भी इतने कडे न थे। परिणाम यह हुआ कि सुनीति स्वच्छंदतासे घूमने-फिरने लगी।

जब भी हम दो-चार लडकियाँ कहीं मिल बैठतीं, तो सुनीतिकी ही चर्चा होने लगती। आज उसकी एकके साथ मित्रता है, तो कल दूसरेके साथ। एक रात उसे सिनेमामें देखा गया, तो दूसरी रात कहीं और। हम लोग उसकी दुष्कीर्तिका वर्णन करती और सोचती कि इस लडकीका भविष्य क्या होगा? कालेजवाले उसकी इन हरकतोंको कब तक चुपचाप देखते रहेंगे? इस तरह तो कालेजके बदनाम होनेकी संभावना है। कहीं युनिवर्सिटीके अधिकारियोंने उसे निकाल बाहर किया, तो क्या करेगी?

परन्तु जो हुआ, वह इन आशंकाओंके बिलकुल विपरीत था। एम० ए० पास करते ही सुनीतिको विदेश जानेके लिए छात्रवृत्ति मिल गई और वह दो वर्षके लिए विलायत चली गई। जब कभी मैं इस बातका ध्यान करती कि सुनीति-जैसी लडकीने, जिसका यहाँपर यह हाल था, विलायतके स्वच्छंद वातावरणमें पता नहीं, क्या-क्या गुल खिलाए होंगे, तो शरीरमें एक कँपकँपी-सी दौड जाती। न मालूम

ऐसी लडकियोको देखकर वहाँके लोग हमारे आचरणके बारेमें क्या सोचते होंगे ?

(२)

सुनीतिके भारत लौट आनेकी खबर मैंने सुनी थी और जी चाहता था कि उसे देखूं—विलायतके नाच, शराब तथा रंगरलियोका उसपर कैसा कुप्रभाव पडा होगा ? वह दिन मुझे जीवन-भर नही भूल सकता, जब मेरी सुनीतिसे कनाट प्लेसमे अकस्मात भेंट हुई। मेरा विवाह दिल्लीमें हुआ था और कुछ सालोसे हम वही रहते थे। मईका महीना था और सध्याका समय। मैं कुछ चीजे खरीदने निकली थी। गर्मीसे व्याकुल, पसीनेमें तर-बतर, एक हाथमें खिलौनाके लिए रोती हुई मुन्नीकी अँगुली पकडे, दूसरेमें चीजोका बडा-सा थैला उठाए मैं कुछ झुंझलाई हुई-सी चली जा रही थी, जब कि मैंने सुनीतिको सामनेसे आते देखा—वैसे ही प्रफुल्ल, सजीव, उत्साह-युक्त, जैसे वह पहले थी। यदि कोई अन्तर था, तो यही कि वह अधिक सुन्दर लग रही थी। बाल कटा लिए थे। मेक-अप किया हुआ था, मानो विलायत जाकर उसकी रमणीयता और भी निखर आई हो। कोई विशेष बातचीत नही हुई उससे। ऐसे ही हैलो-हैलो, कैसी हो इत्यादि। और बातें होती भी क्या ? ऐसी प्रगाढ मैत्री तो थी भी नही कभी उससे, परतु जितनी उदास और खिन्न-चित्त मैं उस दिन घर लौटी, बता नही सकती। कितना अतर था उसमें और मुझमें ! पिछले चार सालसे, जबसे मुन्नी पैदा हुई, मैं बराबर मोटी होती चली जा रही थी। इनकी नौकरी भी कुछ खास अच्छी न थी। हाथ तग रहता था। घर के काम-काजमें ही दिन बीत जाता, अपनी देख-भाल करने को अवकाश कहाँ ? और उधर सुनीति थी वैसीकी वैसी, वही आकर्षण, वही रूप, वही लचक, वही मुस्कुराहट। उस रातको मैं खूब रोई। क्या सदाचार और शिष्टाचार सचमुच गर्व करनेकी बातें हैं या केवल मिथ्या मध्यवर्गीय रूढियाँ ?

दुनियाकी जबान तो कोई रोक नही सकता। वह तो चलती ही रही, पर सुनीतिके कानपर जूं तक न रेंगी। वह अपनी विलासितामें मस्त थी। क्लब, डान्स, काकटेल-पार्टियाँ, रेस्तराँ—यही उसका जीवन था। उसे इनसे फ़ुरसत कि स

फिर भला उसे मान-
होती ?

कनाट प्लेसकी भेंटके
सुना कि उसे बबईकी
मिल गई है। तब हम ल
करना छोड दिया, क्योकि
सुनीति आर्थिक, सामाजिक
बढती जा रही थी। मुझे
चार, सद्व्यवहार, पुण्यश
बातें हैं।

धीरे-धीरे मैंने सुनी
दिया, क्योंकि जब भी
मुझे अपनेमें न्यूनताका
होता। अच्छा ही हुआ
जानेके साथ-साथ मेरे ज

कहते हुए लज्जा आत
मैंने उस दिन जब सुन
दरवाजेके बस-स्टापपर
हाँ, सुनीति ही तो थी वह,
न थी। उसकी सूरत
थकी हुई, उदास तथा
मुखकी रेखाएँ भी कुछ कड
थीं। न वहाँ उसके लिए
छैला। आवाज़में भी
बात करना चाहा, परतु

पूछ-ताछ करनेपर
लौट आई है। इतनी
लौट आई, मुझे आश्चर्य
क्यों छोडने लगी ? हो
है। छोड देनेका तो ढ
व्यवहार देखकर कपनी
कहीं वह फँस तो नहीं गई
मुहल्लेवाली राधाकी याद
अपने मामाके लडकेकी
भुगतना पडा था उसे

करना चाहे और उसे भी वांछित पुरुषकी प्रतीक्षा करनी पड़े! कितने आश्चर्यजनक हैं ये पुरुष! जिन लड़कियों को साथ लिए इधर-उधर घूमते-फिरते हैं, उनसे विवाह नहीं करना चाहते! पत्नी-रूपमें एक-दूसरे ही ढंगकी सीधी-सादी, भोली भाली युवती चाहते हैं।

मेरे मनमें सुनीतिके प्रति कुछ संवेदना-सी जागृत हुई, पर बहुत देरके लिए नहीं, वह थी भी अनावश्यक। सुनीति का सितारा अभी ऊँचा ही मालूम देता था, क्योंकि थोड़े ही दिनोंके बाद सुननेमें आया कि रमेशचन्द्र नामक केन्द्रीय सरकारके एक बड़े अफसर सुनीतिसे विवाह करनेवाले हैं। रमेशचन्द्रकी सुनीतिसे क्लबमें पहली बार भेंट हुई और उसे देखते ही उनके हृदयमें उसके लिए अनुराग पैदा हो गया। उनके मित्रोंका विचार था कि शीघ्र ही वे सुनीतिसे विवाह का प्रस्ताव करेंगे। मुझे फिरसे डाह होने लगी। मेरे अंदर फिरसे ईर्ष्याका ज्वार आया। तो क्या सुनीतिका भविष्य भी उतना ही उज्ज्वल होगा, उतना ही सुखमय, जितना कि उसका विगत जीवन? मुझे क्रोध आया, पर मेरे क्रोध करनेसे क्या होता?

एक दिन मैं खाना खाकर दोपहरको आराम कर रही थी, जब मालतीने आ जगाया। मालती हमारी कालेज की सहेलियोंकी टोलीमें थी। वह भी दिल्लीमें ही रहती थी। अतः हम जब कभी मिलतीं, तो बीते दिनोंकी बात करना कुछ स्वाभाविक-सा होता। उस दिन वह काफी उद्विग्न-सी थी। आते ही बोली—"सुना सुनीतिको क्या हुआ?"

"विवाह हो गया होगा और क्या?"—मैंने हँसकर कहा

"नहीं, नहीं हुआ न, यही तो बात है!"

"क्यों, क्या रमेशचन्द्र चकमा दे गए?—मैंने पूछा।

"नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता।" और मालती ने सारी कहानी कह सुनाई। रमेशचन्द्र क्लब तो रोज जाता ही था। एक दिन बाहर लाउंजमें बैठनेकी बजाय अंदर बारकी ओर बढ़ गया। वहाँ दो पुरुष बैठे ह्विस्की पी रहे थे। रमेश भी अपना गिलास लेकर साथवाली मेजपर बैठ गया। वे दोनों अपनी किसी पुरानी प्रेमिका की बातें याद कर-करके हँस रहे थे। रमेशचन्द्रने पहले तो उनकी बातोंपर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया, किंतु जैसे ही सुनीतिका नाम उसके कानोंमें पड़ा, तो वह चौंक उठा। जी चाहा कि उन दोनोंको पीटे, परन्तु विवेकने रोक दिया। रमेशचन्द्र एक ही घूँटमें अपना गिलास खाली कर बाहर निकल आया, पर जो-कुछ सुनीतिके विगत जीवनका हाल वह सुन चुका था, उसे कैसे भुला देता? उस लड़कीसे विवाह करना कैसे स्वीकार कर लेता, जो उन दोनोंकी प्रेमिका रह चुकी थी? न जाने और भी ऐसे कितने पुरुष होंगे?

अगले दिन रमेशचन्द्रने तीन महीनेकी छुट्टीके लिए आवेदन दे दिया और उसकी स्वीकृति होते ही दिल्लीसे बाहर चला गया।

यह सुनकर जीवनमें पहली बार मेरे मनमें सुनीतिके लिए वास्तविक सहानुभूति जगी। मैंने सोचा, अब सुनीति के यौवनके प्रमादकी छाया उसके सारे जीवनको आच्छादित करती रहेगी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायँगे, उसे उन चीजोंका अधिक आभास होगा, जिनसे वह वंचित रह गई है। पति, पुत्र तथा गृहस्थके अभावसे स्त्रीके जीवनमें एक ऐसा सूनापन आता है, एक ऐसी रिक्तता, जिसको विगत जीवनकी हजारों विलासमय स्मृतियाँ भी कभी पूर्ण नहीं कर सकतीं। मनमें आया कि और नहीं तो चार साल तक कालेजमें एक साथ रहनेके नाते ही सुनीतिसे ऐसे समय जाकर मिलना चाहिए। न जाने कितनी व्यथित होगी बेचारी!

इसी विचारसे संध्या समय मैं उसके घर गई। परन्तु सुनीतिने जो मुझसे कहा, उसकी मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। आरंभिक शिष्टाचारके बाद वह कहने लगी—"बहन, तुमने बहुत अच्छा किया, जो मुझसे मिलने आईं। सच, मुझे रमेशसे यह आशा न थी। परन्तु उसके चले जानेका कोई ऐसा अफसोस भी मुझे नहीं है। मैंने अपने जीवनमें सुख और सुन्दरताकी जो घड़ियाँ देखी हैं, उनकी याद ही मेरे लिए बहुत है। मैं समझती हूँ कि जितना आनन्द मैंने इस थोड़े समयमें अनुभव किया है, सामान्यतया लोग उम्र भरमें नहीं करते। मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि यदि मुझे फिरसे जीवन प्रदान किया जाय, तो फिर मैं अपनी युवावस्था इसी प्रकार बिताऊँ।"

उस दिन घर लौटते समय सुनीतिके शब्द रह-रहकर मेरे कानोंमें गूँज रहे थे—सुख, सुन्दरता, नवीनता, दर्द, हर्ष, असत्य... मेरा अपना विश्वास जैसे डगमगा रहा था। कौन कह सकता है कि जीवनका कौन-सा रास्ता ठीक है और कौन-सा गलत?

मेरी पहली गिरफ्तारी

श्री भूपेन्द्रकुमार दत्त

वैसे तो मुझे पुलिसका मेहमान कई बार बनना पड़ा है, पर यहाँ मैं अपने पहले आतिथ्यकी कहानी ही कहना चाहता हूँ। पहले महायुद्धके समय (१९१६) भारतमें अँगरेजी शासनके खिलाफ़ बग़ावत करानेके लिए जर्मनीसे जो हथियार भेजे गए थे, वे भारत नहीं पहुँच सके। अमरीका-स्थित चेक-विप्लववादियोंने खबर भेजी कि भारत-जर्मन षड्यन्त्र का भंडाफोड़ हो गया है। कुछ ही दिन बाद बालेश्वर (बालासोर) के हल्दीघाटपर यतीनदाके मारे जानेका समाचार भी मिला और एक प्रकारसे विप्लवका वह पर्व लगभग समाप्त हो गया।

जुलाई-विप्लव

साधारण लोग भले ही ऐसी विफलताओंसे निराश हो जायें, पर विप्लववादियोंके कोषमें निराशा-जैसा कोई शब्द ही नहीं है। यतीनदाकी मृत्युसे हम सबको बहुत बड़ा आघात पहुँचा था, परन्तु यदुगोपाल मुखोपाध्याय स्थल-मार्गसे चीन, स्याम और आसामके रास्ते जो हथियार ला रहे थे, उनके बर्मा तक पहुँचनेका सुनकर हमें कुछ आश्वासन मिला। पर दुर्भाग्यवश एक पंजाबी इंजीनियरके विश्वास-घातके कारण यह प्रयास भी विफल हो गया और यदुदा भी पकड़ लिए गए। अब तो और कोई आशा नहीं बच रही थी। ३० जून, १९१६को कलकत्तेमें बसन्त चट्टोपाध्याय की हत्या की गई और उसी दिनसे टैगार्टकी ज्यादतियाँ भी शुरू हो गईं। इस घटनाको हम लोगोंने 'जुलाई-विप्लव' का नाम दिया।

तलाशियों और गिरफ्तारियोंकी धूम

टैगार्टका बहुत दिनोंका क्रोध सहसा ऐसा उमड़ा कि कलकत्ता और उसके आसपासके स्थानोंमें तलाशियों और गिरफ्तारियोंकी धूम-सी मच गई। विप्लववादियों और राजनीतिक कर्मियोंके लिए अपरिचित स्थानों और फुटपाथों के सिवा और कोई आश्रय-स्थल नहीं बचे। और अक्सर यहाँसे भी संदिग्ध व्यक्तियोंको गिरफ्तार किया जाने लगा। सुबह होते ही देखा जाता कि दो-चार चौराहे या मकान

असम्भव हो जाता। जो लोग
व्यक्तिगत हाजतके लिए किड
स्थितिने हमारे दैनंदिन जीवन
बना दिया था। कई-कई
नसीब नहीं हो पाता था।

टैगार्टकी जुल्म-

और जो लोग पकड़े जाते
गत होती थी। सारा भेद
लगातार रात और दिन बैठने
चौबीसों घण्टे पुलिसका कड़ा
पहरेदार राजबन्दियोंके साथ
तो उसे तत्काल बरखास्त कर
बन्दियोंको खानेके लिए दोनों
मुड़की देनेकी व्यवस्था थी और
के लिए खास तौरसे इतनी
कई दिनोंके भूखे भी उसे खा
रातको अचानक थोड़ी-सी
यह शायद घूसके तौरपर ही।
या अन्य बंगाली अफसर
और बड़ी असभ्य भाषा तथा
लात, बाल खोंचना, अँगुलियाँ
रूलसे मारना तथा तरह
कई-कई दिनतक भूखे-प्यासे और
पर प्रहार करना, मलद्वारमें
मूत्र लाकर मुँहपर फेंकना आदि
का प्रयोग होता था। यह क्रूर
या दिन-दिनभर चलता था।

इन सब जुल्म-ज्यादतियोंसे
साथी घबराकर कोई झूठी-सच्ची
थे। पर जितनी वे करते थे,
उसका प्रचार किया जाता था,
गए अथवा उसके चंगुलसे

कभी हार माननेवाले नही है। फिर भी ऐसी ही किसी स्वीकारोक्तिके फल-स्वरूप मैं भी पुलिसके हाथोंमें पडा।

क्रान्तिकारियोंके मैसका संचालन

चन्द्रनगरसे अतुल घोषने सूचना भिजवाई कि पुलिस मेरे पीछे है, अत. मैं कालेज छोडकर इधर-उधर हो जाऊँ। अतुलदा विप्लवी दलके गठन और परिचालनमें यतीनदाके दाहिने हाथ थे और भारत-जर्मन षड्यन्त्रके उन अफसरोंमें से थे, जिनकी गिरफ्तारीके लिए बहुत बडे इनामकी घोषणा की गई थी। उन्हीके एक साथी सतीशदा थे, जो मफरूरो को किस प्रकार सावधानीसे काम करना चाहिए, घूम-फिरकर यही बताते रहते थे। अतुलदाका सन्देश मुझतक वे ही लाए थे। उस वर्ष मैंने एक मेसका आयोजन किया था, जिसमें अधिकाश हमारे साथी ही थे। इनमें मेघनाथ साहा, शिशिर मित्र, शैलेन घोष, यतीन सेठ, ज्ञान मुखोपाध्याय और ज्ञान घोष आदिको लेकर ही बादमें सर आशुतोषने विज्ञान-कालेजकी नीव डाली थी। ये लोग प्राय. यतीनदा और शचिदासे मिलते रहते थे और किसी-किसीका भारत-जर्मन-षड्यन्त्रमें थोड़ा-बहुत सहयोग भी था। इसी बीच शैलेन घोष किसी तरह अमरीका जानेकी व्यवस्था कर पाए। पर दौलतपुर, नडाल इत्यादिका भ्रमण करनेके कारण उनका पासपोर्ट बेकार हो गया। एक दिन उनको खोजते हुए जब खुफिया-अफसर हमारे मेसमे आए, तब जरा हमारा माथा ठनका! मुझसे कहा गया कि अब मेरा यहाँ रहना खतरेसे खाली नही। इस समय यद्यपि मेसमे सीटोकी भर्ती और मकानका किराया चुकानेका काम मेरे ही जिम्मे था, पर मैं स्वयं फरीदपुरके इन्दु सरकार द्वारा सचालित एक अन्य मेसमें ही रात बिताने चला जाता था।

इसी बीच एक रात शालखके एक मकानमे सतीशदा घिर गए। गोली चलाते-चलाते उन्होंने अँधेरेमें भाग निकलनेकी चेष्टा की, किन्तु एक गोरे घुडसवार पुलिस-अफसरने उनकी छातीपर इतनी जोरसे लात मारी कि उनके हाथका पिस्तौल दूर जा गिरा और वे स्वय भी जमीनपर गिर पडे। पकड़ा जाना निश्चित समझकर उन्होने अपने पासका पोटेसियम साइनाइड खाकर आत्महत्या करनी चाही। पर सौभाग्यसे वह आक्सीडाइज्ड हो चुका था, इसलिए उनका प्राणान्त तो न हो सका; परन्तु उनका सुन्दर स्वास्थ्य फिर जीवन-भर न लौटा। इस घटनाके बाद हमारे मेसके राजेन्द्र पाल और अश्विनी भट्टाचार्यको भी पकड लिया गया। अब पुलिसको पता चला कि यह मेस तो क्रान्तिकारियोंका अड्डा है। इसलिए रोज उसपर छापा मारा जाता और या तो खानातलाशी होती या किसी
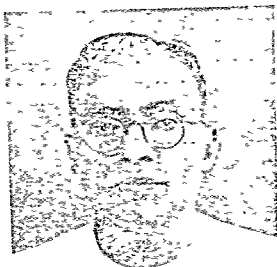
लेखक (श्री भूपेन्द्र मार दत्त) का जन्म पूर्वी बंगालमें हुआ। बचपनसे ही बंकिम बाबूका 'आनंद मठ' पढ़कर आप क्रान्तिकारियोंके साथ हो गए। जब आप केवल १३ वर्षके छात्र थे, तो अरविन्द घोषके युगान्तर-दलके साथ थे। १९१६में आप नेताजी सुभाष बसुके साथ ही प्रेसिडेंसी कालेजमें दर्शन (आनर्स) के छात्र थे। ओटन-काडमें भाग लेनेके कारण सुभाष बाबू तो कालेजसे निकाल दिए गए और आप १९१६में जर्मनीसे आनेवाले शस्त्रास्त्रोंसे सशस्त्र क्रांति करने के षड्यंत्रसे संलग्न होनेके कारण पढ़ाई छोड़कर फरार हो गए। १९१७में आप पहली बार पकडे गए। प्रस्तुत लेखमें इसीका वर्णन है, जो कि आपके हाल हीमें प्रकाशित बंगलाके संस्मरणात्मक ग्रन्थ 'विप्लवेर पदचिन्ह'से लिया गया है। इस गिरफ्तारीके बाद आपने राजबंदियोंके साथ होनेवाले अमानुषिक व्यवहारके खिलाफ ७८ दिनकी भूख-हड़ताल की। १९२०में रिहा होनेपर आप नागपुर-कांग्रेस में जाकर गांधीजीसे मिले और हिंसात्मक क्रान्तिकी प्रवृत्तियों से हाथ खींचकर 'सत्याश्रम' के अन्तर्गत रचनात्मक कार्य करने लगे। १९२३में देशबंधु चितरंजन दासने आपको स्वराज्य-पार्टीका एक संचालक नियुक्त किया। इसी वर्ष १८१८के तीसरे रेगूलेशनमें पकड़कर आपको मिदनापुर-जेलमें बन्दी बनाया गया। यहाँ जेल-अधिकारियोंके दुर्व्यवहारके खिलाफ भूख-हड़ताल करनेपर आपको बर्मा भेज दिया गया, जहाँ आप बेसीन, माडले और थायरम्यो की जेलोंमें रहे। १९२८में रिहा होनेपर आप फिर कांग्रेसमें शामिल हुए और १९४१में आप फिर पकड़े गए।

की गिरफ्तारी या किसीके बयान लिए जाते। इस हालत में मैंने उधर जाना ही छोड दिया।

ट्रान्सफर-सर्टिफिकेटकी प्राप्ति

कुन्तल चक्रवर्ती (श्री मनोज बसुके 'भूलो नाई' उपन्यास के नायक) भी उस समय फरार थे। अतुलदाके प्रयाससे एक नकली नामसे उन्हें एक जगह मास्टरी मिल गई थी और इस नामका ट्रान्सफर-सर्टिफिकेट लानेका भार मुझे सौंपा गया था। उस समय मैं प्रेसिडेंसी कालेजमें आनर्स क्लासमे पढता था और यह सर्टिफिकेट लेना था संस्कृत कालेजसे। हमारे कालेजके डा० महेन्द्र सरकारका मुझपर अपार स्नेह था, अत जब उन्होने मुझसे पूछा कि यह सर्टिफिकेट क्यो चाहिए, तो एक बार उनके सामने झूठ बोलने का मुझे साहस नही हुआ। पर फिर यह सोचकर कि मेरा जीवन अपेक्षाकृत एक बडे सत्यसे ओतप्रोत है, इसलिए मैंने कह दिया—"गाँवमे पिताजी अस्वस्थ हैं, इसलिए उनके पास ही जाकर रहना चाहता हूँ।" इसके बाद उन्होने मुझे कालेजके प्रिंसिपल डा० सतीश विद्याभूषणके पास भेज दिया। वे बोले—"जितने दिन तुम्हारे पिता अस्वस्थ रहे, उतने दिन उनके पास रह सकते हो। सिर्फ इतनी-सी बातके लिए सर्टिफिकेट नही मिल सकता।" मुझे निराशा तो हुई, पर मैं जल्दी ही हार माननेवाला नही था, इसलिए प्राय उधर ही रोज चक्कर काटता रहता। पुलिस मेरी ताकमें थी ही, इसलिए मुझे खूब सावधानीसे आना-जाना पडता था। अन्तमें मैंने सर्टिफिकेट प्राप्त कर ही लिया।

पुलिससे आँख-मिचौनी

इसके बाद मेरा अधिकाश समय चन्द्रनगरमें ही बीतने लगा। कभी मैं एक साथीके यहाँ रहता और कभी दूसरी जगह। जिन स्थानोको मैं छोडता, वही पुलिस पहुँचती और या तो तलाशी लेती या किसीको गिरफ्तार करती। कलकत्तेमें रहनेकी संभावना प्राय असंभव हो उठी थी, इसलिए तिल्जलाके रेल्वे-केबिनमें रहनेवाले देवेन घोष (सिन्धुबालाके पति) का निवास-स्थान ही हम लोगोका प्रमुख आश्रय-स्थल हो गया था। पर अधिकाश क्रान्तिकारी चन्द्रनगरमें ही रहते थे और पुलिस बुरी तरह उनके पीछे पडी थी। अतुल घोष चूँकि बहुत दिनोसे यहाँ रहते थे, इसलिए सरकारी अफसरोसे उनका अच्छा परिचय हो गया था। इसीके फल-स्वरूप तलाशी अथवा पुलिसकी

यक्ष्मासे बचाया जा सका था
कि इस बार पुलिसने खास
की है। इसलिए अमरदा
जानेकी स्थितिमें नही थे, एक
सब लोग आस-पासके जगलमें
चक्कर काटकर आखिर

मैं उस दिन कलकत्तेमें
मिली कि जिस तरह भी हो,
शाम तक चन्द्रनगर पहुँचूँ,
भेजनेकी व्यवस्था की जा सके
ही हमारे धन-सबल थे और मैं
भिखारी। पर दुर्भाग्यवश
स्कूल-कालेज बन्द थे। अत
बजबज पहुँचा और उनसे छ
नगर गया। देवेन घोषकी
मेरा भी सामान्य परिचय हो
कुछ साथियोको गोहाटीकी
यदुदाकी लम्बी दाढी तथा
साथ सिरपर टोपी, कन्धेपर
मुँहमें हुक्का लगाए
एक बार तो साथी भी शायद
सकते थे। सबसे अधिक
उनका लम्बा-चौडा शरीर,
आदिको छद्मवेशसे ढँकना
के कानाई साहाके लिए भी
आखिर उन्हें देवेन बाबूके
कहकर दो तल्लेपर रखा गया
और मैं सशस्त्र पहरा देने लगे

काली भेडकी

पर कानाई बाबूको लेकर
पडा। रह तो रहे थे वे
कर्मचारी देवेन घोषके बेकार
तीन जडाऊ अँगूठियाँ, टाकाई
जैसे उनका काम ही नही चलता
उनके कोई साथी आकर प्राय
भेंट आदि दे जाते थे। प्राय
गाडी किराएकर एकाध

किन्तु बादमें कुन्तलका सन्देह सच निकला और इन कानाई बाबूकी कृपासे न केवल अनुशीलन-दलका ही अन्त हुआ बल्कि कई क्रान्तिकारी भी पकड लिए गए।

आश्चर्यजनक परिवर्तन !

अमरदाको जिस जगह छिपाकर रखा गया था वहाँ के लोग खतरेके कारण अब उन्हे एक भी दिन और नही रखना चाहते थे। पिछले कई दिनोसे सुबह होनेके पहले ही वे अमरदाको नित्य कर्मोंसे निवृत्त करा और कुछ खिला पिलाकर एक कमरेमें बन्दकर बाहरसे ताला लगा देते थे और इसीके बाहर बरामदेमे एक स्कूल लगता था। आधी रातको कमरा खोलकर उन्हे फिर कुछ खिला पिला दिया जाता था। यह क्रम केवल चार ही दिन चल पाया और पाचवें दिन उन्हे पहले दक्षिणश्वरके मन्दिर और फिर बोटनिकल गार्डेन ले जाया गया। दिन भर वहा बिताकर और कोई चारा न देख उन्हे दवेन घोषके यहा ही ले आया गया।

अब हम लोग अमरदाके लिए उपयुक्त स्थानकी खोज करने लगे। शलेन घोषके एक आत्मीय रामगोपाल दत्त खिदिरपुर डाकघर काम करते थे। उनके द्वारा उन्हे किसी जहाजपर सवार करानेकी बात सोची जाने लगा। चूकि पुलिस मुझे पकडनेके लिए बडी चेष्टा कर रही थी इसलिए सोचा गया कि अमरदाके रहनेकी व्यवस्था करनेके बाद मै गोहाटी चला जाऊँ। यदुदाका निर्देश था कि गोहाटी पहुँचकर मै दिनमे कभी बाहर न निकलू और न कभी पैदल घूमू फिरूँ। एक दिन मै अमरदाके जानेकी व्यवस्थाके सबधमे रामगोपालसे मिलने ट्राम द्वारा खिदिरपुर गया। जब मै उसके दफ्तरमे पहुँचा तो दरवानेके पास एक दाढीवाले व्यक्तिको बैठ देखा जो मेरी ओर घूर घूरकर देख रहा था। इसपर विशेष ध्यान न दे जब मै रामगोपालके पास पहुँचा तो उसे भी बहुत बदला-सा पाया। पहले जब कभी मै उसके पास जाता वह मुझे देखते ही उठ खडा होता और मुझे लेकर बरामदेमे चला आता जहा हमारा बातचीत होती। पर आज उसने मुझसे नजर ही नही मिलाई और बडा उदास दिखाई दिया। मैने पूछा कि क्या तुम बीमार हो तो उसने केवल नही कह दिया और फिर फुसफुसाकर बोला कि कोई व्यवस्था वह नही कर पाया है। मैने और बात करना ठीक नही समझा और चुपचाप लौट आया।

पुलिसकी चपेटमे

बाहर आकर मै ट्रामके फर्स्ट क्लासमें बैठ गया। घाटगजके मोडसे मैने चार-पाँच पुलिसवालोको उसी ट्रामके सेकेण्ड क्लासमें चढते देखा। पर मैने इसपर कोई विशेष ध्यान नही दिया क्योकि पुलिसवाले प्राय ट्राममे चला ही करते है। एस्प्लेनेडपर आकर मै ट्रामसे उतरा। मुझे चारुके लिए जिनके पीठमें गोली लगी थी और जो चन्द्रनगरमे ही यक्ष्मासे पीडित हो चिकित्सा करा रहे थे कुछ फल लेने थे। ट्रामसे उतरकर ज्योही मै न्यूमार्केटकी ओर चलने लगा तो मुझे पीछेसे कई भारी जूतोकी आहट सुनाई दी। ज्योही मैने पीछेकी ओर मुडकर देखा कि झपटकर उन लोगोने मुझे चारो तरफसे दबोच लिया। कुछ दिन पहले मेरे दाहिने हाथकी पिछली तरफ एक गोली लगी थी जिसके कारण हाथपर पट्टी बँधी थी। इस जख्मी हाथको छिपानेके लिए मै एक चादर ओढे रहता था। पुलिसके चगुलमे पडते ही मुझे ध्यान आया कि मेरी बाईं जेबमे इंचकौंसलकी एक चिट्ठी है जिसे गोहाटीमे यदुदाके पास ले जाना था। यद्यपि इसमे कोई बडी अनिष्टकर बात नही थी फिर भी अभ्यासवश मुझे इसे नष्ट करनेका ही ध्यान हुआ और मै पट्टी-बधे दाहिने हाथमे ही जेबसे रिवाल्वर बाहर निकालनेकी चेष्टा करने लगा। पर पुलिसवालोने चारो तरफसे मुझे इस तरह जकड रखा था कि दोनोमे से कोई भी हाथ हिल नही सकता था।

झपटकर पकड जानेके कारण मै जमीनपर गिर पडा था। मैने सोचा कि यदि जेबके भीतर ही रिवाल्वरकी एकाध आवाज हो सके तो सभव है कि आतंकित होकर सिपाहियोकी पकड कुछ ढीली हो। अत जमीनपर पडे पडे ही मैने किसी तरह अपना हाथ जेबमे सरकाया रिवाल्वरकी सेफ्टी हटाई और घोडा दबाया। लेकिन दुर्भाग्यवश वह कपडोमे ऐसा उलझ गया था कि काम ही न कर सका। इसी समय आस-पाससे और भी पुलिसवाले आ पहुँचे और मेरे हाथ-पाव बाधनेकी चेष्टा करने लगे। मै भरसक झपटा-झपटी किए जा रहा था और एक पुलिसवाला मेरी छातीपर बैठकर मेरी चादरका फन्दा मेरे गलेमे डालकर उसे कसता जा रहा था। उस समय शरीरमे काफी बल था इसलिए मैने धक्का-मुक्की करनेमे कोई कमी न रखी। पर फिर यह सोचकर कि पुलिसके फन्देमे तो पड ही गया हूँ और रिवाल्वरका प्रयोग कर नही पाऊँगा इसलिए जेबसे पोटेशियम साइनाइड निकालकर ही क्यो न खा लू। पर जब जेबमे हाथ गया तो देखा कि छाना सारा पुलिसवाले वह जब ही पाकर ले गए थे। इस प्रकार सघर्ष करते-करते कब मै बेहोश हो गया मुझे याद नही।

बादमे पता चला कि बेहोश हो जानेके बाद मेरे हाथ पाँव बाँध और टैक्सीमे डाल पुलिसवाले मुझे इलीसियम रो

के आए थ। मेरे सब कपड बिल्कुल फट गए थ और चादर का केवल एक टुकडा ही कमरम लिपटा रह गया था। रगड और मार-पीटसे शरीर कई जगह क्षत विक्षत हो गया था और कई घावोसे खन बह रहा था। बसाखकी दोपहरी का समय था और भूखसे ज्यादा प्याससे मेरा दम निकला जा रहा था। पर पुलिसवालोने इसकी कोई परवाह न कर मेरे दोनो हाथ पीठकी ओर कर हथकडी पहना दी। बरामदा पार करके जब मझ एक कोठरीकी ओर ले जाया जा रहा था तो बगलकी एक कोठरीसे आवाज आई— भूपेन दत्तको पकड लाए ह !

मार और गालिया

कोठरीम पहुचते ही खुफिया विभागके बहुत-से लोग मझ देखन आए। एक व्यक्ति मेरे पीछ आकर खडा हो गया और मेरे बाल खीचनकी चेष्टा करन लगा। पर चकि मेरे बाल खूब छोट और कट हुए थ इसलिए ठीकसे उसकी पकडम नही आए। म चूकि जानता था कि अब तो बरी तरह मरम्मत होगी इसलिए चुप रहा। मेरी चुप्पासे उन लोगोका साहस बढा और चारो ओरसे मुझपर गालियोकी बौछार होन लगी मार खानम म पक्का हो चुका था पर अपशब्द सुनन और सहनका मुझ विशष अभ्यास न था। इसलिए जब गालियोम भी अति होन लगी तो मुझसे और न सहा गया और म चीख पडा— शतानो चुप करो। शम नही आती तुम्ह इस तरह बकते। तुमन अपनी मातभमि अपन वतन और अपनी आत्माको तो बच ही दिया है अब तुम्ह एक देशभक्तके खिलाफ अपशब्दो का प्रयोग करते भी लाज नही आती ? भूख थकान और घायल होनकी दुबलताके बावजद मेरे चिल्लानसे जसे वह कोठरी काप उठी और गालिया थम गइ।

देशद्रोहियोंको फटकार

एक इस्पेक्टरन मेरे बाल खीचनवाले कान्स्टबलसे कहा— मत मारो इसको। इसका केस कोटम जायगा इसके बाद मार बन्द हो गई और फिर मेरे कभी मार खानका अवसर न आया। दो चार लोगोको छोडकर बाकी सब लोग भी बाहर चले गए। बच हुए लोगोम से एकन मेरे पास आकर धीरेसे पूछा— आपको प्यास लगी है ? पानी पिएग ? मन पास खड हुए एक गोरे सार्जेण्ट को सुनानकी दृष्टिसे अगरेजीम ही जवाब दिया— तुम

धो धाकर उसम पानी ले बाद वह दुबारा जल लाया एक टुकडा लेकर उसे पान धोन लगा। जहासे अभी जल पट्टी रखी।

मुझ एक कुर्सीपर बिठा बाद एक बूढ अफसर आए यही लडका है ? तुम्हारा नाम म बोला— क्या आप नही वे लोग ह। स तब मुझ आपसे कुछ अच्छा अच्छा।

शामको कई गोरे एक मन अनुमान लगाया कि होगा। इसी समय लाड आए थ। टगाटकी जुल्म उन्होन उसे हटा दिया था। नामके एक नए डिप्टी दे रहा था। शामको म इसी के सामन पेश किया गया। छडी थी जिसे सामनकी ट एक साथ कई प्रश्न किए तुम्हारे बापका नाम क्या है ? तुम्हारी उम्र क्या है ? क्या बरामद हुआ है ? मन का नाम उम्र गावका नाम बतानके बाद कहा— बस ज्यादा म एक विदेशी चाहता।

भारत छो

कार्बेटन तेजीसे कलम वह जल्दीसे लिख लिया और ल्वर तुम्हारे पाससे बरामद जवाब दिया— म और कुछ उसन दूसरा प्रश्न किया— तुम्हारे पाससे बरामद हुआ म इसका कोई जवाब नही

जोर-जोरसे साँस लेने लगा। फिर मेरी ओर देखकर बोला—"तुम विदेशी सरकारके अफसरके प्रश्नोंका जवाब नहीं देना चाहते? इसका मतलब है कि तुम क्रान्तिकारी हो?"

"नहीं, मैं एक देशभक्त हूँ।"

"क्या तुम जानते हो कि इस प्रकारके व्यवहारका नतीजा क्या होगा?"

"हाँ, मैं जानता हूँ, तुमने बहुत-से क्रान्तिकारियोंको शारीरिक यातनाएँ दी हैं और बहुतोंको मार भी डाला है।"

"हमने यातनाएँ दी हैं! क्या तुम्हारा ब्रिटिश सरकार की ईमानदारीमें विश्वास नहीं?"

"नहीं। मैं नहीं जानता कि क्लाइवसे लेकर तुम तक किसको अधिक बेईमान कहूँ!"

"तुम चाहते हो कि हम हिन्दुस्तानसे चले जायँ?'

"पर तुम अपनी इच्छासे जानेवाले नहीं हो, यह मैं जानता हूँ। परन्तु हम लोग तुम्हें निकालकर ही छोड़ेंगे।"

"इसका मतलब है कि तब तुम क्रान्तिकारी हो?"

"मैं सिर्फ एक देशभक्त हूँ।"

"पर तुम तो क्रान्ति करना चाहते हो। लेकिन कितने लोग हो तुम? मैं तुम लोगोंके नाम अँगुलियोंपर गिन सकता हूँ। क्या तुम्हारे पास सेना है? क्या तुम्हारे पास नौसेना है? और तुम्हारा जनरल कौन होगा? सतीश चक्रवर्ती? क्या सतीश चक्रवर्ती तुम्हारा जनरल होगा? क्या तुम जानते हो कि एक साधारण सिपाहीके लिए कितना खर्च करना पड़ेगा? शायद तीन करोड़ रुपए! क्या इतना रुपया तुम्हारे पास है?"

इस तरह उसने प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। मुझसे भी न रहा गया और मैंने कहा—"हम लोगोंके पास कुछ नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर हम लोग मरना जानते हैं। हम लोग दल-के-दल मरेंगे और उसीसे अपने देशको जगाएँगे। देखें कितने दिन और तुम लोग हमें सेनाकी संख्या और रुपयों का हिसाब दिखाकर दबाए रख सकते हो? स्वाधीनताका मंत्र सीख लेनेके बाद क्या कभी कोई देश किसी दूसरे देशके दबाए दबा रह सकता है? हम लोग कम-से-कम देशको आजाद होनेकी तमन्ना तो सिखा जाएँगे, फिर चाहे लम्बे अर्से तक तुम लोगोंकी छीना-झपटी ही चले, तो चले।" जब मैं यह सब कह रहा था, तो कार्वेटके हाथकी छड़ी घूम रही थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि यदि एक बार भी वह छड़ीसे मुझपर वार करे, तो हाथोंमें हथकड़ी होनेके बावजूद एक बार तो मैं उसे लात मारकर गिरा ही दूँगा, फिर चाहे कुछ भी हो। पर उसके हाथकी छड़ी सधन ही रही, यद्यपि क्रोधसे उसका चेहरा तमतमा उठा था। मेरी बात समाप्त होते ही उसने गरजकर कहा—"ले जाओ इसे यहाँसे।" पहले तो मैं समझा कि शायद इसका मतलब है मारवाली कोठरीमें ले जानेका, पर बादमें देखा गया कि मुझे लाल बाजार थाने ले जाया गया।

'ब्लैक मेरिया'की यात्रा

वह भी एक कहानी ही है। इलीशियम रोके यंत्रण-गृहके बाहर पुलिसकी एक बन्द गाड़ी खड़ी थी, जिसके पास पाँच बन्दूकधारी हिन्दुस्तानी और दो गोरे सार्जेण्ट खड़े थे। पहले देशी सिपाही गाड़ीमें चढ़ गए, फिर एक गोरा आगे बैठा और एक राइफल तानकर पिछले दरवाजेमें बैठ गया। गाड़ीके दरवाजेके बीच एक खुफिया-अफसर खड़ा था, जो भीतर नहीं आ रहा था। सतीश मजूमदारने उससे पूछा—"अन्दर आकर क्यों नहीं बैठते?" उसने उत्तर दिया—"किसी एक और आदमीको साथ ले लेते, तो अच्छा होता।"

"अरे, तुम भी क्या बात करते हो? देखते नहीं, इसके हाथ पीछेकी ओर बँधे हैं और उसपर कितने ही सिपाही बन्दूक लिए भीतर बैठे हैं। फिर राइफलधारी सार्जेण्ट भी तो साथ है और तुम्हारे पास भी तो रिवाल्वर है। क्या इतनेपर भी एक आदमीकी और जरूरत है? अरे, इतना घबराते क्यों हो?'

"नहीं, घबरानेकी तो कोई बात नहीं।"—कहता हुआ वह गाड़ीमें बैठ गया। यह था मेरा ब्लैक मेरियामें पहली बार बन्द होना। भीतर एकदम अँधेरा था और लगभग यही स्थिति मेरे मनकी भी थी।

अपने लिए दूसरोंका सर्वनाश!

लाल बाजार ले जाकर एक बूढ़े और भले-से सार्जेण्ट के पास मेरा नाम आदि लिखाया गया। इसके बाद सार्जेण्ट मुझे सेलमें ले गया, जहाँ दो कम्बल गिन दिए गए। दरवाजे पर पाँच सिपाही बैठा दिए गए और बाहरसे ताला जड़ दिया गया। कुछ क्षण बाद शायद खुफिया-विभागके परामर्श से एक संगीनधारी सिपाहीको अन्दर खड़ा कर दिया गया। मैं दरवाजेके सामने ही कम्बल बिछाकर उसपर बैठ गया। सारा कथानक एक झिलमिलीकी तरह मेरे मनमें उलट-पुलट होने लगा। उस सबमें से तीन मुख्य बातें ही मेरे सामने थीं। पहली तो यह कि आखिर मैं पकड़ा कैसे गया? मेरा निष्कर्ष ठीक ही निकला कि मुझे पकड़वानेमें राम गोपालका हाथ था। बादमें पता चला कि मुझे पकड़वा देनेके आश्वासनपर ही उसे छोड़ा गया था। यह सज्जन बाहर भी फँसे और उसे भाई बिरादरी द्वारा बहिष्कृत और परित्यक्त कर दिया गया। बादमें पुलिस-विभागमें उसे नौकरी मिल गई। दूसरी बात मुझे यह बर्चेन कर रही

थी कि जो लोग बाहर बच रहे हैं उनका क्या हाल होगा ? कुन्तल और चारु इतने मफरूर साथियोंकी क्या और कैसे व्यवस्था करेंगे ? फिर मेरे न पहुँचनेपर पता नहीं वे क्या-क्या सोचते होंगे ? और तीसरी बात यह कि जिन लोगोंने स्वीकारोक्तियाँ की हैं, वे भला ऐसा कैसे कर सके हैं ! मुझे अतुलदाकी एक दिनकी बात याद हो आई कि मार खानेसे ही यदि स्वीकारोक्ति सभव होती, तो शायद किसी भी देशमे विप्लव नही हो पाता । सुरेशदाका मत था कि यदि कोई कुछ जानता ही न हो, तो कितना भी मारे जानेपर वह क्या स्वीकारोक्ति करेगा ? कुन्तलका कहना था कि मारते-मारते कोई प्राण भी क्यो न निकाल ले, तब भी मुँहसे एक बात भी न कहना ही तो सच्चे क्रान्तिकारी का लक्षण है ।

इन्ही सब बातोको सोचते-सोचते मुझे लगा कि अपनी रक्षा करनेमे दूसरोका सर्वनाश करना क्रान्ति-धर्मसे डिगना और विप्लववादियोंकी जातिसे पतित होना है । आत्म-सम्मानका अभाव होनेपर ही क्रान्तिकारी अपने साथियोके साथ विश्वासघात और पुलिसके सामने माथा नीचा कर सकता है । पर स्वीकारोक्तिका जो मिथ्या और अति-रंजित प्रचार पुलिसकी ओरसे किया जा रहा था, उसका एक विशेष हेतु था । इसीलिए किस-किसके नामपर उसने यह लाछना नही लगाई ? यहाँ तक कि जीवन चट्टोपाध्याय का नाम घसीटनेसे भी वह बाज नही आई, जिनपर मै अपने से भी अधिक विश्वास कर सकता हूँ । यही बात अनु-शीलन-दलके अमृत सरकारके बारेमें भी कही जा सकती है । बादमे सुना गया कि इन लोगोंके विषयम स्वीकारोक्ति का जो प्रचार किया गया था, वह सब असत्य था और अपने आत्म-सम्मान तथा क्रान्ति-धर्मको अक्षुण्ण रखकर ही ये क्रान्तिकारी अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए थे ।

स्वीकारोक्तियोंका आतक

इसी समय एक और बातका भी मुझे खयाल आया और वह यह कि केवल मार और यन्त्रणासे क्रान्तिकारियो से स्वीकारोक्ति करा लेना बहुत सभव नही देख पडता । तब क्या पुलिस किसी प्रकारकी औषधि खिलाकर इस तरह की स्वीकारोक्ति कराती है या उनका मानसिक सन्तुलन बिगाडकर अथवा उन्हें बेहोश करके कुछ कहलवाया जाता है ? यदि इसमें कुछ भी सचाई हो और मेरे साथ भी इसी प्रकार व्यवहार किया जाय, तो क्या वैसे कलकित जीवनका भार

रखकर परम निश्चिन्ततासे
बाद सुना कि मेरी गिरफ्तार
से कहा था कि "अब हम
इसपर अमरदाने पूछा था—"
रोक्ति करे, तो हम लोगोका
क्योकि फिर हम लोग किस
है ?" कानाईसे ठीक उल्टी
सदस्यने गोहाटीमें कही थी ।
के बाद एक सज्जनने कहा
की बहुत-सी बातें जानते हैं ।"
कहा था—"मेरी उनसे कुछ
उसीके आधारपर मैं यह वह
स्वीकारोक्ति करे, पर भूपेन
विश्वास नही कर सकता ।"
मुझपर आस्था है, और उस
देकर जिन्दा रहनेका मेरे लिए
मनम कुछ दृढता आई ।

आत्महत्याकी वि

रातको साढे दस बजेके
खुला और कार्बेट अन्दर घुसा ।
वे ही बातें कही, जो दिनको
उत्तर था । इसके बाद उसने
को खीच-खीचकर देखा कि
नही है । इसके बाद बाहर
सेलका ताला बन्द किया,
कि वह ठीकसे बन्द हुआ है या
सन्तरीको कडी निगाह रखनेक
सामनेसे कुछ कर
एक बार पाखानेका निरीक्षण
रहा । पर मुझे सारी रात
और कभी उठ-बैठकर मै जैसे
और कभी-कभी तो ऐसा
विदा ले रहा हूँ । रातके
बैठा, और शौच जानेके लिए
माँगा । पाखानेमें पहुँचकर
कमोड रखकर देखा कि हाथ
जाता है । उसपर बैठकर
और उसे बँटकर एक रस्सी

सिरा खिडकीसे बाँधा और दूसरेका फदा बनाकर अपने गलेमें डाला और बिना कोई शब्द किए धीरे-धीरे शरीरको नीचे झुला दिया।

परन्तु जो भय था, वही हुआ। मेरे भारसे खिडकी का पुराना पलस्तर धडाम-से कमोडपर आ गिरा। इस आवाजको सुनकर बाहरके कान्स्टेबलोमे भगदड मच गई और 'क्या हुआ' 'क्या हुआ'का शोर मच गया। एक सार्जेण्टने दौडकर ताला खोला और अन्दर आया और मुझे देखकर चिल्लाया—"एक छुरी लाओ। जल्दी करो।" उस समय मेरा गला बुरी तरह सूख गया था। मै मन-ही-मन सोच रहा था कि अब शायद अधिक भुगतना नही पडेगा। सहसा सार्जेण्ट बोल उठा—"दोजने पकडकर ऊपर उठाओ।" और तब मुझे लगा कि अब शायद मृत्यु सभव नही। इस पर मैने दीवारपर सिर टकराकर माथा फोडनेकी चेष्टा की। इसी समय एक कान्स्टेबलने मेरे दोनो पैरोको अपने कन्धेपर रखकर मुझे खडे-खडे ही ऊँचा किया और इस समय मैने फिर कई बार इस और उस तरफकी दीवारसे सिर टकराया। इससे मै फिर बेहोश हो गया।

जब मुझे होश हुआ, तो एक सार्जेण्टका स्वर सुनाई पडा—"क्यो डाक्टर, क्या इसे अस्पताल ले जाना आवश्यक होगा?"

"हाँ, ठीक तो यही रहेगा।"

जिस समय यह बातचीत चल रही थी, मै जान-बूझकर चुप्पी साधे था। सोचा, चलो अस्पतालमें ही शायद मुक्तिका कोई अवसर मिले। एम्बूलेस गाडी मँगवाई गई। पहले दिनकी ही तरह इसके चारो ओर भी कडा पहरा था।

अस्पताल पहुँचकर मै आँखें बन्द किए ही पडा रहा। चारो ओर क्या व्यवस्था है, कौन लोग है, कुछ भी देखनेकी क्षमता मुझमें नही थी। केवल इतना ही अनुभव हुआ कि माथे और शरीरके अन्य घावोको धोया जा रहा है, मरहम-पट्टी की जा रही है। पहले एक गोरे डाक्टरने आकर नाडी देखी, पर उनकी समझमें कुछ नही आया। उनके चले जानेके कुछ ही क्षण बाद एक बँगाली डाक्टर आए। नाडी देखकर उन्होने हाथ छोड दिया। फिर एक दियासलाई जलाई और उसकी रोशनीमें मेरी पलकें उलटकर देखने लगे और बोले—"लगता है, होश आया है। अगर अभी तक नही आया है, तो अब आने ही वाला है।"

मैने महसूस किया कि अब और अधिक देर यह बहाना नही चलेगा। धीरे-धीरे आँखे खोली। सबसे पहले जो दिखाई पडे, वे थे मेरे एक सहपाठी कानाई बसु-मल्लिक, जो बडे स्नेह एव अपनत्वसे मेरे घावोकी मरहम-पट्टी कर रहे थे। चारो ओर दृष्टि दौडाई। कुछेक छात्रोको छोडकर बाकी सब वर्दीधारी पुलिसवाले थे। कुछ बिना वर्दी के भी थे। मै समझ गया कि अब मुक्तिकी कोई आशा नही। थोडी देर बाद फिर स्ट्रेचर आया, फिर वही एम्बूलेन्स गाडी, फिर वही पहरेवाले और फिर वही लाल बाजारका सेल! उस दिन प्रभातके प्रथम सूर्यके साथ-साथ कई वर्षोके लिए बाहरके जगतपर यवनिकापात हो गया। मनकी एक आशा जैसे अन्तिम बार बुझ गई और मनमे यह आशका जन्मी कि मर तो सका नही, तब क्या जीवितावस्थामे ही मरकर रहना होगा? (श्रीमती इन्दुमती द्वारा सकलित और अनूदित)

काँचकी दो चूड़ियाँ

श्रीमती सरस्वतीदेवी कपूर

"आज आपकी गानेकी बारी है!"

"मेरी? मुझे तो गाना आता ही नही!"

"यह सब यहाँ नही चलेगा। रोना और गाना किसे नही आता? फिर हमारे यहाँका तो यह रिवाज है कि जो नया मुर्गा (कैदी) आता है, उसे बाँग लगानी ही पडती है।"

"अच्छा, तो इसे रिवाज नही, हुक्म कहना चाहिए!" —वे बोली।

"अजी हुक्म नही, कानून समझ लीजिए!"—मैने कहा।

और उन्होने गाना शुरू किया—'क्या-क्या रग दिखाया सरकार दीवानी!' गानेका तर्ज कुछ ऐसा था कि हम सबकी सब हँस पडी। पर हमारे साथ ही वे भी हँस दी। उन्होने हमारी इस बेतकल्लुफी नहीं, बदतमीजीका जरा भी बुरा न माना।

इतनेमें स्वर्गीया कमला नेहरूका उर्दूका अखबार आ गया। मैने उसे तपाकसे हाथमें ले लिया और इधर-उधर से देखनेका उपक्रम करने लगी। वे बोली—"बहनजी, क्या लिखा है इसमें?"

मैंने ज़ोर-ज़ोरसे पढना शुरू किया—'लखनऊ-जिला कांग्रेसकी सर्वप्रथम महिला-डिक्टेटर श्रीमती श्यामारानी गिरफ्तार !' मेरे चुप होते ही वे स्वर्गीया कान्ति अवस्थी (जो कि उनके जेलमें आनेके चन्द घटे बाद ही आ गई थी) की ओर एक कटाक्ष फेंकती हुई बोली—"चुप क्यों हो गई बहनजी, आगे पढिए न !"

बात दरअसल यह थी कि श्यामाजी और कान्तिजीमें जेलमें आते ही कुछ वैमनस्य-सा, कुछ प्रतिस्पर्द्धा-सी लक्षित होने लगी थी। इसका कारण चाहे जो भी रहा हो, पर दोनो ही स्वयको लखनऊ-जिला कांग्रेसकी सर्वप्रथम महिला-डिक्टेटर बताती थी। श्यामारानीजीको अपने पक्षकी सत्यता समाचारपत्रसे सिद्ध होते देख वास्तवमे उत्साह आ गया था।

मैंने पढना जारी रखा—'चन्द घन्टो बाद ही द्वितीय डिक्टेटर श्रीमती कान्ति अवस्थी भी गिरफ्तार कर ली गई।' मैं सोच ही रही थी कि आगे क्या पढूं कि श्रीमती कमला नेहरूने हँसीसे व्याकुल होकर अखबार मेरे हाथसे ले लिया और अपनी हँसीको दबानेकी कोशिश करते हुए कहा—"बडे गजबकी लडकी हो तुम, पडित ! बस रहने दो, सिर-फुटौवलका तमाशा देखना चाहती हो क्या ?"

"इसमें मेरा क्या कसूर है ? जो लिखा है, उसे तो पढना ही होगा !"

स्वर्गीया नर्मदा त्यागी असली भेद जानती थी। उन्होने कहा—"अखबार कमलाजीको दो, तो पता चलेगा क्या लिखा है ?"

मेरा मुँह उतर गया। साथ ही श्रीमती श्यामारानी भी फीकी पड गईं। श्रीमती अवस्थी खिल उठी। सबको पता चल गया कि मुझे तो उर्दू आती ही नही !

यह बात १९३०के दिसम्बरकी है। उस समय हम सब लखनऊ सेंट्रल जेलमे बन्द थी। मैं शायद सबसे छोटी थी, इसलिए या कुछ खुशमिजाज और हाजिरजवाब थी इसलिए, मेरी सबसे खूब पटती थी। सभी मुझसे प्रेमसे पेश आती थी। अब विचित्रता यह थी कि मैं तो कमलाजीकी भक्त थी और अपना अधिक-से-अधिक समय मैं उन्हींके सम्पर्कमें बिताती थी और इधर श्यामाजी पता नही क्यों, मुझ-सी नाचीजको अपनी ओर खीचना चाह रही थी। मैं थी अपनी रहन-सहन, खान-पान इत्यादिसे सर्वथा

मेरा कुछ भी सरोकार न था। रसोईघरमे उपस्थित न बातपर कमलाजीसे मुझे डाँट चाही भी किस कामकी !

नि.स्वार्थ प्रे

मेरी पार्टी मुझे ताने देती पार्टीमें जा मिली हूँ ! यह जीके हाथकी अरहरकी दाल व्यजन इतने स्वादिष्ट एव मन ललचा जाता था। वे पीती। और मैं थी दूधकी जो दूध मुनक्का, छोटी रातको सोते समय पीनेको वहाँके राशनमें मिलनेवाला नही परोसा। बढिया और तरह-तरहके अचार वे थी। मैं फिर भी कुछ न पड गई है। इन्हींके चलते पडती है। बीच-बीचमें मैं "यह सब आडम्बर मेरे ब नि स्वार्थ प्रेम-भरी आँखोकी

अपनी जूठी थालीमे किसीका छुआ तक न खाती उठती। वे कहती—"मुझे क्या ?" इसपर मुझे क्या सोच नही पाती। वे मेरा मेरी सब आवश्यकताओको नादान बच्चेके लिए उसकी माँ ही नित्य कर्मके बाद अपने पर उपस्थित पाती ! स्नान नाश्ता खुशबू और रूप-रगसे तैयार मिलता ! खाते हुए जाती। वे मुझसे चाहती पर जैसा कि मुझे आगे कहकर पुकारनेके बदलेमें उस 'अदेय' न रखा।

वे छी ७

उन्होंने मेरा हाथ खीचकर कलेजेसे लगा लिया। दिल जोरोंसे धड़क रहा था। हाथ ठण्डे पड़ रहे थे। मैं अपने बिछौनेसे उठकर उनके पास चली गई। वे बोलीं—"तुम सो जाओ।"

"मैं अब किसी तरह भी सो नही सकती।"—मैंने कहा—"आपको अपनी बात मुझे बतानी ही पडेगी।"

बहुत-कुछ पशोपेशके बाद वे अपनी बीती सुनानेका उपक्रम करने लगी। बोली—"तुम्हारी क्या उम्र होगी? यही कोई बीस-इक्कीस बरसकी ही तो तुम होगी?"

"बिल्कुल ठीक।"—मैंने कहा—"मैं इक्कीसवें बरस में से गुजर रही हूँ।"

"हाँ, तो मैं जब उनसे (अपने पतिसे) अन्तिम बार वचित हुई थी, उसे आज बाईस वर्ष हो रहे हैं। यदि भूले भी मेरी कोई सन्तान हो जाती, तो वह आज तुम्हारे बराबर की जरूर होती।"—कहते-कहते वे बिलख-बिलखकर रोने लगी।

मैं उठकर बैठ गई थी। उन्हे बडी मुश्किलसे सँभाला। बैरकमें दूसरी सोनेवालियोके जाग जानेका भय दिखाया। बहुतेरा कहा कि ये सब लोग अपने मनमे क्या समझेंगी? पर वे किसी तरह भी स्वस्थ हो ही नही पा रही थीं। उस समय कोई भी उपाय उन्हे शान्त करनेका मुझे सूझ ही नही रहा था। अचानक मेरी कल्पनाने काम किया। मैं उनके कलेजेसे एकदम सट गई और कहा—"यदि आपकी सन्तान मेरे बराबरकी हो सकती थी, तो क्या मैं ही आपकी सन्तान नही हो सकती हूँ? कृपाकर मेरा विश्वास करें। मुझे अपनी औरस सन्तान ही समझें।"

"सच?"

उनकी बडी-बड़ी सुन्दर आँखोंके चमकते हुए प्रकाशको मैंने लालटेनकी धुँधली रोशनीमें से स्पष्ट देखा। वे बोली—"क्या तुम मुझे अपनाओगी?"

अपनेमें इतने बडे आदर-सम्मान और प्रेमकी योग्यता का विश्वास-सा न करते हुए थोडी देर तो मैं सोचती ही रही कि क्या जवाब दूँ? परन्तु तुरन्त ही कुछ आश्वस्त-सी होते हुए मैंने कहा—"माँ, मेरा विश्वास करो, मैं तुम्हारी सन्तान ही हूँ।"

वे जैसे जी उठी! बोली—"तुमने मुझे माँ कहा। यहाँ सभी मुझे मासी—'माँ-सी'—ही कहते हैं। पर 'माँ' का प्यारा सम्बोधन पहले-पहल तुम्हींने मुझे प्रदान किया।"

वे अपनी सुन्दर, सुडौल और सफेद बाँह एव हाथको मेरे सारे शरीरपर इस तरह फेरती रहीं, जैसे कोई नेत्र-विहीन सालोंसे बिछुड़े अपने कलेजेके टुकड़ेको टटोल-टटोलकर उसकी स्वस्थता इत्यादिका ज्ञान कर रहा हो। इसके बाद बहुत-सी बातें हुई।

सारी रात कैदियोकी गणना बदस्तूर रही। हमारी बैरककी पक्की ठीक पाँच-पाँच मिनट बाद '५३ कैदी, जँगला, ताला, लालटेन सब ठीक है हुजूर' का नारा बाकायदा लगाती रही। श्यामाजी अपनी कहानी कहती रहीं—कहती ही चली गई। इसीमे सबेरा हो गया। ताला खुल गया। कैदी बाहर निकाले गए। हमे भी अपना बातोका अध्याय बन्द करना पडा। कहानी इतनी लम्बी थी कि तबसे आज तक कई बार कही-सुनी जा चुकी है, पर उसमे जैसे नए-नए अध्याय जुडते ही जाते हैं। सचमुच यह जीवन एक कहानी ही तो है!

जिन्दगी-भरकी गाँठ

उनका विवाह १९०१मे हुआ था। पति लाहौरके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित, सम्पन्न एव धनी परिवारके किशोर थे। इधर इनके पिता इन दो छोटी-छोटी कन्याओ (इन्हे और इनकी एक वर्ष बडी बहनको) इनकी माँकी गोदमें छोडकर चोरीसे विलायत बैरिस्टरी पास करने को चले गए थे। चोरीसे इसलिए कि एक तो उस समय विलायत जानेका चलन ही कम था, फिर वे अपने धनी-मानी-यशस्वी वकील पिताके इकलौते पुत्र थे। वे उन्हें पल-भरको भी अपनी आँखोसे ओझल नही होने देना चाहते थे। खैर, यह एक अलग कहानी है। उसका निचोड यह है कि वे इँग्लैण्ड गए और वहासे लौटनेकी तारीखको ही स्वर्गवासी हो गए। जिस जहाजसे उनके स्वदेश लौटनेकी खबर थी, उससे उनके दोस्तोंने उनकी हड्डियाँ यहाँ भेजी! इस दुर्घटनाके समय श्यामाजीकी उम्र ३॥ सालकी थी।

बारह सालकी उम्रमें इनका विवाह हुआ। लाड-प्यारसे पली हुई सुन्दर सलोनी गुणवती पौत्रीका कन्यादान बहुत ही प्रतिष्ठित एव अपनी बराबरीके घरानेमे करके इनके दादाने अपनेको कृतकृत्य माना।

द्विरागमन (गौना) होनेमे कई बरसकी देर थी। वर महोदय डाक्टरी पढनेके लिए विदेश चले गए थे। पाँच वर्ष बाद सब ठीक-ठाक होकर गौना भी राजी-खुशी हो गया। सुनते हैं इतना दान-दहेज दिया गया था कि चारो तरफ तहलका मच गया और लखनऊसे लाहौर तक खत्री-समाजमें अर्से तक इस लेन-देनकी चर्चा रही। इस प्रकार मन्दिरकी शानदार इमारत बनकर तैयार हो गई थी। सजावट और आडम्बरका तो कहना ही क्या था! मूर्ति भी प्रतिष्ठापित हो गई थी। देखनेमें सब ठीक एव सुन्दर था। पर वह मूर्ति पत्थरकी थी, उसमें

प्राण न था, चेतना न थी, जीवन न था ! विलायती रस्मोरिवाज, एटीकेट आदिसे अनभिज्ञ श्यामाजी-जैसी अपूर्व सुन्दरी युवतीके प्रति डाक्टर साहबका जरा भी अनुराग न था, सहानुभूति न थी, प्रेम न था, दया भी न थी ! सुहागरातके दिन ही किसी कुघडीमें कोई ऐसी गाँठ पड गई, सो जिन्दगी-भरके लिए पडी ही रह गई।

अप्रत्याशित हरकतें

वकील साहब सालों बाद कुछ-कुछ जान पाए कि उस समयकी कुल्लनाएँ लज्जावश अपने पति-गृहकी चर्चा ही पितृ-गृहमें नहीं करती थीं। पर मालूम होते ही श्यामाजी की माँने तुरन्त मर्जका इलाज किया। एक मेमको बेटीको अँगरेजी पढाने और विलायती तर्ज-कायदे सिखाने को नियुक्त किया। वह उन्हें अपने साथ कानवेंट स्कूलमें भी ले जाया करती थी। थोडे ही समयमें श्यामाजी सजधजकर खासी मेम साहबा बन गईं। पर पतिदेवकी निगाहें बदल चुकी थीं। गर्मियोंके दिन थे। सारा परिवार कश्मीरकी सैर करनेको गया हुआ था। श्यामाजी भी साथमें थीं। बेचारी हर समय हैरान रहती थीं। अब वे विलायती तर्ज-कायदे (श्राम खानेके लिए बाथ-रूममें जाना तक !) भी सीख चुकी थीं। बात-बातमें थैंक्स कहना तथा डीयर-डार्लिंगसे सम्बोधन भी प्रगल्भतासे निःसकोच होकर करना वे सीख गई थीं। पर विधि-विडम्बना ऐसी थी कि उनकी कोई भी प्रवृत्ति डाक्टर साहबको रुचती न थी। वे इन्हें देखते ही परेशान-से हो उठते थे। उनके मुखका विकार इतना स्पष्ट हो जाता था कि बेचारी श्यामाजी सहम जातीं तथा अनजाने ही अट-सट बकने और अनायास ऐसी हरकत करने लगतीं कि देखनेवाला उन्हें सचमुच मूर्खा तथा पागल तक समझे बिना न रहता।

वह मनहूस दिन !

उस दिन सुबहसे ही डाक्टर साहबका दिमाग बिगडा हुआ था। वे बार-बार दांत पीस रहे थे। उनकी इच्छा होती थी कि पत्नीको गेंदकी तरह उछालकर पहाडसे नीचे पटक दें, पर जैसे उनकी कुछ पेश न आती थी। डाक्टर साहबके पिता, जो स्वय भी डाक्टर ही थे, इस बातको लक्ष्य तो बराबर कर रहे थे, पर उस दिन उन्होंने पत्नीके प्रति सदय रहनेके बारेमें कुछ कह-सुन भी दिया था, जिससे उनके साहबजादे और भी कुढे हुए थे। इतनेमें होनीकी मारी

इस भद्दी हरकतसे इतने
सिर पीट लिया। और
तथा कठोर वाग्बाण सुनने
धक् करता है, लेखनी काँप
डाक्टर साहबने अपने निजी
होकर श्यामाजीका सामान
"अभी जाकर मोटरसे राव
आगे लखनऊ तकका टिकट
बस, इसके आगे और कोई
हुक्म-अदूलीका तो कोई
जैसे स्वय मरने-मारनेको
मजाल क्या कि चूँ भी कर

विलायती एटीकेटसे
भर ही समझा कि उन्हें इस
पहले वे यह बात नही
पिताके घर जानेके बजाय
थी। अब इस नई विद्याने
कला भी सिखा दी थी !
मुझे बताया कि उस दिनके
उनकी रातको स्वय जाकर
जिसके कारण वे इतने विषम
हरकतका ही परिणाम था
मस्तिष्कका सन्तुलन खोकर
लाल धागेसे सी डाला था !
माताजीने उस दिन लखनऊ
घायल हृदयको मेरे सामने

दादी, माँ आदि सभीने
आँखों देखी। वे लोग उसे
थे, पर ऐसा करनेसे
करनेपर कहीं वे (उनके पति)
दादाजी पहले ही स्वर्गवासी
बिना पतवारके डगमगाती हुई
लडकीको और भी पढाया
तो आप ही पतिको वशमें

बेतुकी

मेरे बहुत बार अनुनय-
के मुँहसे निकला था—"उस

कभी हो ही नही सकता। मेरी आँखें धोखा खा सकती है, मैं गलत देख सकती हूँ। वे कभी ऐसे नहीं हो सकते।"

मुझे उनकी इस बेतुकी श्रद्धापर गुस्सा आ जाता। मैं आपेसे बाहर हो जाती। जो-सो बक जाती। पर वे अपने हाथसे मेरा मुँह बन्द कर देती, अपने कानोपर हाथ धर लेती। कहती—"बेटी, मेरे लिए, ईश्वरके लिए, इतना जुर्म न करो। मेरे देवताको गालियाँ न दो। मेरे पिछले जन्मके पाप मेरे सामने आए है। मुझे और काँटोंमें न घसीटो।" मुझे विवश चुप हो जाना पडता। मैं मन-ही-मन खिझ जाती और उसका बदला भी उन्हींसे लेती। उन्हें असत्य गरम-नरम बातें कह जाती, पर वे थी कि उफ़ तक न करती। अपनी साक्षात् जन्मदातृ माँ भी कभी इतना सहन नही करेगी, जितना उन्होने मेरी बातो को किया।

तबसे कई बार उनके श्वसुर-गृहमें जाकर रहनेकी चेष्टा की गई। श्वसुर मरे, जेठ मरे, देवर मरे और वे, जिन्हें कभी देखा-भर था, भी ससारसे चल दिए, पर श्यामाजी के मनका काँच टूटकर फिर जुड न सका।

माताजीने वर्षों मेरा साथ निभाया। कभी-कभी तो मेरी अपनी स्वर्गीया माताजी भी उनके मेरे प्रति इतने गहरे मातृत्वके भावसे व्यथित-सी हो जाया करती थी। वे मुझे बार-बार याद दिलाती कि 'तेरी वास्तविक जननी तो मैं ही हूँ।' यह सच था, पर माताजीका मेरे प्रति वात्सल्य सदा निश्छल-अविचल रहा। उन्हे विवश हो अलग तो रहना ही पडा, पर उनका मातृत्व अब भी मेरे चारो ओर छाया हुआ है। आज भी उनका मेरे प्रति वही प्रेम है, वही अपनत्व है, वही स्वय भूखी रहकर मुझे खिलानेमे सतोषका भाव है।

सिंदूर और काँचकी दो चूडियाँ

प्रभात चार बजेसे लेकर रात ग्यारह बजे तक बच्चों—अपनी बहनके नाती-पोतो—में माताजी ऐसी घुली-मिली और व्यस्त रहती है कि दम लेने तकको अवकाश नही। हरि-भजन भी साथ-साथ चलता रहता है। प्रतिदिनके भजनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष माघ महीना इलाहाबाद में गगाकी ठण्डी रेतीपर बनी कुटियामे बीतता है और नित-नियम ही उनके प्रतिदिनके साथी हैं। आज लगभग सत्तर वर्षकी उम्रमें भी उनके चेहरेपर वही तेज है, वही नूर है, और वही लाली है। डाक्टर साहबकी एक पूरी जवानी की फोटो उनके पूजाके सामानमें रखी है, जिसे उन्होने विलायतसे इन्हें भेजा था। उसपर उनके हस्ताक्षरके साथ सिर्फ 'सप्रेम' लिखा है। एक वयोवृद्ध देवीको छोटे-से तरुण किशोरसे दिखाई देनवाले प्राणीकी प्रतिरूपम पूजा करते देख कुछ अटपटा-सा अवश्य लगता है, पर वे इन सब बातोंसे बहुत आगे हैं। सदा ही उनकी सुबहकी पहली प्रार्थना यही होती है—'भगवान, मेरे अपराधोको क्षमाकर। मुझे अगले जन्ममे भी यही पति प्राप्त हो।' और इसके बाद वे अपनी झोली फैलाकर भगवानसे भिक्षा माँगती हैं—"नाथ, मुझे कृपाकर बस एक वरदान अवश्य देना और वह यह कि मरते समय मेरी माँग सिंदूरसे पुती रहे, मेरे हाथोकी दो काँचकी चूडियाँ मुझे तब भी सुलभ रहें।'

अभी उस दिन एक पोस्टकार्ड मिला। लिखावट देखते ही कुछ कँपकँपी-सी अनुभव हुई। लिखा था—'बेटी, मेरा सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया! अब यह अभागी विधवा भी हो गई! क्रिया सारीकको होगी। जाऊँगी तो हूँ ही। —वन्देस्त श्यामा।'

पत्र मूर्तिमान् दुर्भाग्यका प्रतीक था। माताजीको क्या दिलासा दूँ? कैसे धीरज बँधाऊँ? उनके सौभाग्य-विवर्जित मलिन मुखको इन आँखोंसे कैसे देखूँ? उनकी चुटकी-भर सिंदूर और दो काँचकी चूडियोंकी भीख भी ठुकराई जा चुकी है!

पर वे सब सह लेंगी। कोमलताके समान ही मनुष्य की कठोरता और सहनशीलताका भी पार नहीं है!

मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो कौन हँसेगा जगमें ? : श्री दिवाकर

तेरे आँसू देख सके जग, इससे पहले ही मिट जाना,
जीना तो शूलोंपर, अगारोंपर भी चलकर मुसकाना,
सम्य जिधर है बढते जाना, कितने ही रोडे हों मगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?
तेरी भाषा जगमें जीवन-ज्योति जगाती, धीर बँधाती,
चिर-निद्रामें लीन सुप्त जन-जीवनमें चेतनता लाती,
पतन और उत्थान विश्वका बसता है तेरे ही पगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?

रवि-शशि तेरी ही आँखें हैं, जिनमें जगको मिला उजाला,
धरती तेरी ही छाती है, जिसने जगका भार सँभाला,
सृष्टि-प्रलय तेरे इगित, है प्रगति विश्वकी तेरे डगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?
मुझमें जगके प्राण, वायु भी तेरी श्वासोंमें पलती है,
नियति बनी दासी मेरे सकेतोंपर डरती चलती है,
तेरा ही सौंदर्य झलकता विस्तृत अम्बरकी जगमगमें,
मेरे कवि यदि तू रो देगा, तो फिर कौन हँसेगा जगमें ?

स्व० हरिहरनाथ शास्त्री

श्री अलगूराय शास्त्री

१९२०का असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया था। कलकत्तमें जो प्रस्ताव स्व० लाला लाजपतरायजीकी अध्यक्षता में स्वीकृत हुआ उसपर मत लेनके पश्चात लालाजीन अध्यक्ष पदसे यह घोषणा की कि म इसके विरुद्ध हूँ। असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके स्वीकृत होनका परिणाम यह हुआ कि स्कूल और कालेजके छात्रोन अँगरेजी शिक्षाका बहिष्कार किया। इसीके फल-स्वरूप आज जो हम बहुतसे काग्रसके कार्यकर्ता ह आपसम मित्र पाए क्योंकि हम सब एक ही

स्व० हरिहरनाथ शास्त्री

पथके पथिक थ। हममें से जो जहा था अपनी पढाई छोडकर राजनीतिमें कूदा। हमारे नताओमें बहुतोकी राय यह थी कि विद्यार्थियोंसे अँगरेजी ढाचेकी पढाई छोडनकी प्ररणा के साथ उनके लिए हमें राष्ट्रीय शिक्षा प्रणालीकी व्यवस्था

और कालेजको छोड हुए इन सस्थाओंम प्रविष्ट हुए करनमें लग गए। इसी और म काशी विद्यापीठमें हमारा यही प्रथम मिलन आजमगढका। इन दोनो जैसे इन दोनो जिलोकी सीमा जा भविष्यम सामन मुझ और हरिहरनाथको हमारे हृदयक कोट मिल सीमाएँ मिलती गईं। स्नहक जोड जुडते गए। अकाल मृत्यु हुई तो उसस एक बाहु कट गई या एक बुद्धिका कोई एसा पार्श्व ढह तो है किन्तु अक्षुण्णताको

विद्यार्थी

१९२०में हरिहरनाथ प्रथम वर्षके विद्यार्थी थ हमारा उनका कोई परिचय विश्वविद्यालयमें प्रविष्ठ पढाईको समाप्त किया। आदिके कार्योंम पड गए काशी विद्यापीठमें पढनमें पकडा किन्तु कोतवालीके क्योंकि बाबू भगवानदास थियोंकी गिरफ्तारीको जो विद्यार्थी पकड जा चुके छाडकर इसपर अल ल ज यही कारण है कि यद्यपि सहपाठी थ परन्तु स्नातक बन चुका था। बैचम हरिहरनाथ आदि

स्वमेव घाटमें अगस्त-कुंड मुहल्लेके एक मकानमें रहा करता था। पढ़ाईका काम भी मेरा दर्शनशास्त्र था और हरिहर-नाथका इतिहास और राजनीति। इसलिए एक ही संस्थाके विद्यार्थी होते हुए भी हम दोनोंका मिलन प्रायः नाम-मात्र का ही होता था। हममें से प्रत्येक अपनी कोई-न-कोई विशेषता रखता था, क्योंकि सब विशेष भावनाओंको लेकर अज्ञात भविष्यकी खोजमें निकल पड़े थे। छोटी-छोटी गोष्ठियोंमें हम लोगोंमें से अक्सर विद्यार्थियोंकी उनकी विशे-षताओंकी चर्चा हुआ करती थी। ऐसे विद्यार्थियोंमें हरिहरनाथका प्रमुख स्थान था। जहाँ मेरे सम्बन्धमें विद्यापीठकी छोटी-छोटी गोष्ठियों और टोलियोंमें धार्मिक कट्टरताके लिए व्यंगात्मक और उपहास्य कटाक्षोंका प्रयोग होता था, क्योंकि मैं आर्यसमाजी था और वेदोंको ईश्वरीय ज्ञान मानता था, वहाँ तुलनात्मक ढंगसे हरिहरनाथकी उदारवृत्ति और स्वतंत्र-प्रज्ञ और प्रतिभाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती थी। इस प्रकार अपने दार्शनिक शब्दोंमें मैं हरिहरनाथको प्रत्यक्षवादी, बुद्धिमान दार्शनिक विचारवाला व्यक्ति मानने लग गया था और स्वयं अपनेको धार्मिक कट्टर भावनाओंके वशीभूत अनुभव करता था। हरिहरनाथ गीता पढ़ने और उसे कण्ठस्थ करते थे। अष्टाध्यायीके सूत्र भी याद करते थे। उनके जीवनमें मुझे यह विरोधी गुण देखकर आश्चर्य होता था और कौतूहल भी कि एक ओर वे मनुष्यके स्थानको, उसकी बुद्धिको, मर्यादाको धर्मशास्त्रोंमें अमर मानते थे और इस प्रकार बौद्ध धर्मकी प्रवृत्तियाँ उनके मनमें दृढ़ बनती जा रही थीं और दूसरी ओर उनके मनमें गीता आदिके लिए इतना मान और संस्कृत-काव्य पढ़नेकी ऐसी अभिरुचि थी। मेरी धार्मिक कट्टरताने मुझे उनकी ओर और आकृष्ट किया, दूर नहीं फेंका। कारण यह था कि बातचीतमें वे अपने पक्षका प्रतिपादन बड़े सुगम, सुन्दर और सहज ढंगसे अपनी मीठी मुस्कान, जिनमें शुभ्र मोतीकी तरह दमकते हुए उनके दाँत चमक आते थे, बिखरकर और कुछ सिर हिलाकर बिना किसी एक भी कटु शब्दका प्रयोग किए नकारात्मक प्रत्युत्तर देते थे। मुझे ऐसा लगता था कि मैं पूरे बलसे लाठी लेकर पानी पीट रहा हूँ। घंटोंके इस थकानपूर्ण परिश्रमके पश्चात् भी मैं सरस पानीको फाड़ नहीं पाता था, परन्तु स्वयं थक जाता था। मेरी कट्टरता का घड़ा उन चट्टानपर टकराकर फूट जाता था और मैं उनके लिए अपनेको ही दोषी पाता था, चट्टानको नहीं।

एक स्वतंत्र विचारकके रूपमें

ऐसे कोमल बुद्धि-कालमें जिन मैत्रीका यह मधुर वृक्ष आरोपित हुआ, उसका परिणाम भी इसी प्रकार होता गया और पूरे तीन वर्षके उस शिक्षा-कालमें हरिहरनाथ स्वतंत्र विचारक बनते गए और मैं कट्टर धर्म-प्रचारक। काशी-विद्यापीठके उस वातावरणमें मेरे लिए उपहास-ही-उपहास था और हरिहरनाथके लिए प्रशंसा-ही-प्रशंसा, क्योंकि गांधीजीके उस युगमें 'सत्यार्थप्रकाश' का नाम लेनेवाला तिरस्कृत ही माना जाता था। मेरे लिए 'सत्यार्थप्रकाश', उसके लेखक महर्षि दयानन्द और उनकी मान्यताएँ वेदोंका भाष्य-ऐसी बातें थीं, जिन्हें छोड़ना संभव न था। सच तो यह है कि मैं प्राण दे सकता था, किन्तु अपनी इन मान्य-ताओंको त्याग नहीं सकता था, जिन्हें मेरे वे प्राणोंसे प्यारे साथी मेरी मूढ़ग्राही वृत्ति कहा करते थे। हरिहरनाथ इस मूढ़ाग्रहके उपहासके लिए हँसी-हँसीमें 'बुढ़िया बावरी री, तू सन्ध्या क्यों नहीं करती ?' का गाना मन्द हासके साथ गा-गाकर आर्यसमाजी भजनोपदेशकों और उपदेशकोंका मीठा मजाक उड़ाते थे। यह उनके स्वभावकी मधुरता ही थी, जिससे उनका ऐसा करना मुझे न केवल असह्य ही न था, बल्कि इस कारण मैं उनकी स्वतन्त्र प्रतिभाके वश उनकी ओर आकृष्ट भी होता था। गांधीजीने जब 'सत्यार्थ-प्रकाश' की आलोचना की, तो मैं उनपर बहुत अनाप-शनाप बिगड़ा। किन्तु आश्चर्य है कि हरिहरनाथकी भावनाएँ वैसी ही होते हुए भी उनके प्रति मेरे मनमें कोई रोष कभी न आया। विद्यापीठके छात्र-जीवनमें जो वाद-विवाद, उत्सव आदि सार्वजनिक कार्यक्रम चलते थे, उनमें भी मैं अधिक भाग नहीं लेता था, किन्तु हरिहरनाथ उनमें अक्सर रहा करते थे। विद्यापीठके वातावरणमें आचार्य नरेन्द्र-देव आदिका जो प्रभाव था, उससे स्वतंत्र विचारधाराके लिए वहीं अधिक प्रोत्साहन था। अर्थशास्त्र और इतिहास के विद्यार्थियोंका अधिक बोलबाला था। दर्शनके विद्यार्थी हँसे जाते थे। अपने विषयमें मैं अपने समकक्ष विद्यार्थियों में अच्छा माना जाता था, किन्तु विद्यापीठके पूरे वायुमण्डल में हरिहरनाथकी ही गहरी छाप थी। विद्यार्थी जो पत्रिका निकालते थे, उसके सम्पादन और उसके लिए लेख आदि लिखनेमें हरिहरनाथका बड़ा हाथ रहता था। इस प्रकार विद्यार्थी हरिहरनाथके प्रति उनकी बुद्धि-विलक्षणता और स्वतन्त्र विचार-प्रवृत्तिके कारण एक सम्मानका भाव मेरे मनमें घर कर गया।

व्यापक कार्यक्षेत्रमें

१९२३में मैंने विद्यापीठसे 'शास्त्री'की उपाधि ली और १९२४में हरिहरनाथने। यह कौन जानता था कि हम दोनों फिर मिलेंगे और यह मिलन सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रका होगा। यह मिलन [illegible]

लाजपतरायके चरणोमें होगा और जीवनके आगेके दिन उस महापुरुषके नेतृत्वमें बीतेंगे। किन्तु ऐसा ही हुआ। जून, १९२४में हम दोनो लाहौर गए। हरिहरनाथके लिए आचार्य नरेन्द्रदेवजी आदिकी सिफारिश थी। मुझे ला० मोहनलाल और प० बलदेव चौबे, लाला लाजतपरायजीके चरणोमें ले गए। इस तरह हम दोनो लोक-सेवक-मण्डलके आजीवन सदस्य बने। मेरा सेवाका क्षेत्र मेरठकी कमिश्नरी और हरिहरनाथका बनारस था। काम अछूतोद्धारका मिला। मैं तो उसी कार्यके अन्तर्गत अबतक हूँ, किन्तु थोडे ही दिन बाद हरिहरनाथको मजदूरोमें कार्य करनेकी योग्यता-सम्पादनके निमित्त पूना भेजा गया और उसके पश्चात् वे कानपुरमें काममे लग गए। स्व० गणेशशकर विद्यार्थीके सम्पर्कमे वे वहां आए। अपनी कार्य-कुशलता के कारण चन्द्रमाकी कलाकी तरह दिन दिन चमकने लगे और बढने लगे और थोडे ही समय बाद इस क्षेत्रमें जो अपना स्थान बनाया, वह इस समाजग्राही कार्य-क्षेत्रमे किसी दूसरे आदमीको प्राप्त नही है। वे इतने ऊँचे उठेंगे, इसकी कल्पना तक हमें नही थी।

किन्तु जितना वे उठ सकते थे, अभी उतना उठ नही पाए थे। हम सबको अपने बुद्धि-चमत्कारसे चकित करनेवाले हरिहरनाथ भविष्यमे बडी देन रखते थे। हरिहरनाथका जीवन एक अधखिली कलीकी तरह पूरा सौरभ देनेसे पहले ही मौन हो गया। उनका जीवन-भ्रमर जिस कल्यानके लिए तडफडा रहा था, उसके पूरा होनेसे पहले ही कराल कालके हाथोने कमल-सहित उसे अपने मुंहमे रख लिया। दुर्दैवकी इस कठोरतापर हृदय विदीर्ण होता है। परन्तु इसमे वश किसका है?

राष्ट्रीय मजदूर-आदोलनका स्वरूप

सन् १९२०से लेकर '४२ तकके प्रत्येक आन्दोलनमें जो काग्रेसकी ओरसे चला, हरिहरनाथने जेल-यातनाएँ भोगी। फैजाबाद जेलमें सन् '३२में तथा लखनऊ सेण्ट्रल जेलमें हमारा-उनका साथ रहा। फैजाबादमें बहुत कम दिन रहा, क्योकि मेरे पहुँचते-पहुँचते ही वे बीमारीके कारण छूट गए थे। किन्तु सन् '४२में तो बरसो साथ रहे। यही समय था, जब दिन-के-दिन और रात-की-रात साथ-साथ कटे। एक-दूसरेको अत्यन्त निकटसे देखा। विचारो की परिपक्वता प्राय हो चुकी थी और इसी स्थितिमे एका-

हम लोगोके सम्मिलित
दार्शनिक विचारोकी छाया
विचार-शैलीमे दर्शाता था,
करते थे। जहाँ
मेरे कुछ तर्कोका जब उनसे
बताते थे कि मेरा सम्पर्क
पड सकता है, वहाँ
उनके मस्तिष्कका द्वार सदा
के प्रवेशके लिए उसमें
कुछ देनेकी क्षमता रखते थे
किसानो और मजदूरोमे
उन्होने वहाँ सबके सामने
इतिहास और तत्सम्बन्धी
करते थे, उससे उनका प्रकाड
छाप छोडता था।
सगठन उन्होने आगे चलकर
स्व० सरदार पटेल-जैसे
उसकी पूर्ण रूपरेखा
४४में ही लखनऊ सेण्ट्रल

कम्युनिस्टो द्वारा १९४
हुआ, उससे वे दुखित हुए।
में प्रभाव कितना घातक
हम लोगोके सामने जैसा
वे करते थे, वह वैसा ही हमारे
फल हुआ कि बाहर निकल
इस कार्यमे सहयोग देनेके
सीमित साधन और
इस आन्दोलनकी जो
बनाकर खडी कर दी, वह
मेरी समझमें कठिन प्रतीत
जबकि हर प्रकारकी बाधाएँ
समाजवादी दलके अपने ही
घोर उपद्रव मचानेवाले
क्षेत्रके हर कोनेके हर गोशेमें
और मिटानेमें सतर्क और
एक कुशल
हरिहरनाथ छोटे-छोटे

टूटती न थी। एक विचार दूसरेसे टकराता न था लड़ता न था। उसकी जैसे एक मंजिल होती थी। उक्तियोंमें पीछे तक होता था। तर्क प्रमाण-समर्थित वस्तु प्रतिपादन की ऐसी कला बहुत कम व्यक्तियोंमें मैंने देखी है। वे धीरे धीरे अपने पक्षका प्रतिपादन प्रारम्भ करते थे। प्रतिज्ञा-हेतु उदाहरण उपनय और निगमनके पंचावयव वाक्य द्वारा एक कुशल नैयायिकके नाई हरिहरनाथ अपने पक्षकी स्थापना करते थे। तर्क-संगत विचार प्रणालीके आधारपर ही हरिहरनाथने समाजवादी विचार होते हुए भी कांग्रेसका त्याग नहीं किया। मुझे अपने विचारोंका शत प्रतिशत साम्य इस दिशामें हरिहरनाथके विचारोंमें ही दिखाई पड़ा।

उस दिन वे बाहरसे आए। मैं पालम हवाई अड्डे पर उनकी पत्नी और मित्रोंके साथ उनको लेने गया। दूसरे दिन हमने साथ भोजन किया। शकुन्तलाजी उनके साथ थीं। मैं नहीं जानता था कि अपने प्यारे हरिहरनाथ के साथ यह अन्तिम भोजन और अन्तिम मिलन है। हाय हरिहरनाथ! तुम अद्भुत और अलौकिक थे। तुमने संसदमें अथवा विधान-सभा अथवा संविधान-परिषद्में कभी भूलकर भी तो श्रमिक समस्याके अतिरिक्त किसी अन्य बातकी ओर अपने ध्यानको जाने नहीं दिया। एक निष्ठा और एक व्रतसे केवल इसी एक समस्यापर अपने जीवन को उत्सर्ग किया और उसीपर ध्यान रखा। तुम सच्चे व्रती थे। रामभक्तका एक ही व्रत होता है—राम राम रटे राम राम रटूं राम राम जपूं। इसी प्रकार सोते जागते उठते-बैठते लिखते-पढ़ते और बोलते श्रमिकोंकी समस्या का समाधान ही तुम्हारे जीवनका व्रत रहा है और इस व्रत को पूर्ण करनेवालेको जो सद्गति प्राप्त होनी है उसको तुमने प्राप्त किया। आज तुम्हारी स्मृति हमें विह्वल करती है। तुम्हारा चित्र बोलने लगता है। तुम अमर हो!

स्व० 'रंजन'जी

श्री घनश्याम सेठी

हृष्ट-पुष्ट शरीर मस्तकके बाल आगे भागको ढंके चेहरा भारी छोटी-छोटी तितलीनुमा मूछें आखें छोटी पर चमकीली कद औसत सरल स्वभाव ध्येयके प्रति अडिग विश्वास और नैसर्गिक निर्भीकता—यह थे रंजन जी जो गत १८ जनवरीको केवल ३९ वर्षकी अवस्थामें हमसे सदाके लिए विदा हो गए! प्रो० रंजन (वास्तविक नाम रघुवीरसिंह) का जन्म उत्तर प्रदेशके टकेपुर नामक ग्राममें २७ दिसम्बर १९१६को हुआ था। उनके पिता जमींदारी धन्धा करते थे। कुछ काल तक वे ग्वालियर सरकारकी सेवामें भी रहे। कुछ समय तक क्षत्रिय महासभाके उपदेशक रहकर उन्होंने वानप्रस्थ ले लिया। सन् १९२०में रंजनजी हाई-स्कूलकी परीक्षा देकर स्वतन्त्रता संग्राममें कूद पड़े। नमक कानून भंग करनेपर प्रथम बार आपको जेल काटनी पड़ी। बाहर निकलनेपर आपने पक्का निश्चय कर लिया कि इस्वर स्वतन्त्रता-संग्राममें विदेशियोंसे लोहा लेना होगा। राजपूत रक्त उनकी धमनियोंमें बह रहा था निर्भीकता उनके खमीरमें घुली हुई थी। घरमें जमींदारी थी इसलिए उनके बुजुर्गोंको इस प्रकारकी देश-सेवासे चिढ़ थी जो जमीनें जब्त करा दे।

राष्ट्रीय आंदोलन और जल-यात्रा

कुछ समय बाद आप उच्च शिक्षाके लिए काशी विद्या पीठमें भर्ती हुए जहाँ सर्वश्री श्रीप्रकाश सम्पूर्णानन्द और आचार्य नरेन्द्रदेव-जैसे अध्यापकोंने इस कर्मठ व्यक्तिके आचरण को मांजा। १९३७में आपने एम० ए० और साहित्यरत्नकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सन् १९३९ तक प्रताप हाईस्कूल कानपुरमें प्राध्यापकका काम भी किया। १९४२ के आन्दो लनसे पूर्व आप वनस्थली बालिका विद्यापीठमें काम करते थे। परन्तु ज्यों ही वह उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ आपने उसमें अपना सक्रिय सहयोग दिया। इसी सम्बन्ध में आपको पकड़ लिया गया। मुकदमा चला। पर मुकदमेमें सरकार हार गई और तब मुगलों अभियुक्त के अपराधमें रंजनजीको अजमेर-जेलमें रखा गया। वहाँ भी आपकी निभयता रंग लाई। एक अन्य बन्दीके साथ आप अधिकारियों और पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंककर जेलसे भाग निकले! महीनों इधर उधर भटके फिरे। इलाहाबादमें पंडित सुन्दरलाल[illegible] प० बनारसीदास चतुर्वेदीके पास पहुँचे। वहाँ आप [illegible] उनके पास चार-पाँच महीने रहे। फिर मालवे दिशामें

एम० ए० करनेकी धुन सवार हुई। नागपुर जाकर आपने परीक्षा दी और विशेष योग्यताके साथ प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। रजन नाम आपने उन्हीं दिनों अपनाया था।

राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें

सरकारकी तलवार सिरपर लटक रही थी पर आप इस ओरसे निश्चिन्त और लापरवाह होकर अपने काममें संलग्न रहते। वर्धा पहुंचकर राष्ट्रभाषा प्रचार समितिमें आपने कार्य आरम्भ किया। वहां जो लापरवाही की वह आपको एक बार फिर जेल ले गई। यूनिवर्सिटीसे अपना डिपाजिट वापस मंगवाते समय आपने रघुवीरसिंह

स्व० रजन जी

मार्फत श्री रजन राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति वर्धाका पता दिया। पुलिस तो टोहमें थी ही और पुलिसको यह शक भी हो चुका था कि हो न हो प्रो० रजन और रघवीरसिंह एक ही व्यक्तिके दो नाम हैं। उंगलियोंकी शनाख्त करके पुलिसने आपको रघुवीरसिंह प्रमाणित कर दिया। फिर

फिर रजनजी वर्धा की हैसियतसे आपने सारे शाखाएं स्थापित कीं हिन्दीके मनमें श्रद्धा और सद्भावना अनेक भवन अहिन्दी प्रान्तोंमें रजनजीने ही शुरू किया था वाचनालय तथा प्रचार-संस्थान

मध्य एशियाकी

बहुत समय तक एक ही प्रतिकूल था। यों तो सन्यासियोंके लिए होता है पर यिक परिव्राजक थे। भ्रमण वे अवश्य करते थे। था। आपकी बड़ी अभिलाषा को देख समझ सकें। सब देशोंका भ्रमण वे कर सके हमारे पड़ोसी देश पुस्तकमें वे जो-कुछ भी बचा पाते वही

हैदराबादसे प्रकाशित f सम्पादन भी आपने किया श्रमके कारण उसका रूप एक का हो गया था। पर जब प्रकाशन स्थगित कर दिया गया की यात्राके लिए निकल जो उन्होंने लौटकर लिखे नि महत्वपूर्ण देन हैं। ये यात्रा स्याम श्रीलंका बर्मा तथा द्वीपोंसे सम्बन्धित थे हिन्द पत्रिकाओंमें पाठकोंको नजर

खेती बाड़ीका

यात्रासे लौटकर आप १९५२में आपका मन सामुदायिक आधारपर खेती थे। उपयुक्त भूमिकी ग्वालियरके समीप श्योपुर जीवनका एक नया दौर शुरू अन्तकी पृष्ठ-भूमि भी बना।

जब उन्होने किया, तो दिलने जवाब दे दिया। वे हृदय-रोग से पीडित हो उठे। हृदयकी गतिमें अन्तर पड गया और बुरी तरहसे हृत्पिण्ड विस्तृत हो गया। अभागा बुद्धिजीवी श्रमजीवी कैसे बन सकता है इस देशमें ? उनका यह नया प्रयोग एक भयकर रोगके रूपमें उनसे चिपटकर रह गया।

घातक रिक्शा-दुर्घटना

बहुत दिनो तक नागपुरके चिकित्सालयमें रहकर वे पुन हैदराबाद आकर बुद्धिजीवी हो गए और अग्रवाल महाविद्यालयकी प्रधानाध्यापकी स्वीकार कर ली। इस गभीर बीमारीमें भी उन्होने अग्रवाल हाईस्कूलको कालेजमें परिणत किया। कालेज बननेमें कई रुकावटे थीं, स्थितियाँ भी प्रतिकूल थी, परन्तु वे हतोत्साहित नही हुए। आखिर उनकी साधना और लगन रग लाई, उनकी चिन्ता का निवारण हुआ और हिन्दी-भाषियो द्वारा स्थापित यह स्कूल आर्ट और साइसके कालेजके रूपमे बदल गया और रजनजीकी देख-रेखमे बडी सफलताके सथ चल निकला। कालेजके उद्घाटनके एक-दो रोज पहले वे एक रिक्शा-दुर्घटनामें बुरी तरह घायल हुए और एक मास तक खाटने उन्ह नही छोडा। इस हादसेने उनके स्वास्थ्यपर बहुत बुरा प्रभाव डाला।

परिश्रमकी उन्हें सख्त मनाही थी। फिर भी वे निश्चिन्ततापूर्वक देशमे इधर-उधर विचरते फिरे। हाल हीमें पटनासे आए थे। रास्तेमे नागपुर उतरकर पत्नी तथा बच्चोको मिलते आए थे। १६ जनवरीको वे प्रदर्शनी देखकर लौटे। उस समय तक अस्वस्थताकी कोई सलामत प्रकट नही हुई थी। परन्तु आधी रातके समय अचानक उन्हें कै हुई और कुछ ही देरमें उनके शरीरका दाहिना भाग पक्षाघातका शिकार हो गया। तब उन्हें अस्पताल पहुँचाया गया और फिर वही जिन्दगी और मौत की कशमकश शुरू हो गई। 'कल्पना'-सपादक श्री मुनीन्द्रजी अन्ततक उनके पास थे। उनका कहना है कि ऐसा सघर्ष उन्होने बहुत कम देखा था। आखिर १७ जनवरीकी रातको मृत्युकी जीत हुई, जिन्दगी हार गई।

अपने पीछे रजनजी एक नि सहाय पत्नी और दो छोटे बच्चोके सिवा अपना बहुत-सा अप्रकाशित साहित्य छोड गए हैं। जीवनके सग्राममे एक वीर सैनिककी तरह रजन जीने सीना तानकर चोटोपर चोटें सही और कभी उफ् तक नही की। अपनी घुमक्कड-वृत्ति और पत्रकारिताके कारण रजनजी जमकर कही बैठ न सके। अत कोई स्थायी साहित्यकी चीज लिखनेका उन्होन प्रयत्न ही नही किया। पर स्वस्थ, सयत और ओजपूर्ण शैलीम लिखी गई उनकी स्फुट रचनाएँ भी उनकी प्रतिभा, परिश्रमशीलता और स्वतत्र चिंतनकी अच्छी परिचायक हैं। अपन स्वाभिमानके कारण वे कभी भी अपन-आपको या अपनी चीजो को प्रकाशम लानेको उत्सुक नही थ। इसलिए उन्हें प्रकाशम लाना और उनके स्त्री-बच्चोकी खोज-खबर लेना उन हिन्दी-भाषा-भाषियोकी जिम्मेदारी एव कर्त्तव्य है, जिनकी सेवाम राष्ट्रके इस सपूतने अपन जीवनके श्रेष्ठ अशको लगा दिया। जो एक बार भी रजनजीके सम्पर्कमें आए हैं, वे उन्हें भूल न सकेंगे।

आत्महत्या

श्रीमती सोमा वीर

"मीठे-रसीले आम दसहरी, मीठे रसीले ए-ए" सडकपरसे फलवालीकी अनवरत पुकार सुनाई दे रही थी। लेनेका मन न हो, तब भी मन कर आए—ऐसी ही मधुर आह्वान-भरी पुकार थी वह। सुमन्त बडी देरसे इसे अनसुनी कर रहा था। परन्तु ठीक द्वारके सामने खडी हो, जब फलवालीने पुन वही गुहार मचाई, तो सुमन्तकी उँगलियोने उसे बुला ही लिया।

दो सेर आम ले वह अन्दर आया। आम टोकरीमें रख दिए और कुर्तेकी जेबमें से पैसे निकालने लगा। परन्तु जेब खाली थी। उसने पुकारा—"चन्दा, मेरे कुर्तेकी जेबम पाँच रुपएका नोट पडा था न।"

"तो पडा होगा उसीमें।" अन्दरसे ही उसका तीखा स्वर गूंज उठा।

"इसमें तो नही है।"—सुमन्तने फिर पुकारा।

"नही है, तो मैं क्या करूँ?" और चन्दा दनदनाती हुई आ पहुँची। बोली—"चीज इधर-उधर रख देते हो और आफत आती है मेरी। इसीमें होगा, जायगा कहाँ?"

उत्तरमें सुमन्तने दोनो जेबें उलट दीं।

"तो मुझे दिखा क्या रहे हो? तुम्हींने रखे होंगे और कहीं।"—वह तुनककर बोली।

"नहीं, मैंने तो इसीमें रखे थे, मुझे अच्छी तरह याद है।

कलकी ही तो बात है। पाँच रुपएका कोयला लाया था और बाकी पाँच इसीमें रख दिए थे।"

"तब कौन ले गया? घरमें नौकर-चाकर है नही। एक महरी है, सो वह इस कमरेमें झाँकती तक नही। मैंने तो तुम्हारा कुर्ता छुआ भी नही। हाँ, यदि तुम्हारे लाडले ने चुरा लिए हो, तो मैं जानती नही।"

"क्या कह रही हो तुम ?"

"मेरी बातका तुम्हे विश्वास क्यो होने लगा भला! मैं दूसरी माँ जो ठहरी! बुलाकर पूछ न लो उससे। मेरी बात झूठ निकले, तो जो चोरकी सजा, सो मेरी सजा।"

सुमन्त हतबुद्धिकी तरह उसका मुँह ताकता ही रह गया। पाँच रुपए तो क्या, लडकेने कभी पाँच पैसे भी बिना पूछे नही लिए थे। परन्तु चन्द्राका तर्क भी तो असगत नही लगता था। लेनवाला और था ही कौन? हो सकता है उसे कोई जरूरत पड गई हो और बताने या पूछनका अवसर न मिला हो। उसने स्वर ऊँचाकर पुकारा—"किशोर, जरा यहाँ तो आना।"

किशोर सामने आ खडा हुआ। भोला-भाला-सा तेरह वर्षीय सुकुमार, जिसके नैनोम अभीसे प्रौढताकी गम्भीर छाप थी।

"तुमने इस कुर्तेम से रुपए लिए थे, बेटा?"—मृदु प्यार-सहित सुमन्तने पूछा।

"नही तो।"—उसने कुछ चकित होकर कहा।

"तुमने नही लिए, तो किसने लिए?"—चन्द्रा व्यग-पूर्वक बोली—"और कौन आता है इस कमरेमें?"

कारण-अकारण विमाताके ताने व धमकियाँ सुनते-सुनते किशोरका कोमल हृदय छलनी हो चुका था। सिर झुकाकर सब-कुछ सुन लेना और कुछ उत्तर न देना, यही प्रण वह किए बैठा था। किन्तु चोरीका अपराध सिरपर मढे जाते देख वह बेतरह चिढ गया। एक टेढा उत्तर दिए बिना वह न रह सका। बोला—"'मुझे क्या मालूम? मै *क्या दिन-रात तुम्हारे कमरेका पहरा देता रहता हूँ?"*

सुमन्त दग रह गया। चन्द्रा रोषमें भरकर चीख उठी—"जवाब देता है नालायक! ऐसे बेटेसे तो बेटा न होना अच्छा। चोरी करता है और ऊपरसे झूठ बोलता है! लाज नही आती तुझे जरा-जरा-सी बातपर झूठ बोलते?"

एक बार जबान खुल जाती तो उ

कभी लाज नही आती, तो मुझे
ही तो बेटा हूँ न!"

"देख रहे हो! सुन रहे
के नयनोंसे टप्-टप् आँसू

"छि किशोर, क्या माँसे

"बस, केवल यही?"—
उठी—"और कोई बाप
बेटेकी चमडी उधेडकर रख
बढता जा रहा है। आज तो
कल घरका सारा सामान
नही।"

"देखो किशोर"—सुमन्त
"माता-पितासे पूछे बिना रुपए
चाहे कितना ही आवश्यक
दो अब भी कि किसलिए

किशोर तडप उठा।
है, डैडी? जब मैं कह रहा हूँ

चन्द्राने मुँह बिराकर कहा
है न जो डैडी झटसे विश्वास
कमीनेपनकी बाते नही करेगा
कैसी सतवन्ती थी!"

दिवगता माँका यह
जा पहुँची! उचित-अनुचि
की आँखोमें खून उतर आया
विमाताके मुँहपर जड दिया।

चन्द्राकी आँखोमे आँसू
हथेली रख वह फलवालीको पै

अपनी आँखोके सामने
भेद रोषसे सुमन्त काँप उठा।
उठा और गिरा। उसे होश
रहा है और किशोर चुपचाप
एक आह तक न निकली, एक
उसका छोटा लडका आकर उ
"क्या है डैडी? क्यो मार रहे

अबोध बालकका क्रन्दन
आया। उसे गोदमें उठा उसके
छिपा वह तेजीसे बाहर निकल

हँसती थी गाती थी और वह मचल मचलकर लोटता था। मा दुलार कर-करके मनाती थी। पर आज कोइ नही है एसा जिसकी गोदमें मुँह छिपा वह जी भरकर रो सके। तब रोनेसे क्या लाभ?

(२)

भाग्यवान सुख-स्वगमे बसते ह कठोर वास्तविकताकी यह निमम धरती है अभागोका। किसीका भाग्य अधिक खोटा है, किसीका कम। बस केवल इतना हा तो। धरतीपर राजाके पुत्र भी पलते ह और दान-अभाग राहका धूलिमें लोटनवाले अनाथ भी। सबकी सुधि लेनवाला वह ईश्वर तो एक हा है न। वही तो है जगत नियन्ता जगत पिता जड चेतनका विध्वसक और निर्माता।

क्षणिक सुख भागकी पूर्तिके लिए जो पुरुष उसके जन्म का कारण बना था स्नहकी उस कडीके टट जानपर यदि वह आज अपना उस भूलके लिए पश्चात्ताप करता है तो क्या उसके लिए यह उचित है कि जोंककी तरह उससे चिपटा रहे? मूक बधिर-पगु बन उसके घणित आश्रयमे जीवनके क्षण गवाता रहे? जब पत्थरमे रहनवाला अदना कीडा भी अपनी उदर-पूर्तिके लिए साधन जुटा लता है तब दो हाथ और दो पैरोवाला स्वस्थ सबल वह मानव की सन्तान क्या अपन जावनका लक्ष्य स्वय न खोज सकेगा? किशोरका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काप रहा था। दोनो हथेलियोंके बीच मुख छिपा वह तकियेमे सिर गडाकर पड रहा।

और आत्मग्लानिसे सुमन्तका हृदय फटा जा रहा था। आज उसने मातहीन किशोरको मारा था! अपन शिशुको अपन लाडलेको!! क्योंकि वह अपनी माका अपमान सहन नही कर सका था? सुमन्तका हृदय रो रहा था पर उसका गात जल रहा था। उसका अन्तमन उसे बार-बार धिक्कार रहा था—अपना भावनाए तो भुला हा चुका था अभागे उसकी भावनाओंका भी आदर न कर सका तू! छि! मनुष्यता भुलाकर एकदम पशु बन बठा तू जिस हाथमे मधु-शय्यापर पडी पत्नीकी अलक सँवारी थी जिस हाथसे उस मराल-बाल-कवलिताका हाथ थाम वचन दिया था कि केवल पिता हा नही उसके अभागे शिशुकी माँ भी बनकर रहेगा आज उसी हाथसे अपन उस रक्त बिन्दुके अन्तस्तलमे अपने प्रति घोर घृणा भर दी! माँ बनना तो दूर रहा पिताका कर्तव्य भी पूरा न कर सका! हाय अभागे क्या यह घृणा अब इस जन्मम दूर हो सकेगी? क्या वह शिशु अब भी तेरा वही लाडला बटा बना रह सकेगा?

क्या नहा रह सकेगा? पिता-पुत्रकी ममताका बन्धन इतना कच्चा नही कि एसा आसानासे टूट जाय। —सुमन्तन जोरसे कहा। हृदयके उद्गार मुखसे निकल पड तो उसके टूटते हृदयको और बल मिला। उसन मन-हा-मन साचा कि वह पुत्रसे क्षमा माँगेगा और भविष्यमें उसे चन्द्रासे दूर ही रखेगा।

लडका अब बडा हो गया है। जरा-जरा-सी वस्तु के लिए पसे मागनेम उसे सकोच होता होगा। जहासे भी हो जस भी हो उसे कुछ जब-खर्च अवश्य देना होगा। अब वह अबोध नहा समझदार है। घरका आर्थिक स्थिति उस भलाभाति अवगत है। वह कभी पसे व्यय नही कर सकता। फिर वह स्वय भा इतना दरिद्र नहा कि बच्चेकी एक साध भी पूरी न कर सके। पत्नीके लिए [illegible] लिपस्टिक पाऊडर आदिमे न जान कितने रुपए फुक गए किन्तु किशोरका एक भा बाल इच्छा पूरा न हो सका। एक कैमरा यदि खरीद ही लिया गया होता तो कोइ बडा भारा कमा न आ जाता। [illegible] द्वारा पश्चात्ताप को पराजितकर सुमन्त मन-हा मन उत्फुल्ल हो उठा। उस दिन कार्यवश वह बाजार न जा सका और इस कारण पुत्रको समक्ष बुलानका साहस भी न कर सका।

(३)

अगले दिन दफ्तरसे लौटते समय सुमत एक सुन्दर-सा कमरा खरीदता लाया। आज उसके पराम मानो पख लग गए थ। पुलकित मनके आगे बार-बार एक भावाकलित दृश्य नाच उठता था। जब वह किशोरके हाथमे कमरा देगा तो उसके नेत्र एकदम चमक उठग। वर्षोंकी अधूरी इच्छा पूरा होते देख उसका [illegible] फिर [illegible]। तब उसे अपन अकमे भर उसका मस्त चूम लगा और अपने अपराधके लिए क्षमा भी माग लगा। न जान कबसे उसने पुत्रका चुम्बन नहा किया। यह बात भा आज उसे याद आई। वह अधीर हो उठा। उस [illegible] [illegible] स्पश पानके लिए उसका वात्सल्य फडक उठा।

घरकी चौखटपर पर रखते ही उसने पुकारा— किशोर अरे ओ किशोर।

किसे पुकार रहे हो! —चन्द्रान आकर कहा— कलसे उसका तो कहा पता भी नहीं है। वह तो एकदम आवारा हो गया है।

कलसे? कहा गया है? क्या वह सारा रात बाहर रहा?

[illegible] म ता [illegible] है! दूसरा माँ जो ठहरी! —चन्द्रा तनकर बोली— [illegible] भोजन नहीं किया। बुलाने गई तो मुँह ढककर पड रहा।

शामको मैंने उसे बाहर जाते देखा। सीधे-से पूछा कि कहाँ जा रहा है, तो अँगूठा दिखाकर चलता बना।"

"रातको भी नहीं आया?"—मूढ भावसे सुमन्तने पूछा।

"कह तो रही हूँ कि नहीं आया।"—चन्द्रा झुँझला उठी।

"तब तुमने मुझे रात ही क्यों नहीं बताया?"

"बताती क्या? मुझे क्या पता था कि हज़रतने रात-भर आवारगी करनेकी ठानी है! नौ बजे, दस बजे, नहीं आया, तो मैं भी द्वार बन्दकर लेट रही। सोचा था कि आकर खटखटायगा, तो खोल दूँगी।"

"सच पूछो, तो वह तुम्हारे ही डरसे नहीं आया।'—सुमन्त एकाएक गरज उठा—"लौटनेमें उसे कुछ देर हो गई होगी और आधी रात तुम्हारी विष-भरी वाणीकी अनवरत गूँजसे मुहल्लेको जगाना उचित न समझ वह बाहर ही कहीं पड रहा होगा।"

"हाय री माँ, मुझे मौत क्यों नहीं आ जाती!"—चन्द्रा तत्क्षण पैर फैलाकर रोने बैठ गई—"मेरी बातोंमें ऐसा ही जहर भरा है, तो मुझे ही जहर क्यों नहीं पिला देते? तुम बाप-बेटे मजेसे रहना फिर। तब मैं "

पर आज उस क्रन्दनपर सुमन्तका ध्यान न गया। उसके नेत्रोंमें अश्रु छलक आए। बोला—"वह अवश्य घर छोडकर भाग गया है, चन्द्रा! उस मातृहीन बालकको कल मैंने मारा था। हाँ, अपने इन्हीं हाथोंसे। उफ्!'

रोना छोड चन्द्रा भिन्ना उठी—"मारा था, तो क्या हुआ? मार किस लडकेपर नहीं पडती? इसीलिए क्या सब घर छोडकर चल देते हैं? अरे छुट्टीके दिन हैं, मौज कर रहा होगा कहीं। आ जायगा शाम तक।'

सुमन्तने अपना सिर धुन डाला—"नहीं, अब वह नहीं आयगा। कभी भी नहीं। उस सुकुमार शिशुकी कोमल देहमें मेरा ही रक्त है, चन्द्रा। गहन अपमानका ऐसा तीखा घूँट वह कदापि न पी सकेगा। मेरी मार कदाचित् वह सहन कर लेता, किन्तु उपेक्षाने उसका दिल तोड दिया होगा। कल सारे दिन और सारी रात मैंने उसकी खबर नहीं ली। उफ्, मैंने अपने हाथों अपने पुत्रका जीवन नष्ट कर डाला!"

"अजीब आदमी हो तुम भी। क्रोधमें भरकर यदि चला भी गया, तो लौट आयगा शाम तक। भूख लगेगी,

दिन-भर सडकोंकी धू
लौटा, तो द्वारपर ही
उठ ही न सके। चन्द्रा
बैठी थी। देखते ही उसे
अपना सर्वस्व, अपने
खोज करेगा वह अपने
सुमन्तने। एकके बाद
अडौसी-पडौसी, निकट
खबर देना तो नहीं भूला
पता न लगा। रस्सी
भी भारी पड जाती है।
सुनते सुमन्तको भी
सच ही नालायक था।
माँ-बापका मुख काला
तरहसे अच्छा ही हुआ।
चिन्ता-जर्जरित तन-मन
रोया करता था। धीरे-

चन्द्राने आकर
तुम्हारे सपूतका समाचार
अन्धकारमें जैसे
सिर उठाया।
चन्द्राने कहा—"ये
वे कल सनीमा गई थीं।
लाडले खडे थे और संगमें थे
सुमन्तका सिर झुक
"मैं यह नहीं मान सकता।"
उसका स्वर निश्चयात्मक
रहा था कि जिस लडकेकी
अभी केवल आठवीं कक्षामें
दो पैसेकी मजदूरी कर लेने
एक पखवाडेसे वह कहाँ
चार दिन बाद स्कूल खुल
होता नहीं? माना कि उ
किन्तु इसका यह अर्थ तो
तभी बूढ़ी महराजिन
आते ही बोली—"अरे

ही मैं अवाक् रह गई, बेटा। बच्चेका फूल-सा मुख कुम्हला-कर रह गया है। गोदमें बैठाकर पूछा—'इतने दिन कहाँ छिपे रहे, लल्ला? तुम्हारे बापू खोज-खोजकर हार गए।' तो वह चुप बैठा रहा। रामकिशनने ही कहा—'वसन्त सिनेमामें नौकरी कर ली है इसने। कहता है कि दिनको पढ़ूँगा और रातको कमाऊँगा। मैंने कहा—'यह कैसा पागलपन है, भैया? यह क्या तेरी नौकरी करनेकी उम्र है? खाओ-पिओ और ' पर उसने तो मुझे बात ही पूरी न करने दी। चिढ़कर बोला—'और ये जो जरा-जरासे लड़के दिनमें भीख माँगते हैं, जेब काटते हैं और रातको चोरी करते हैं, ये क्या इनकी भीख माँगनेकी उम्र है, मिसरानी माँ?' मेरी तो बोलती बन्द हो गई, बेटा। क्या कहूँ उस बच्चेसे, समझ न सकी। वह फिर बोला—'मैं जानता हूँ मिसरानी माँ कि तू क्या कहना चाहती है। इसीलिए मैं किसीसे मिलता नहीं। किसी जान-पहचानवालेको देखते ही छिप जाता हूँ। जाने किशन भैयाने कैसे देख लिया मुझे। मैं जानता हूँ कि जो कोई मिलेगा, यही कहेगा कि गलती तुम्हारी ही है किशोर। जाओ, घर जाओ। माँ-बापसे माफी माँग लो। भले लड़कोंका यही काम है। गलतीकी बात तो मैं जानता नहीं, मिसरानी माँ, बस इतना जानता हूँ कि अब जीते-जी उस घरमें पैर न रखूँगा। ये दोनों आँख फोड़ लूँगा, पर उस घरकी मालकिनका मुँह न देख सकूँगा।'

बात पूरी होते-न-होते चन्द्रा उठकर झनाकेसे अन्दर चली गई। सुमन्तके नयनोंसे झर-झर नीर गिर रहा था। सिसिककर बोला—"न-जाने कैसी मत मारी गई थी मेरी भी मिसरानी माँ, जो मैंने दूसरा विवाह कर लिया। फूल-सा बेटा था। उसके सहारे एक नहीं, सात जिन्दगी कट जाती। अब तो तीन-तीन जिन्दगियाँ बर्बाद हो रही हैं।'

मिसरानीके नयन गीले हो उठे थे। पर उसने झिड़ककर कहा—"छि बेटा, ऐसी बात नहीं कहते। जिन्दगी बर्बाद हो तेरे दुश्मनोंकी। लड़ाई-झगड़ा किस घरमें नहीं होता? चलना कल मेरे साथ। माँ-बेटा चलकर उस पाजीको मना लायेंगे।'

"वह अब नहीं आयगा, मिसरानी माँ।

"आयगा कैसे नहीं? इस तरह अधीर नहीं होना चाहिए, भैया। आखिर वह तेरा ही तो बेटा है। जन्मकी माया-ममता ऐसी आसानीसे थोड़े ही टूट जाती है। वह कहाँ चल दी? ले ये पाँच रुपए दे देना उसे। मैं चली।'

"कैसे रुपए?"

"अरे, अभी उस दिन एकाएकी किशनाके ससुर आ गए थे। घरमें कुछ था नहीं। मैंने सोचा, चिन्ता क्या है, अपनी लक्ष्मी बहूसे ही माँग लाऊँ। पहले तो वह बोली कि है नहीं। मेरा जी धक्-से हो गया। तभी वह सोचकर बोली कि देखूँ शायद उनके कुर्तेकी जेबमें पड़े हों। कोयला तो थोड़ा-सा ही लाए थे।"

"चाची!"—सुमन्तका हृदय बैठा जा रहा था।

"क्या करूँ सुमन्त, इससे पहले लौटा ही नहीं सकी, बेटा। कल ही तो किशनाको तनख्वाह "

उसकी मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई, क्योंकि उस नोटको सुमन्त टूक-टूक किए डाल रहा था। उसकी लाल-लाल ज्वाला उगलती आँखोंको देख वे डरकर बोली—"सुमन्त यह क्या कर रहे हो, भैया? लछमीपर गुस्सा नहीं उतारा जाता।"

सुमन्तने उन फटे टुकड़ोंको मुट्ठीमें भींचकर मसल डाला और कहा—"किशनको अभी भेजना चाची, मैं अभी उसे लेने जाऊँगा।"

द्वारकी ओटसे चन्द्रा बाहर निकल आई। बोली—"वह आवारा है, बदचलन है, वह मेरे घरमें पैर नहीं रख सकता।"

सुमन्तने फटी-फटी आँखोंसे उसकी ओर देखा, मानो उसे पहचानता ही न हो। फिर धीर-गंभीर भावसे कहा—"घर जितना तुम्हारा है, उतना ही उसका भी है। रही आवारा होनेकी बात, सो वह अभी आवारा नहीं हुआ है। किन्तु यदि तेरी सोहबतमें रहा, तो निश्चय ही आवारा हो जायगा।"

चन्द्राकी सारी देहमें मानो आग लग गई। तड़पकर बोली—"अपनी बेजबान पत्नीको झूठ-मूठ कलंक लगाते तुम्हें लज्जा नहीं आई? मुझे बदचलन कहनेसे पहले '

'मेरी ज़बान कटकर क्यों नहीं गिर गई, यही न?"—सुमन्तने हँसकर कहा—"महारानी, तुम्हारी ज़बानकी मिठाससे मैं भलीभाँति परिचित हो चुका हूँ। उसमें अब और अमृत घोलनेका प्रयत्न मत करो। सुन लो कान खोलकर कि किशोर यहीं रहेगा, इसी घरमें। और जैसा व्यवहार तुम नन्हेंके साथ करती हो, वैसा ही उसके साथ भी करना होगा। नहीं तो याद रखना, मैं तुम्हारे नन्हेंको घरसे निकालकर आवारा बना दूँगा।"

चन्द्राने तड़पकर अपना अन्तिम अस्त्र प्रयोग किया। कहा—"यदि वह इस घरमें आयगा, तो मैं अपने नन्हेंको मार, स्वयं आत्म-हत्या कर लूँगी।'

सुमन्त ठठाकर हँस पड़ा। कहा—"तुम्हारी आत्मा शेष है ही कहाँ, जिसकी अब हत्या करोगी? उसकी तो तुम नित्य सौ-सौ बार हत्या किया करती थीं, जबकि तुम दो अबोध बालकोंमें भेद किया करती थीं। किसीके बाल-सुलभ चपलतापर प्रेम उमड़नेपर भी जब तुम अपनी आत्माका गला घोंट, उसका निरादरकर दूसरेसे स्नेह करती थीं। घुट-घुटकर आत्म-हत्या तो बहुत कर चुकीं, अब हँस-हँसकर जीना भी सीखो। आओ मिसरानी माँ, चलें।'

रूसमें पट-परिवर्त्तन

राजनीतिका एक विद्यार्थी

कम्युनिस्ट रूसके सम्बन्धमे बाहरी दुनियाकी जानकारी इतनी अपर्याप्त और अटकलोंपर आधारित है कि वहाँ होनेवाले बडे-से-बडे परिवर्तनोंके बारेमे भी निश्चयपूर्वक और सप्रमाण कुछ कह सकना बडा कठिन है। इसीलिए गत ८ फरवरीको जब स्तालिन द्वारा चुने गए प्रधान मत्री मलकोवने अपने पदसे इस्तीफा देनेकी घोषणा की, तो सारी दुनिया स्तब्ध-सी रह गई। सरकारी रेडियो, अखबारो, पार्टी और नेताओकी ओरसे एक स्वरसे सामूहिक और सगठित रूपसे जो प्रोपेगेंडा होता है, वह इतना कृत्रिम और परस्पर विरोधी बातोसे भरा होता है कि उसकी सचाई पर बाहरी दुनियाको विश्वास ही नही होता। अत यहाँ हम मास्कोसे पत्रो और रेडियो द्वारा हुई घोषणाओके आधारपर ही इस पट-परिवर्त्तनके कारणो एव इसकी पृष्ठ-भूमिपर कुछ प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे।

कठोर पेशबदी किस लिए ?

गत फरवरीके प्रथम सप्ताहमे सुप्रीम सोवियत (रूसी पार्लमट) का एक सयुक्त अधिवेशन बुलाया गया। यह अधिवेशन आम तौरपर मार्च-अप्रैलमें होता है, पर इस बार विशेष कारणोसे कई सप्ताह पहले ही बुला लिया गया। इसके १३४७ सदस्योके सामने १९५५का बजट पेश हुआ और मलोतफने विदेशी नीतिपर भाषण दिया। बजटपर सरकार और पार्टीकी नीतिके सम्बन्धम अर्थ-मत्रीका नही, कम्युनिस्ट पार्टीके प्रधान मत्री क्रुश्चेवका भाषण हुआ। ७ फरवरीको एक विशेष आदेश जारीकर मास्को और सोवियत रूसके १६ प्रजातत्रो की सुरक्षा-व्यवस्थाको नए सिरेसे सुसगठित एव सुदृढ किया गया और इसके अध्यक्ष को मत्रिमण्डलम बैठनेका अधिकार दिया गया। इसके

ज्योर्जी मलकोव

दिन मास्को-रेडियोसे दो ... की

यथार्थ कारण समझनेके ि
बेरियाकी 'हत्या' के
कहते हैं कि स्तालिनकी
'सुरक्षा-पुलिस' (जिसके
राजनीतिक काली भेडोकी
बन्दूके ही नही, मशीनगनें,
को घेर लिया और उनके
गश्त लगाने लगे। मल
और जूकोव आदिने इससे
कि वह सुरक्षा-पुलिसका
इस अदूरदर्शितापूर्ण गल्त
स्तालिनका उत्तराधिकारी
बादमे हुई अपनी
सैनिक सत्तावादी दुबारा
थे, अत उन्होंने प्रधान मत्र
पुलिस, सुरक्षा-पुलिस और
कर ली।

सुप्रीम कोर्टके

मलकोवके इस्तीफेके
प्रधान मत्री नियुक्त होनेके
मत्रीकी ओरसे जो पहली
कोर्टके छ जजोकी बख
की नामजदगी। जिसे
का थोडा भी ज्ञान है, उससे
कोर्टके ७० जज और ३५
कानूनदाँओमें से सुप्रीम
जाते हैं (मौजूदा सुप्रीम
हुआ था)। उन्हे या तो
या किसीके खिलाफ
सकता है। पर इन ६
बोरीसो ग्लेबस्की, इवान
एलेक्सिएविच यासीन, प
पीतर एलेक्ज़ेंद्रिएविच ि
स्तेसानोव और बोरिस

सुप्रीम सोवियतका अभिनय

उपर्युक्त बातोंसे ही विज्ञ पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि तथाकथित किसान-मजदूरोंके स्वर्ग में असली सत्ता किसके हाथमें है और उसका किस प्रकार उपयोग किया जाता है। पर स्वतंत्र और जनतंत्रवादी राष्ट्रोंकी आंखोंमें धूल झोंकनेके लिए रूसके तानाशाहोंने चुनावों की ओटमें जो एक निर्वाचित प्रतिनिधियोंके सुप्रीम सोवियतका भूत खड़ा कर रखा है उसकी नपुंसकता और असहायावस्था का ऐसा स्पष्ट दिग्दर्शन कम ही हुआ होगा जैसा कि इस अवसरपर हुआ। बजट, वैदेशिक नीति, सुरक्षाकी नई व्यवस्था, ६ सुप्रीम कोर्टके जजोंकी बर्खास्तगी, जर्मनीसे युद्ध स्थिति समाप्त करनेकी घोषणा आदिपर जैसे उसके १३४७ सदस्योंने बिना बोले हाथ उठा दिए वैसे ही उन्होंने मल्कोव के इस्तीफे और उसके २॥ घंटे बाद बुल्गानिनकी नियुक्ति पर भी हाथ उठा दिए। अगर रूसमें चुनाव और जनताके प्रतिनिधित्वका कुछ भी अर्थ होता तो १३४७ सदस्योंमें से एकको भी इनमें से किसीपर भी मुंह खोलनेका साहस या आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई यह समझना जरा कठिन है। दुनियाकी राजनीतिके इतिहासमें यह एक विचित्र घटना है। हां इन्होंने केवल एक बार मुंह खोला और वह खड़े होकर ३ मिनट तक कुश्चेव की (अध्यक्ष या प्रधान मंत्रीकी नहीं !) जय बोलनेके लिए ! और दास-वृत्तिके इस नपुंसक प्रदर्शनकी चरम परिणति तो तब हुई जबकि कुश्चेवने सुप्रीम सोवियतके इन १३४७ सदस्योंसे पूछा कि क्या किसीको और कुछ कहना है तब सबके सब चुपचाप खड़े रहे ! भला जिस पेशबंदीके बाद सर्वसम्मत स्वीकृतिका यह अभिनय हो रहा था उसका आभास मिलने के बाद कौन सदस्य मुंह खोलनेका साहस कर सकता था ?

मलकोवकी झूठी स्वीकारोक्ति

पर सुप्रीम सोवियतके सदस्योंका यह हास्यास्पद अभिनय भी उस समय फीका लगने लगता है जबकि हम मल्कोवकी कायरता नपुंसकता और आत्म-ग्लानि भरी स्वीकारोक्ति पढ़ते हैं। गत ८ फरवरीके पत्रोंमें उसका जो इस्तीफा छपा है उसमें उसने कहा है— प्रधान मंत्री का पद राजकीय कार्यका बहुत बड़ा अनुभवकी अपेक्षा रखता है। मैं यह महसूस करता हूं कि मेरा स्थानीय अनुभव अपर्याप्त है और यह भी सच है कि मुझे व्यवस्थाका कभी कोई अनुभव नहीं हुआ। मल्कोवकी प्रतिभा और योग्यताके बहुत कायल तो शायद कम ही लोग होंगे पर जो कुछ उसने अपनी अयोग्यताकी पहली स्वीकारोक्ति के रूपमें कहा है उसमें सचाई शायद नहीं है—या अगर इसमें कुछ भी सचाई है तो उनके सम्बन्धमें रूसी पत्रों और नेताओंने अबतक जो-कुछ कहा है वह सब झूठ था। हमारी इस धारणाके चार आधार हैं (१) पहला तो यह कि २० वर्षसे मल्कोव स्तालिनका दाहिना हाथ था और स्तालिनके जीवन-काल में ही काफी अर्से तक वह कम्युनिस्ट पार्टीका मंत्री रहा। इस पदपर रहकर उसने जिस योग्यता और तत्परतासे काम किया उसकी सभीने प्रशंसा की। (२) दूसरे महायुद्धके दौरानमें जबकि स्तालिनग्रादमें जर्मनोंके टैंकों और बमोंके आगे रूसके होश उड़ जा रहे थे तो नागरिक व्यवस्था और युद्धोत्पादनकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी मल्कोवपर थी। विमानोंके उत्पादनका तो उसने रेकर्ड ही तोड़ दिया जिसके लिए उसे आर्डर आफ लेनिन देकर सम्मानित किया गया। (३) उसकी कार्य-कुशलता और अनुभवके कारण ही स्तालिनकी मृत्युके बाद स्तालिनने उसीको अपना उत्तराधिकारी चुना और काहिरोमें चर्चिलसे भेंट होनेपर इस बातका उल्लेख भी किया। (४) पिछले पार्टी-कांग्रेससे लेकर बेरियाकी हत्या तक पार्टी और राजकीय कार्योंके निर्णयमें मल्कोव का प्रमुख हाथ रहता था। अतएव व्यवस्था-सम्बन्धी अयोग्यता और अनुभवहीनताके सम्बन्धमें उसकी स्वीकारोक्ति सच नहीं है।

दूसरी स्वीकारोक्ति उसकी थी कृषिकी असन्तोषजनक व्यवस्था। इस सम्बन्धमें उसने कहा— पार्टीका कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम भारी उद्योगोंके और अधिक विकास पर निर्भर करता है। फिर उसने कहा— भारी उद्योगों की उन्नति ही कृषि और उपभोक्ता वस्तुएं बनानेवाले उद्योगोंके विकासका आधार हो सकती है। इस कथन

निकिता क्रुश्चेव

की असत्यताके दो आधार हैं (१) पहला तो यह कि स्तालिनकी मृत्युसे पहले और बादमें कृषि विभागका कार्य कभी भी सीधा मल्कोवके नहीं रहा। यह जिम्मेदारी क्रुश्चेवकी थी जिसके दुर्नीतिमें न सिर्फ कृषिका उत्पादन ही घटा बल्कि किसानोंमें असन्तोष भी बढ़ा। (२) स्तालिनकी मृत्युके बाद हो मल्कोवने स्तालिन पंथियोंकी भारी उद्योगोंकी प्रधानता वाली नीतिको बदलकर उपभोक्ता वस्तुओंके निर्माणको प्रोत्साहन देनेकी नीति

अपनाई। गत ५ अगस्तको जब उसने सुप्रीम सोवियतमे इसकी घोषणा की, तो शायद उसके उन्ही १३४७ सदस्योने ३ मिनट तक हर्षध्वनि की, जिन्होने कि गत ८ फरवरीको मलकोव द्वारा ही इस नीतिको उलटकर फिर भारी उद्योगो को प्रमुखता देनेकी बातका भी सर्वसम्मतिसे समर्थन किया! जो लोग मलकोवके मुंहसे इतनी बडी उल्टी और झूठ बात बुलवा सके, उनके कौशलकी सचमुच दाद देनी पडेगी।

तीसरी मिथ्या स्वीकारोक्ति मलकोवने यह की—"मेरी प्रधान मत्रीके पदसे मुक्त किए जानेकी प्रार्थना इसलिए भी स्वीकार की जानी चाहिए कि इससे मन्त्रिमण्डलकी शक्ति बढेगी।" प्रथम तो स्तालिनकी मृत्युके बाद असली सत्ता मलकोव, क्रूशेव और बुल्गेनिनके हाथोमे आई। इससे मन्त्रिमडल कमजोर हुआ, ऐसा न कभी कहा गया, न ऐसी धारणाका कोई आधार ही था—कमसे कम रूसियो की नजरोमे। और यदि इसमे कुछ भी सचाई है, तो मलकोवको इलेक्ट्रो-स्टेशस (जिसका उसे कोई अनुभव नही!) का मत्री बनाकर (जबकि इस नियुक्तिसे पहले यह घोषणा तक नही की गई कि इस विभागके मत्री पावलेंको को कुछ ही दिन पहले अकारण बर्खास्त कर दिया गया है!) मन्त्रिमडलको कैसे सशक्त बनाया गया है? अगर मलकोव की इस प्रकार राजनीतिक आत्म-हत्या करानेसे किसीको लाभ हुआ है, किसीकी शक्ति और प्रभाव बढे है, तो वह स्तालिनपथी क्रूशेव-गुट्ट और सैनिक सत्तावादियो का ही, जोकि भारी उद्योगो की उन्नतिके बहाने फिर रूस को युद्धोद्योगकी नई मजिल की तरफ ले जाना चाहते है। और यदि मलकोव-जैसे अयोग्य और अनुभवहीन व्यक्तिके कारण ही मन्त्रिमडल दुर्बल था, तो उसे कोई दूसरा विभाग देना और उप-प्रधान मत्री बनाना क्या मानी रखता है?

निकोलाई बुल्गेनिन

मलकोव और क्रूशेवकी प्रतिद्वन्द्विता

मलकोवके इस्तीफेकी घटनाका महत्व रूस और शेष ससारके लिए स्तालिनकी 'मृत्यु' की ही भाँति बहुत अधिक है। इतनी बडी घटना केवल उसकी अनुभवहीनता और

सुप्रीम सोवियतने जो मलकोव, आनेपर कोई खुशी जाहिर नही ३ मिनट तक खडे होकर हर्ष-क्रूशेवका आज रूसमे क्या स्थान दिन पहले जब पाश्चात्य या अर्थनीति ही नही, विरोध है, तो गत ५ फरव बातचीत करते हुए क्रूशेवने इसे और 'इच्छित कल्पना' घटेके अन्दर ही उसने सुप्रीम को हटाकर बुल्गेनिनको प्रधान

मलकोव और क्रूशेवकी म ही प्रकट होने लगी थी। विद्रोहको निर्ममतापूर्वक का ऐसा परिचय दिया था कि गभीर हो चली थी। मलकोवके उसने उसे कम्युनिस्ट-पार्टीके क्योकि मलकोवने परम्परागत कृषिके अधिक उत्पादन, लोगोंके रहन-सहनके स्तरको प्राथमिकता देनेपर जोर दिया था में करके क्रूशवने न सिर्फ बल्कि वहाँ मलकोव-शासनकी मलकोवकी नीतिको 'सुधारवादी' वाली' बतलाया गया। पिछले चर्चाकी जिन बातोंको प्रमुखता द शासनकी अयोग्यता और खेती कम होना और उपजके नौजवानोमे चरित्र और ज्ञानकी पैदा हुई हो, ऐसी बात नही है। और फिर मृत्युके समय सत्ता लगे होनेके कारण चोटीके किसी नहीं दिया। बादमें पार्टी, सेना खिलाफ करनेके लिए इनकी मलकोवके सिरपर फोडा गया!

मलकोव-मिकोयनका

यद्यपि स्तालिनको व्यवस्थित करने औद्योगिक

वर्षीय योजनाको लागू करनेसे पहले उसके कार्यक्रमको लेकर बडा वाद-विवाद हुआ। अन्तमें अक्तूबरमे यह तय हुआ कि (१) १९५८-६० में रूसकी अर्थनीतिका घनिष्ट सबंध रूस अधिकृत देशोसे सयुक्त रूपसे रहे और भारी उद्योगोको उन्नत करनेकी ओर विशेष ध्यान दिया जाय। चीन तथा पूर्वी यूरोपके देशोकी औद्योगिक उन्नतिमे भी रूसका प्रमुख हाथ रहे। (२) चीन, पूर्वी यूरोपके देशो तथा रूसकी फौजी स्थिति अधिक मज़बूत बनानेके लिए १९५५के बजटमे १० प्रतिशत रक्षा-व्यय अधिक किया जाय। सोवियत-गुटके सैनिक सगठनके लिए एक सयुक्त कमानकी स्थापना हो और चीन अनिवार्य फौजी भर्ती शुरू करे। चूंकि इस नीतिकी सफलता बहुत कुछ चीनके समर्थनपर निर्भर करती थी, अत माओ-से-तुगकी स्वीकृति लेनेके लिए क्रुशेव, बुल्गेनिन आदि गत अक्तूबरम चीन गए। वह लेकर लौटनेके बाद इन्होने दृढतासे इसका प्रचार करना शुरू किया। नया बजट इसी दृष्टिसे बनाया गया। गत २५ जनवरीको क्रुशेवने सार्वजनिक रूपसे भारी उद्योगो को प्रधानता देनेकी बात कही जिससे असहमत होनके कारण मिकोयनको इस्तीफा देना पडा और यही हश्र बादमें मलकोवका भी हुआ। अर्थ-मत्री ज्वेरोवका, जिसने शायद उपभोक्ता वस्तुओके बारेम केवल मौखिक सहानुभूति दिखाई थी, भविष्य अभी अनिश्चित है। क्रुशेव, बुल्गेनिनके चीन से लौटनेके बाद ही पार्टी के मच, पत्रो, विश्वविद्यालयो और अन्यान्य सस्थाओम उनभोक्ता उद्योगोके समर्थको, और भारी उद्योगोके विरोधियोके खिलाफ बडा जबरदस्त प्रचार होने लगा, जिसके प्रमुख उत्प्रेरक थे मास्को वित्त-समितिके ज़े० कासिमोवस्की, द० कुस्नेन्ज़ोव और पी० कोस्लावस्की।

लाज़ार कगानोविच

रूसी बोनापार्टकी शका

मलकोवके इस्तीफेकी घोषणाके तीसरे ही दिन चीनने अनिवार्य फौजी भर्तीका एलान कर दिया। इसीके साथ मार्शल जूकोवके रक्षा मत्री होनेकी घोषणा इस बातका सकेत है कि पीकिंगसे एल्ब नदी तक लाल सेना युद्धोद्योगो और सयुक्त कमानके द्वारा एक नई शक्ति बनने जा रही है।

मातहत बनाया गया है।)।
किस तरह राजनेताओकी मू
प्रभाव-प्रभुत्व बढा और
लेनिन, त्रात्स्की और स्ता
इसलिए अपने समयमे स्ता
शक्ति नही बनने दिया।
पार्टीकी ही रही। सेनाको
'सुरक्षा-पुलिस के रूपमें एक
रखी, स्वय जनरलिसिमोका
तथा दूसरे महायुद्धसे पहले
रोवको प्राणदड देकर तथा उस
तिमोशेंको आदिके बढते हुए
पद देकर रोका।

पर आज स्तालिनकी-स
मलकोव, क्रुशेव, मलोतफ, बु
मलकोव-क्रुशेव-बुल्गेनिनके
पार्टी और मन्त्रिमडल दोनोके
ही किया है। बेरियाकी
गठनके बाद उसमे भी इतनी
फौजी ताक़तके सामने टिक स
में सैनिक सत्तावादी अधिनाय
राज्य था, जिसका अधिनायक
ब्यूरो था, पर अब तो किसी
के उदयकी आशका
लोग जूकोवसे जोडते हैं।
समय—बल्कि कहना चाहिए
सबसे अधिक लोकप्रिय वे ही
पति नही हैं, पर लडाईके निय
विधिके रूपम उनका कोई
पिछले महायुद्धम ही चुकी है।
कि उनमें रूसी फौजी अफसर
जो तालस्तायने 'वार एण्ड पीस
हैं। रूसके बाहर भी वे किसी
में कहीं अधिक लोकप्रिय हैं।
पार्टीके कर्ता-धर्ता उसकी सुरक्ष
कडा रुख अख्तियार करनेके
वृद्धि तथा भारी उद्योगोकी
तो वे सेनाकी किसी बातको
टाल सकेंगे, इसमे सन्देह है।
पट-परिवर्तन है,

अपना अपना दृष्टिकोण

लोक-सेवा आयोगकी उपेक्षा

प्रजातंत्रीय राज्यमें परिवर्तनमय शासन-व्यवस्थाको सुगठित एवं सबल बनानेके लिए जनतन्त्रकी भावनाका आदर करना आवश्यक है। जहाँ यह भावना ही सुप्त हो जाय, वहाँ कम-से-कम उसका रूप तो दृष्टिगत होना ही चाहिए। किन्तु जहाँ दोनोकी उपेक्षा हो, वहाँ जनतत्र एक धोखा बन जाता है। कुछ ऐसी ही स्थिति भारतीय शासन-व्यवस्थाकी हो गई है, जिससे जनतत्रकी पवित्र भावनाके उपयोगमें सशय होने लगता है। भारतीय लोक-सेवा-आयोगोंके प्रतिवेदन प्रतिवर्ष इसी सशयको सबल बनानेके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इन प्रतिवेदनोंमें यही निराशापूर्ण उल्लेख दुहराया जाता है कि सरकार न केवल आयोगोको अपना मतव्य पूरा करनेमें अनावश्यक समझती है और कई बार उनकी पूरी उपेक्षा करती है; वल्कि वह इन आयोगोके महत्वको स्वीकार ही नही करती। सरकारको हजारो निम्न कर्मचारियों और चपरासियोंकी नियुक्तिमें तो रुचि होती नहीं। उसकी आँखें तो सदा कुछ इने-गिने पदोपर ही ठहरती है, जिनमें वह अपनी मनमान व गोलमाल विधि नियमो द्वारा स्थिति सुरक्षित करवाकर इन पदोको लोक-सेवा-आयोगोंके अधिकार-क्षेत्रसे बाहर करवा लेती है। लोक-सेवा आयोगकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य है सरकारी सेवाओंमें सुयोग्य व्यक्तियो की निष्पक्ष भर्त्ती करना। यह उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता है जब कि आयोग आयुक्तगण सरकारी अधिकारियोंके अनुचित हस्तक्षेपसे पृथक रह सकें। इसीलिए सविधान द्वारा उनकी नियुक्ति, कार्य-काल, पृथकता आदिमें उनको विशेष सुविधाएँ दी गई हैं, जिनसे कि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्थिर किया जा सके। लेकिन सविधानमें इन पदोंपर उपयुक्त व्यक्तियोंको ही चुननेके नियमोंका उल्लेख नहीं किया गया है। उत्कल (उडीसा) लोक-सेवा आयोगके एक सदस्यकी योग्यता सरकारी तौरपर इस प्रकार है—नॉन मैट्रिक्यूलेट, एक भूतपूर्व रियासतमें सब-इन्सपेक्टर, बादमें इसी रियासत के एक मत्री, दो राज्योंमें सदस्योंकी योग्यता, कई नियुक्तिया में जाति, मित्रता, साम्प्रदायिकता व अन्य प्रकारकी पक्षपात-पूर्ण बातोंपर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। इससे स्वाभाविक है कि अन्य विभागोंके अतिरिक्त स्वय लोक-सेवा आयोगके कार्यमें ही शिथिलता एव अकुशलताका प्रभुत्व रहता है।

आयोगके हस्तक्षेपको दूर करनेका सरल मार्ग है कुछ पदोको उसकी अधिकार-सीमाके बाहर रखना। सविधानने इस सरकारी शक्तिको कम करनेके लिए यह शर्त्त लगाई है कि इस प्रकारसे होनेवाली नियुक्तियोंके समस्त नियम धारा-सभाको प्रस्तुत किए जायँ, जहाँ उनमें जन प्रतिनिधियो के द्वारा आवश्यक सशोधन सुलभ हो सके। कुछ राज्य-सरकारोंने इस नियमकी भी अवहेलना की है। सन् ५२ में मध्य-भारत लोक-सेवा आयोगने अपने एक वक्तव्य में सरकार द्वारा निर्मित नियमोंके प्रतिवेदनको स्वीकार करने के भ्रमपूर्ण तथ्यका विरोध किया था। इसी सम्बन्धमें आयोगके सभापतिको विवश होकर कहना पडा कि 'सरकार ने कई स्थानोको आयोगकी अधिकार-सीमासे बाहर रखकर सविधानकी भावनाको आघात पहुँचाया है।' केरलके (ट्रावनकोर-कोचीन) आयोगने अपने १९५१-५२ के प्रतिवेदनमें कहा है कि राज्य-सरकारको सेवाओंके नियम नहीं बनाने चाहिएँ। इसी वर्षके सौराष्ट्रके प्रतिवेदनमें भी इसी तरहसे सरकारकी आलोचना की गई है। हैदराबाद में समस्त सडक यातायात-विभाग आयोगके अधिकार-क्षेत्रसे यह कहकर हटा दिया कि निकट भविष्यमें एक निगम (कार्पोरेशन) स्थापित किया जायगा। कुछ पदोंको, जिनपर नियुक्तियोंके लिए परामर्श ले लिया गया था, भी उनके हस्तक्षेपसे हटा दिया गया। इसके साथ ही न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) की स्थापनासे आयोगकी शक्ति व महत्व कम कर दिया गया है। सघीय आयोगकी राय है कि "इनके कार्योंमें पक्तिबद्ध अवरोधोंको खडा करना लोकतत्रात्मक गणराज्यमें उचित नही जँचता।'

ट्रावनकोर-कोचीनके १९५१-५२ के प्रतिवेदनमें शिकायत की गई है कि राज्य-सरकारने बिना परामर्शकी प्रतीक्षाके ही नई नियुक्तियाँ कर दीं। कुछकी नियुक्तियाँ सरकार ने 'कार्य-सीमा विनिमय' के गोलमाल निर्वचनद्वारा कर दीं तथा २५ व्यक्तियोंको सीधा बिना किसी परामर्शके नियुक्त कर दिया। इसी प्रकार सौराष्ट्रके प्रतिवेदनमें नई नियुक्तियाँ, उन्नति, स्थानान्तर व अवकाश प्राप्त व्यक्तियोंको दो वर्षसे अधिक बिना आयोगकी सहमतिसे रखने आदिका उल्लेख

है। बिहार-सेवा-आयोगने पटना-विश्वविद्यालयके १३ प्राध्यापकोंके लिए फिरसे विज्ञापन करानेकी राय दी है। इन पदोपर विश्वविद्यालयने प्राय तीन वर्ष पूर्व ही नियुक्तियाँ कर ली थी। बम्बई-प्रतिवेदनमें स्पष्ट कहा गया है कि राज्य-सरकारने बिना आयोगके परामर्शके १२ नियुक्तियाँ कर दी। इनमें से कुछकी सूचना नियुक्तियोकी समाप्ति पर दी गई। इस प्रतिवेदनमें कई अनियमिताओका उल्लेख है। हैदराबाद-प्रतिवेदनमें राज्य-सरकार द्वारा की गई ९ अस्थायी नियुक्तियोका उल्लेख किया गया है, जिनकी सूचना आयोगको बडे विलम्बसे दी गई। सरकारी विभागोका स्तर गत वर्षसे सुधरनेके स्थानपर गिरा है। राज्य-सरकार ने आयोग द्वारा की गई १० व्यक्तियोकी नियुक्ति-सम्बन्धी सिफारिशोको भी ठुकरा दिया। ऐसी ही स्थिति अन्य राज्योंके आयोगोके सम्बन्धमें भी है। इसके लिए आयोगोको उपयुक्त सदस्योंसे पुनर्गठित करना तथा राज्य-सरकारोको बिना आयोगके परामर्शके ही नियुक्त करनेके अधिकारसे से वञ्चित किया जाना आवश्यक है। भारतीय सविधानके अनुसार राज्याधीन नौकरियो या पदोपर नियुक्तिके सम्बन्धमें सब नागरिकोंके लिए अवसरकी समता (उपबन्धका अनुच्छेद १६-क) तभी सम्भव है और तभी शासन भी सुधर सकता है।—अमरसिंह महता, जन्तरमतरके भीतर, नई दिल्ली।

हिन्दी टाअिपराअिटर और अुसका सुधार

देशकी राष्ट्रभाषा हो जानेके कारण हिनदीका महतव बहुत बढ गया है। राष्ट्र-सघमें ससारकी दूसरी भाषाओ के साथ अिसको भी स्थान मिल चुका है। फलत अिसके टाअिप-मशीनोकी माँग दिनोदिन बढनेकी सम्भावना है। किन्तु अभीतक हिन्दीकी जो टाअिप-मशीनें प्रचलित हैं, अुन सबके 'की-बोर्ड पृथक हैं। किसी अेक विशेष मशीनपर टाअिप करनेवालेके लिअे दूसरी कम्पनीकी बनाअी हुअी मशीनपर टाअिप करनेमें भारी असुविधा होती है। अँगरेजी भाषाकी टाअिप-मशीनें चाहे जिस कम्पनी द्वारा बनाअी गअी हो, सभीके 'की-बोर्ड' अेक जैसे हैं। अत हिन्दी-मशीनोंके 'की-बोर्ड'का भी अेक स्टैण्डर्ड होना बहुत जरूरी है। दिन-प्रतिदिन बढनेवाले हिन्दी प्रचारको देखते हुअे अिस प्रकारका स्टैण्डर्ड शीघ्रातिशीघ्र स्थापित किया जाना चाहिअे। सरकारी तथा व्यापारी वर्गमें जिस समय सभी काम हिन्दीमें होने लगेंगे और अैसे स्टैण्डर्डकी

व्यक्तियोका क्या हाल होगा
और कितना परिश्रम व्यर्थ
प्रश्नपर अच्छी तरह
अिसमें हमें थोडी भी देर
रायमें किसी भी स्टैण्डर्डको
बातोको ध्यानमें रखना
मात्राओका स्थान-निर्धारण
की गति अँगरेजीसे कम न
अिनमें 'की-बटन' अधिक न
अधिक न हो और (३)
सरकारी व्यापारी वर्गके काम
में नही है, अिसमें स्थान
हिन्दीकी सभी प्रचलित
प्रमाणित होगी।

अक्षरो तथा
मशीनोका दोष देखनेके
अुदाहरण-स्वरूप लेना
कारण हम रेमिगटनको
सम्बन्धमें हमने कअी
पत्रो आदिमें प्रयोग किअे हुअे
करके अुनका पृथक-पृथक
देखा है कि कौनसे अक्षर
प्रयोगमें आती हैं। हमार
चिन्ह 'ा' का स्थान सबसे
प्रतिशत प्रयोग किया जाता
स्थान रेमिगटनमें
के नीचे रखा गया है, जबकि
दसो अगुलियोमेंसे हमारे
सबसे अधिक क्रियाशील है
की अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे
विपरीत 'क्ष' और 'घ' अद
आधे अथवा चौथाअी
मशीनमें टाअिपिस्टके
नीचे रखे गअे हैं। अिनका
का होना चाहिअे। हिन्दी
मशीनसे अधिक 'की-बटन'
मे भी, जो अँगरेजी
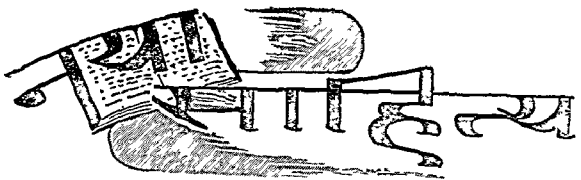
श्री गाधीचरितमानस लेखक—श्री विद्याधर महाजन, प्रकाशक—हिन्दी भवन, जालधर और इलाहाबाद, पृष्ठ २१४, मूल्य ५।।=)

प्रस्तुत काव्य-ग्रथके रूपमें रामचरितमानसके ढगपर दोहा-चौपाइयोंमें गाधीजीके चरितको पेश किया गया है। चूँकि लेखकका इसके प्रकाशनसे कुछ ही समय पूर्व देहावसान हो गया, हम इसके सम्बन्धमें विस्तारसे कुछ कहना ठीक नही समझते। पर इतना तो कहना ही पडेगा कि पता नहीं लेखकने यह प्रयास क्यो किया? दोहा-चौपाई या रामचरितमानसकी नकल करना आसान है, पर उसमें काव्यत्व लानेके लिए तुलसीकी-सी अगाध प्रतिभा योग्यता, निष्ठा और भक्ति भी तो अपेक्षित है। इनका इसमें कही भूले भी आभास नही मिलता। वाल्मीकि और तुलसीके राम की जो छवि हमारे अन्त चक्षुके सामने उद्भासित होती है वह माना फिर आँखोंके आगेसे हटती ही नही। पर इस पुस्तकसे गाधीजीकी वैसी कोई स्पष्ट छवि नही उभरती। लेखक ने भाषा और छदके साथ भी अनेक स्थलोपर बडी मनमानी की है। जातिवाचक सज्ञाओं तकको तोडा-मरोडा है। आजके युगमें इस तरहकी चीजोंका हमें तो कोई लाभ नही दिखाई देता।

भारतवर्षकी विभूतियाँ सपादक—श्री डॉ० आर० टालीवाल, प्रकाशक—ग्रेट इडिया पब्लिशर्स नागपुर पृष्ठ ३५६, मूल्य १०)

पुस्तकके नाम और सवप्रथम दिए गए नेताजीके चित्र के बाद लेखकके दादाजीके पूरे पृष्ठके चित्रको देखकर ही पाठकको लगता है कि पुस्तक क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। इसमें कोई शक नही कि अधिकाश जीवन-वृत्त 'भारत की विभूतियाँ कही जा सकें, ऐसे हैं। पर जहाँ ऐसी दजनो विभूतियोका नामोल्लेख नही हुआ है जिहोन बहुत-कुछ किया है, वहाँ अनेक ऐसे व्यक्तियोंको भी 'विभूतियो की पक्तिमें ठेल दिया गया है, जिनके बारेमें शायद कम लोग ही सहमत हो। विवरणोको भी प्रामाणिक बनानेकी ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए, नहीं दिया गया है। अच्छा हो, यदि इस प्रकारके सकलनोंके सपादनमें अधिक जिम्मेदारीसे काम लिया जाय। —'भानद्रत'

बहुरगी मधुपुरी लेखक—श्री राहुल साकृत्यायन, प्रकाशक—राहुल प्रकाशन, मसूरी मूल्य ४)

गर्मियोमें शहरोंके बडे-बडे राजाओ और रईसोंको किसी-न किसी पहाडी स्थानमें जाना ही पडता है। उन्ही पहाडी स्थानोमेंसे एक प्रमुख स्थान है मसूरी। मसूरीका विलासमय जीवन अपने इर्द गिर्द कितने ही व्यक्तियो को लपेटे रहता है। इस विलासपुरीमें जानेवाले और उनसे जीविकोपार्जन करनेवाले भिन्न भिन्न व्यक्तियोका चित्रण 'बहुरगी मधुपुरी'में है। स्वतत्रताके पहले और स्वतत्रताके बादके जीवनपर, राजनीतिपर मापदडोपर यह एक करारा व्यग है। फैशनकी टीमटामसे लैस आधुनिकतम नारियोकी भिन्न भिन्न श्रेणियाँ लेकर सेठ, महाप्रभु, लालाजी, रिक्शावाला कुली, खानसामा, माली और यहाँ तक कि रूपी-जैसी रूपाजीवाकी व्यगात्मक कहानियाँ इसमें हैं। नेताओ, सेठो और अफसरोंके वर्त्तमान जीवनपर इसमें गहरी चोट है। आजकी समाज व्यवस्था और राजनैतिक अवस्थाका तो हर जगह अच्छा खाका खीचा गया है। हमारे जीवनकी भिन्न भिन्न समस्याओ और अभावोका चित्रण बडी खूबी और मर्मस्पर्शिताके साथ मानसको छू जाता है। बहुत दिनोंके बाद राहुलजीने समाज और जीवनकी बहुमुखी समस्याओंको सामने रखने वाली ऐसी रचना मिली है। कहानियाँ बडी रोचक और पैनी भाषामें लिखी गई हैं। हाँ, भाषा और मनोभावो की तीखापन कई जगह अपनी सीमाको उल्लघन भी कर गया है। गरीबोकी बेकसीसे उत्पन्न समस्याएँ इतनी छूती हैं कि लगता है विलासपुरियोके स्वर्गिक सुखके नीचे दबी, कुचली और कराहती मानवताकी कराहट सुनकर हम इस युगमें अपनी पीडा कह रहे हो।

जिन्दगी मुस्कराई लेखक—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य ५)

इस पुस्तकमें प्रभाकरजीने अपनी शरद र्शैलीमें मर्मस्पर्शी

जिन्दगीमे मुस्कुराहट बनाए रखनेके गुण वडे ही रोचक ढगसे बताए हैं। अपने जीवनके संस्मरणोको लच्छेदार और मुहावरेदार भाषामें पाठकोके लिए कहानी बनाकर ही वे नही रह जाते, उन्हें बातोमे उलझाते-उलझाते रोजमर्राके जीवनकी खामियोके सामने ला खडा करते हैं और तब अचानक पाठकको याद आता है कि यह कहानी नही, यह तो उसके अपने जीवनका विश्लेषण करनेके लिए दर्पण है। यो तो सारी पुस्तक ही अपनी शैलीकी विशेषताके कारण बडी दिलचस्प लगती है, पर कुछ परिच्छेद तो बहुत ही सुन्दर बन पडे हैं। 'जब वे बीबीको अपने कमरेमे ले गए', *'यानी एक कम बीस मिनट'*, *'जी, क्या कहा, ऐं'*, 'वे दो चेहरे', 'ओह, याद ही न रहा' और 'कृपया अपनेसे पूछिए' तो बडे ही सरस, सन्तुलित और स्वाभाविक ढगसे अपना प्रभाव छोडते हैं। इनकी शैली और विषय दोनो ही अनोखे हैं। 'जिन्दगी मुस्कराई' ध्यानसे पढनेवालेके जीवनमें अवश्य ही सच्ची मुस्कुराहट ला सकती है।

बाबा बटेसरनाथ लेखक—श्री नागार्जुन, प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ १४९, मूल्य १॥।=)

बट वृक्षकी आत्म-कथाकी ओटमे ग्रामीणोके सुख-दुःख और समस्याओका इसमें बडा ही सुन्दर चित्रण है। गाव-वालोकी भावनाओ, रीति-रिवाजो, तौर-तरीको और अन्य समस्याओका इससे बडा अच्छा परिचय मिलता है। इसमें स्वतत्रताके पहले और स्वतत्रताके बादकी ग्रामीणोकी चेतना की भी झलक मिलती है। हमारे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनका प्रभाव गाँवोमें कितना और किस प्रकार पड रहा है, इसका दिग्दर्शन मिलता है। बट वृक्ष अपनी जटा और दाढीमें कितनोकी हर्ष, व्यथा, वेदना छिपाए बदलते युगको देख रहा है और देख रहा है भविष्यके उस समाजकी ओर, जहाँ परिवर्तन अवश्यम्भावी है। लेखककी मँजी हुई लेखनीसे लिखी यह पुस्तक रोचकताके साथ-साथ ग्रामवासियोकी बदलती हुई मानसिक स्थितियो और परिस्थितियोपर सुन्दर प्रकाश डालती है।

बच्चोंकी देखभाल लेखक—श्री बहादुरमल, प्रकाशक—विश्वेश्वरानद प्रकाशन, होशियारपुर, पृष्ठ १४०, मूल्य १॥)

बच्चोके विकास-कालमें माता-पिताका व्यवहार और क्रियाएँ कितनी सधत होनी चाहिएँ, यह लेखकने बडी ही सरल भाषामें बतानेकी कोशिश की है। बच्चेका स्वास्थ्य, आदतें और स्वभाव हर घरकी रोजमर्राकी समस्याएँ हैं। श्री बहादुरमल्लने सरल भाषामें थोड-से में माता-पिताके ज्ञान के लिए काफी सामग्री दी है। देखभालकी मानसिक और शारीरिक दो भागोमें विभक्तकर उम्रके अनुसार - कंतापर उन्होने जोर दिया ।

मातृत्वके दायित्वका ज्ञान अधिकाश बालाएँ माता बन वे बच्चोको न स्वस्थ रख पाती कर पाती हैं। हिन्दीमें इस दिया जा रहा है। लेखकने लालन-पालन तककी सभी विश्लेषण किया है। यह माँ बननेकी प्रेरणा दे सकती आदतो और स्वभावको करना चाहिए, इसका विवेचन में किया गया है।

शेर ओ सुखन भाग (४,५) गोयलीय, प्रकाशक—पृष्ठ २५५, मूल्य ३)

उर्दू-साहित्यको हिन्दी जीका कार्य हिन्दी-ससारसे भागोमें गोयलीयजीने उर्दू पाठकोको देकर उर्दूके प्रति चौथे भागमे इन्होने गजलकी परिचयात्मक सग्रह दिया है। आधुनिक शायरोंके परिचयके 'नई लहर'-परिच्छेदमें गाँधीजीकी मृत्यु-विषयक देवनागरी-लिपिमें उर्दू मिलना हिन्दीके पाठकोंके पाँचवें भागमे 'सिंहावलोकन गजलके इतिहासका अध्ययनके साथ-साथ इसमे उर्दू-साहित्यका मोड भी परिस्थितियोके साथ-साथ मिलते हैं। आधुनिक उर्दू जीवनकी रात-दिनकी स यह ज्ञात होता है। पिछले पृ और कलाम भी है, जिससे विचारोका परिचय मिलता

रोटियों और लाशोंके जुलूस गागेय, प्रकाशक—पृष्ठ १२७, मूल्य १।)

यह कहानी-सग्रह अभावोको बडे नग्न रूपमें सामने ठीक कहानियाँ तो नही,

डा० हेलेन केलर

गत २० फरवरीको ब्रिटिश साम्राज्यके अन्ध-संघकी ओरसे डा० हेलेन केलर भारत आई हैं। वे भारत, पाकिस्तान और सुदूर-पूर्वके देशोंका भ्रमणकर अन्धोंकी शिक्षा-दीक्षाके सम्बन्धमें विवरण एकत्र करेंगी और अपने सुझाव देंगी। उनका जन्म एल्बामाके एक ग्रामीण-परिवारमें हुआ था। दो वर्षकी उम्रसे ही आप अंधी और बहरी हो गईं। गूंगी तो आप पहलेसे ही थीं। एन सलीवन

डा० हेलेन केलर

नामक एक अध्यापिकाने आपको स्पर्श और गन्धसे मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, फूलों, फलों तथा विभिन्न प्रवृत्तियोंका ज्ञान कराया। आप फ्रेंच, जर्मन, लैटिन और अंगरेजी जानती हैं। हारवर्ड-विश्वविद्यालयसे आपने बी० ए (ग्रानर्स) किया। गणित, विज्ञान, वनस्पति, प्राणिशास्त्र और दर्शनका भी आपका अच्छा अध्ययन है। घोड़ेकी सवारी, साइकिल चलाना, ताश और शतरंज खेलना आदि भी आप जानती हैं। कई देशोंका आप भ्रमण कर चुकी हैं। गत २२ फरवरीको आपने भारतीय पत्र-प्रतिनिधियोंसे भेंट की और उनके प्रश्नोंका अपनी सेक्रेटरी कुमारी पॉली थाम्पसनके द्वारा उत्तर दिया। अपनी भारत-यात्रापर खुशी जाहिर करते हुए आपने नेहरूजीसे हुई भेंटका आश्चर्य-जनक वर्णन किया और कहा कि उनकी महानतासे आप प्रभावित हुई हैं। उनके उन्नत ललाटसे आपने उनकी महत्ता और उदारताका परिचय पाया और उनसे हुई कविता (और भगवद्गीता)-सम्बन्धी बातचीतका उल्लेख किया। फिर आपने ताजमहल देखनेकी उत्कट इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि 'यदि मैं ताज न देखूँगी, तो दुनियाके अन्धे बड़े निराश होंगे।' यह पूछे जानेपर कि दृष्टि और श्रवण-शक्तिमेंसे आप किसे वापस पाना चाहेंगी, आपने कहा— "मैं चाहूँगी कि मेरी श्रवण शक्ति ही लौटे, क्योंकि सुनकर आदमी अपनी कल्पनाके अनुसार ही अपने लिए दुनियाका चित्र बना सकता है। अभी तो मैं ज्यादातर गन्धसे ही व्यक्तियों और देशोंका अनुमान कर सकती हूँ। अगर लोग झिझकें नहीं, तो मैं उनके होठोंके पास हाथ रखकर ही उन्हें और उनकी बातोंको समझ सकती हूँ।' एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें आपने कहा कि "कभी-कभी मैं बड़ी उदास हो जाती थी, पर धीरे धीरे मैंने अपने-आपको सँभाला। मेरा खयाल है कि आत्म-ग्लानिसे बढ़कर अन्धोंका कोई और दुश्मन नहीं।' शीघ्र ही आप मसूरीमें भारतीय अन्धोंके सम्बन्धमें होनेवाले एक सम्मेलनमें शामिल होने जा रही हैं। इसके बाद ही आप भारतीय अन्धोंके शिक्षण के सम्बन्धमें कुछ कहेंगी।

सिबिल थार्नडाइक और लुई कैसन

अपनी दिल्ली, बम्बई और मद्रासकी यात्राओंके बाद पिछले दिनों ब्रिटेनके ख्यातनाम अभिनेता सिबिल थार्न-डाइक और उनके पति सर लुई कैसन कलकत्ता आए। यहाँ न्यू एम्पायरमें आपने ब्रिटेनके प्राचीन लोकगीतों और कविताओंका पाठ किया और शेक्सपियरके दो-तीन नाटकोंके कुछ अंशोंका अभिनय भी। यहाँ इस तरहके काफी अच्छे आयोजन प्राय होते रहते हैं ; पर जिन्होंने इन दोनोंका पाठ सुना और अभिनय देखा, वे मान गए कि कई वर्षोंमें ऐसा सुन्दर, सजीव और गम्भीर अभिनय एवं पाठ देखने-

सुननेको नही मिले। हेनरी अष्टममें कैसनका हेनरी और सिविलका कैंथराइनका अभिनय बडे ही आकर्षक और स्वाभाविक रहे। इसी प्रकार यूरीपिडकी 'मीडिया' और क्लेमेंस डेनके ' दि लायन एड दि कैप्रीकार्न' मे एलिज-बैथका भाषण और बरनार्ड शाके 'सन्त जोन' के कुछ अशो का अभिनय आश्चर्यजनक थे। १४वी और १५वी शताब्दी के ब्रिटेनके कुछ लोकगीतो, लोरियो और कविताओकी आवृत्ति भी बडी सुन्दर थी। सर लुईने १९वी शताब्दीका एक फ्रासीसी लोक गीत बडे ही स्वाभाविक ढगसे गाया। दोनो ही काफी वृद्ध हो चले है, पर दोनोंके स्वर, चेहरेके हाव-भाव और गतिमें जैसे कोई बडा अन्तर नही आया है।

कनाडा और हगेरीकी कला

कलाकी भाषा भूगोल, राजनीति और वादोके भेदोकी सीमाओको पारकर विश्व-मानवताके हृदयकी अभिव्यक्ति करती है। पिछले दिनो कलकत्तेमें हुई कनाडियन चित्रो और हगेरियन लोककलाकी प्रदर्शनियां देखकर हमे लगा मानो हम कोई परिचित विषय और भाषाको पढ रहे है। कनाडाका भारतसे कम परिचय है। पर उसकी कला-कृतियोको देखकर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे भारत, ब्रिटिश, फ्रेंच, अमरीका आदिसे कुछ विशिष्ट है। बडी-बडी नदियो, उपजाऊ मैदानो, घने जगलो, बिल्कुल सूने और उजाड बर्फीले पठारोका देश होनेके कारण उसकी कलापर भी इनका गहरा असर पडा है। डेविड मिल्नके 'कटूर्स एड एल्म ट्रीज़' तथा लारेन हेरिसके 'नार्थ-शोर बेफिन आइलैण्ड'-जैसे रोरिकके चित्रोकी याद दिलाते है। हेनरी मेसनकी 'स्टिल लाइफ'और मैकडोनल्डका 'सी-शोर', लिस्मरका 'क्यूबेक अपलैण्ड्स, ', गुडरिच राबर्टका 'लेक आक्सफोर्ड' बडे सजीव चित्र है। भारत और हगेरी दोनो ही कृषि-प्रधान देश है, अत दोनोकी लोककलाओमे भी अद्भुत साम्य है। वहांके वस्त्रोकी बुनाई और रगोका कलामय सामजस्य वहांकी रगीन सस्कृतिके परिचायक है। मिट्टीके बर्तनोके प्रकार और सजावट भी सुन्दर थी। साथमें कुछ ऐसे फोटो भी थे, जिनमें लोगोको काम करते हुए दिखाया गया है।

अवनी बाबूके चित्र

पिछले दिनों कलकत्तेमे शिल्पी-गुरु स्व० अवनीन्द्रनाथ ठाकुरके १९४३-४६में बनाए गए ६७ चित्रोंकी प्रदर्शनीका

से यह सिद्ध कर गए है कि
डा० सुनीतिकुमार चाटु
की आधुनिक कलाके
स्वय एक बहुत बडी घटना
नदलाल बसुका भारतीय
भारतीय साहित्य-क्षेत्रमे
उनके चित्रोंके बारेमें किसीने
वास्तवमें उनके सम्बन्धमे
भी नही है। उनके चित्रोमें
प्रेरणा और बँगला-सस्कृतिको
ही गहरी मानवीय
सौन्दर्यानुभूतिकी अन्तर्दृष्टि
बहुतोमें अवनी बाबूके १९
उठाव बरकरार है, वहाँ चतुर्थ
दर्शन होते है। किसी-
रागिनियोके चित्रोका
पर आजकी कला-फैशनके रूप
और सतोषकी बात नही।

भारतीय लो

प्रजातत्र-दिवसके दिन न
भारतीय लोकनृत्योका
के विभिन्न प्रान्तो, उनके f
जातियोके नृत्योमें जहां
एकसूत्रता भी। यद्यपि स
प्रदेशके दलको उसके 'मारिया
मणिपुर, हिमाचल-प्रदेश तथा
अन्यान्य प्रदेशोके नाच भी कम
उदाहरणके लिए हैदराबादके
सौराष्ट्रका 'आठग', ट्रावनकोर
बुन्देलखडका 'अहीर', विन्ध्य-
का 'शापदोह', उडीसाका '
स्थानका 'वणजारा',
'कुरवजी', बम्बईका 'सिह',
का 'थावल चोगवा',
पेप्सू, पजाब, हिमाचल-प्रदेश
देखकर तो जैसे आंखोपर
लोककला आज भी इतनी

दक्षिण-अफ्रीकामें १० हजार कालोंका निर्यातन

कई रूमानियन दूतावासोंमें गड़बड़ी : रूसमें चीनी मजदूर

उत्तरी अफ्रीकामें फ्रांसके जुल्म : सुदूर और मध्य-पूर्वमें सुरक्षाकी तैयारियाँ

गत २३ फरवरीको बेंकाकमें आरम्भ हुई दक्षिण-पूर्वी एशियाई कान्फ्रेंसमें अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, फिलिपीन, थाईलैण्ड और पाकिस्तानके प्रतिनिधियोंने इस क्षेत्रमें शांति बनाए रखने, जनतन्त्र और व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा न्याय-कानूनके शासनके सिद्धान्तकी रक्षा करने, अर्थनैतिक उन्नति करने, रक्षात्मक सहयोग देने और कम्युनिज्मका प्रभाव-विस्तार रोकनेके लिए कुछ व्यावहारिक कदम उठानेका निश्चय किया है। ब्रिटिश विदेश-मंत्री सर एण्टनी ईडनके शब्दोंमें कान्फ्रेंसका मुख्य कार्य सदस्य राष्ट्रोंके सहयोगको अधिकाधिक प्रभावपूर्ण बनाना है। अमरीकी राज्य-सचिव डलेसने कहा कि अमरीकाका यह विश्वास है कि यदि इस समय फारमोसा और दक्षिण-कोरिया के नेतृत्वमें परिवर्त्तन होता है, तो उससे सुदूर-पूर्वमें अशांति के बढ़नेमें ही सहायता मिलेगी। आस्ट्रेलियाके विदेश-मंत्री केसीने कहा कि एशियाके गैर-कम्युनिस्ट देशोंमें कम्युनिस्ट अंत:प्रवेशकी जो जबरदस्त तैयारी कर रहे हैं, उसका अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से मुकाबला करना चाहिए। पाक-प्रधान मंत्री मोहम्मदअलीने कहा—"दक्षिण-पूर्वी एशियाके लोगोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि पश्चिमके जो राष्ट्र इस संधिमें शामिल हुए हैं, वे समानता और जनताके आत्म-निर्णयके सिद्धान्तके आधारपर ही। इसलिए यह कहना सच नहीं है कि इससे एशियामें उन्होंने अपना एक प्रभाव-क्षेत्र बनाया है।" यदि मोहम्मदअलीके इस कथनमें सचाई है, तो यह समझना आसान नहीं कि आज मलाया और ब्रिटेन में, न्यूजीलैण्ड, फिलिपिन और अमरीकामें कैसी समानता है और ब्रिटेन तथा फ्रांसका एशियामें क्या स्वार्थ है, जो वे इसकी सुरक्षा और शान्तिके लिए इतने चिन्तित हैं ?

मध्य-पूर्वमें सुरक्षा समझौता

जिस समय बेंकाकमें सुदूर-पूर्वकी सुरक्षाके लिए चर्चा हो रही है, तुर्कीके राष्ट्रपति बायर कराचीमें मध्य-पूर्वकी सुरक्षाके सम्बन्धमें एक समझौतेकी बातचीतको आगे बढ़ा रहे हैं। पता चला है कि तुर्की, पाकिस्तान, इराक, सीरिया, लेबान आदि इसमें शामिल हो गए हैं, जुआर्डन और यमन के शीघ्र शामिल होनेकी आशा है तथा मिस्र, सऊदी अरब और ईरानको भी इसमें शामिल करनेकी चेष्टा की जा रही है। मिस्र इसके खिलाफ है और उसने इस सम्बन्धमें इराक तथा तुर्कीको भी सतर्क किया है। पिछले महीने लंदनसे लौटते हुए मिस्रके प्रधान मंत्री कर्नल नसरकी नेहरूजी से बातें हुईं, उनमें अवश्य ही इस विषयपर भी प्रकाश डाला गया होगा। मिस्रकी प्रधान आपत्ति यह है कि चूंकि तुर्की उत्तरी-अतलांतिक संधिका सदस्य है और उसके इस प्रयत्नके पीछे अमरीकाका हाथ है, अत: इस प्रकारका समझौता आगे चलकर अरब-राष्ट्रोंकी अपेक्षा यूरोप-अमरीकाके हितोंकी ही अधिक रक्षा करेगा। यही बात इससे सम्बद्ध पाकिस्तान के बारेमें भी लागू है, जो कि दक्षिण-पूर्वी एशियाई संघका सदस्य है। मिस्र मध्य-पूर्वके देशोंका एक ऐसा संगठन चाहता है, जो कम्युनिस्ट और कम्युनिस्ट-विरोधी दोनों गुटोंके प्रभावसे मुक्त हो।

उत्तरी अफ्रीकामें फ्रांसके जुल्म

कहनेके लिए मेंडीज-फ्रान्स जब फ्रांसके प्रधान मंत्री बने, तो उनकी प्रगतिशीलताके बड़े ढोल पीटे गए। पर ज्यों ही उन्होंने हिन्दचीनमें फ्रांसके फिसलते हुए पाँवोंको बचानेके बाद जब उत्तरी-अफ्रीकामें चलनेवाली उसकी निर्मम साम्राज्यवादी नीतिमें कुछ सुधार करना चाहा, तो उन्हें हटना पड़ा। गत ५ फरवरीको २३३ दिनके प्रधान मंत्रित्वके बाद आपकी उत्तरी अफ्रीका-सम्बन्धी नीतिके विरोधमें पास किया गया अविश्वास-प्रस्ताव २७३के विरुद्ध ३१९ मतोंसे पास हो गया। लोगोंने आपको 'फैसिस्ट' तक कहा, जिसके जवाबमें आपने भविष्यवाणी की कि 'घृणाके तूफानमें शीघ्र ही उत्तरी अफ्रीकामें फ्रांसका साम्राज्य-वादी महल ढह जायगा।' उत्तरी अफ्रीकनोंसे जेलोंको भरनेके आरोपका उत्तर देते हुए आपने कहा—"मेरे शासन-भार सँभालनेसे पहले भूतपूर्व शासनने अकेले ट्यूनीसियामें ५००० राजबंदी जेलोंमें भर रखे थे, जिनके स्थानमें अब वहाँ केवल कुछ सौ साधारण बंदी हैं। मोरक्कोकी जेलों में तो ऐसे राजबंदी—और बच्चे तक—थे, जिनपर ३-४ वर्ष बीतनेपर भी कोई मुकदमा नहीं चलाया गया था। वहाँ तो इससे भी गम्भीर बातें हुई हैं, जिन्हें मैं सार्वजनिक रूपमें कहना नहीं चाहता। मैंने न सिर्फ जेलें ही खाली कीं, बल्कि पुलिसकी ज्यादतियोंको भी बन्द किया और कई अफसरोंका तबादला भी किया।"

सभ्यता, संस्कृति, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और जनतंत्रके ठेकेदार गोरे तथाकथित कालोंको किस प्रकार सभ्य बना रहे हैं, इस कथनसे उसका कुछ आभास मिलता है।

दक्षिण-अफ्रीकामें कालोंका निर्यातन

पर दक्षिण-अफ्रीकाके उद्धत एवं असभ्य गोरे वहाँके कालोंके साथ जैसा अमानुषिक बर्त्ताव करते हैं, उसके सामने फासकी जुल्म-ज्यादतियाँ भी फीकी लगने लगती हैं। अभी कुछ दिन पहले उसके गोरे फैसिस्ट शासनने फरमान जारी किया कि पश्चिमी जोहानीसबर्गसे ६००० कालोंको जबरदस्ती निकालकर नगरके बाहर भी मीडोलैण्डस्‌मे बसाया जाय। तदनुसार गत ९ फरवरीको मूसलाधार बरसते पानीमे १५० काले परिवारोंको ३००० सशस्त्र गोरी पुलिस और फौजकी 'देख-रेख'में उनके घरोंसे ज़बरदस्ती घसीट-घसीटकर फौजी लारियोंमे बैठाया गया, उन्हींपर उनका सामान फेंका गया और उन्हें शहरके बाहर ले जाकर मीडोलैण्डस्‌में छोड दिया गया। उनके मकान नष्ट कर दिए गए हैं। किसी भी सार्वजनिक क्षेत्रमें १२ व्यक्तियोंसे अधिकका मिलना रोक दिया गया है और प्रमुख कार्यकर्त्ताओंको कहीं जाने या बोलनेसे बरज दिया गया। गत १३ फरवरीको इस सम्बन्धमें जोहानीसबर्गके एंग्लीकन बिशप डा० एम्ब्रोस रीव्जने कहा है—"पश्चिमी जोहानीसबर्गसे ६००० कालोंको जबरदस्ती हटाए जानेके इस शर्मनाक कुकृत्यका हमें विरोध करना चाहिए। जिस क्षेत्रसे उन्हें हटाया जा रहा है, वह बहुत ही गंदा और अनुन्नत है। उनकी अन्य बस्तियोंकी हालत तो इससे भी कहीं बदतर है। फिर हटानेके बाद जिस बेरहमीसे उनके मकानोंको नष्ट किया जा रहा है, वैसे पागलपनके काम तो अफ्रीकामे कम ही हुए होंगे। वर्ण भेदकी दुर्नीतिका मानवीय जीवनमें क्या व्यावहारिक अर्थ है, वह इस काण्डसे स्पष्ट है। सरकार अक्सर कालोंपर उत्तेजना फैलानेका दोषारोपण करती है। पर इसके लिए ज़िम्मेदार कौन है? जोहानीसबर्गके पश्चिमी इलाकेमे सरकार जो-कुछ कर रही है, उससे तो बड़े ही खतरनाक ढगकी उत्तेजना फैल रही है।" कुल १० हज़ारके लगभग लोगोंको इस प्रकार हटाया जा रहा है। गोरोंकी यह ज्यादती १८३६-४०म केपमें हुए ऐसे ही काण्डकी याद ताज़ा कर देती है, जबकि गोरोंकी जुल्म-ज्यादतियोंसे परेशान होकर लगभग ७००० अफ्रीकनो को ओरेंज नदीके पार चला जाना पड़ा था। आज ११५

रूसमें चीन

बम्बईके 'फ्रीडम फर्स्ट'
संवाद-समितिकी एक खबर
जिसमें बतलाया गया है कि
लगभग ५० लाख चीनी
स्थानोंमें काम करनेके लिए
है कि चीनने रूसमें बननेवाले
बेरियाकी कोयले और
चीनी कुली देना भी स्वीकार
यता अथवा बगावतकी
की बडी-बडी आबादियोंको
रूसमे इस समय जन-शक्ति
यह बताया गया है कि काफी
कस्तान और अल्ताईकी
भेज दिया गया है। पिछले
के प्रधान मत्री क्रूश्चेवने
आबादीमें १०-२० करोड़की
नहीं होगी।' यह
दरअसल रूसमें जन-शक्तिकी
को चालू करनेके लिए ही उ

रूमानियाकी

गत १५ फरवरीको
स्विस-सरकारसे शिकायत की
दूतावासपर कम्युनिस्ट-विरोधी
उससे उत्पन्न गभीर स्थितिके
करे और आक्रमणकारियोंको
करे। घटना यह बताई
रूमानियाके कम्युनिस्ट-
गोलियाँ चलाते हुए उसके
रूमानियन राजदूतसे माँग की
आल्दाऔर लज़ार आदि उनके
मे गिरफ्तार किया गया था,
कुछने बादमें आत्म-समर्पण कर
और कोपेनहेगेन (डेन्मार्क)
उसके आततायी शासनके
हेगनमें तो रूमानियन दूतावास
ने अपनी स्त्री सहित राज
डेनिश-अधिकारियोंने जोनको
पर उसकी स्त्री मारिया सिम्पू
मुँहसे रूमानियन अधिकारिय
(अपने पति) का मुँह भी नही
पहले पता चल जाता कि वह

स्तालिनके उत्तराधिकारीका पतन

जिस आकस्मिकतासे ज्योर्जी मलेनकोवको स्तालिनने अपना उत्तराधिकारी बनाया था उसी आकस्मिकताके साथ उनका पतन भी हुआ। गत ८ फरवरीको सुप्रीम सोवियतके सामने अपना इस्तीफा पेश करते हुए उसने अपनी स्थानीय परिस्थितियोंकी अनुभवहीनता और कृषिकी असंतोषजनक स्थितिके लिए अपना अपराध और जिम्मेदारी की निःसंकोच स्वीकारोक्ति की जिसे पढ़कर हमें आर्थर कोस्लरके डार्कनेस एट नून की याद हो आई जिसमें लिखा है कि कभी कभी पार्टीके प्रति अपनी वफादारीके अंतिम सबूतके रूपमें कम्युनिस्ट दूसरोंकी गलतियोंको भी अपने अपराधके रूपमें स्वीकार कर लेते हैं। जो व्यक्ति शायद ही युद्ध-कालमें स्तालिनका दाहिना हाथ और युद्धोत्तर योजनाओंका सह-संचालक रहा था जिसपर स्तालिनकी मृत्युके बाद पूरे २३ मास तक देशके शासन और पार्टीकी

मलेनकोवकी जनताको अधिक उपभोक्ता वस्तुएँ सुलभ करने, सामूहिक खेतिहरोंको कुछ और छूट देने, अधिक मकानोंकी व्यवस्था करने, छोटे उद्योग धंधोंको प्रोत्साहन देने आदिकी नरम नीति रूसकी सुरक्षाके लिए घातक है क्योंकि इससे पश्चिमी राष्ट्र रूसको कमजोर समझने लगे हैं। पूर्वी यूरोपके रूस अधिकृत देशोंमें हुए अशान्ति और पूर्वी जर्मनीमें हुए उग्र विद्रोह तथा देशमें कृषि और उद्योग धंधोंकी निरन्तर अवनतिने गुटको बहुत बड़ा मौका दिया और मलेनकोव-नीतिके खिलाफ प्रावदा, इज्वेस्तिया, गास्प्लान (योजना समिति) तथा मास्को स्थित विश्वविद्यालय आदिमें धुआँधार प्रचार शुरू हुआ। इन सब स्थानोंपर नौकरशाही कर पहले मलेनकोव-नीतिके समर्थक उद्योग मंत्री मिकोयनसे इस्तीफा दिला दिया गया और फिर मास्कोमें १९५ से तक लागू होनेवाले ५ वर्षीय योजनाको मलेनकोव-नीतिके खिलाफ भारी उद्योगोंकी उन्नतिके आधारपर ही तैयार

मलंकोवके इस्तीफेके दूसरे ही दिन चीनने अनिवार्य सैनिक सेवाकी डिक्री जारी कर दी और गत १५ फरवरीको पीकिंग मे रूस-चीन-मैत्री-संधिकी पाँचवी वर्षगाँठपर हुए समारोहमें बोलते हुए माओत्से-तुगने कहा—"रूस और चीन साम्राज्य-वादियोंको दुनियासे मिटा देगे अगर उन्होने आक्रमणात्मक युद्ध शुरू किया।" इसी अवसरपर बोलते हुए चाऊ-एन-लाईने अमरीकाके आक्रमणात्मक तबकों द्वारा फारमोसा-क्षेत्रमे आक्रमण और युद्धकी उत्तेजना फैलानेका आरोप करते हुए कहा—"शान्ति और प्रगतिके दुश्मन नई लडाई की आग भडकानेकी चेष्टा कर रहे है।" युद्धकी जो तैयारी रूस और चीन कर रहे है, जिस भाषाका प्रयोग दोनो देशोंके रेडियो, पत्र और राजनेता कर रहे है, उससे स्पष्ट है कि आजकी दुनियामे शीत युद्ध, पूर्व-पश्चिमकी तनातनी और युद्धका वातावरण बनने और बढनेमे मदद *मिल रही है या शान्ति-समझौतेकी दिशामे प्रगति हो रही है।* फिर मास्को और पीकिंग तो अमरीकाको फारमोसामे आक्रमणकारी घोषित कर ही चुके हैं। इसको जिस क्षण भी रूस-चीन चाहे, साम्राज्यवादियोको दुनियासे मिटानेके लिए सहज ही युद्ध छेडनेका बहाना बना सकते है। इस तरहके युद्धके हिस्टीरियासे भरी बकवाससे यदि गैर-कम्यु-निस्ट क्षेत्रोमें यह धारणा बने कि सिर्फ चीन और रूस ही शान्ति चाहते है और अमरीका (तथा ब्रिटेन और अन्य पश्चिमी राष्ट्र भी) युद्ध, तो कोई आश्चर्य नही। यदि ऐसा होता, तो च्याग और अमरीकाके अनेक रिपब्लिकनोंके कहनेके बावजूद वह फारमोसा और पस्काडेरेसके सिवा अन्य द्वीपोकी रक्षाके लिए इन्कार न करता। उसने तटीय द्वीपोको शान्तिपूर्वक खाली करवानेमें ही सहायता की है। यदि वह लडना ही चाहता, तो बिना लडे कई द्वीप कम्युनिस्ट चीनको भेंट नही कर देता। इससे चीन द्वारा किए गए आक्रमण और बल-प्रयोगकी मूर्खता और अवाछनीयता ही सिद्ध हुई है। पर चीनके राजनेताओंने इसे फारमोसाकी मुक्तिके अभियानकी विजय बतलाकर उसे जारी रखनेकी ओर ही इगित किया है।

भारतकी विशेष स्थिति

पिछले एक महीनेसे विशेष रूपसे रूस और चीनके पत्र, रेडियो और राजनेता घृणा, कटुता, वैमनस्य, असत्य और गलतबयानीका जो धुँआधार प्रोपेगेंडा कर रहे है, वह कभी भी

मनवाना चाहता है, यही कभी भी विचार या है स्वार्थके लिए। फारमो महत्वपूर्ण है, रूस-चीनके ही अमरीका भी उसे अप अब यदि इसका निर्णय इन तो दोनोमें दोनोके बारेमें उसे देखते हुए युद्ध अनिवार्य लिए तैयार हैं, तो किसने किया तथा किसने बौद्धिक या शाब्दिक बहस-लडाकू तथा गैर-लडाकू एक बार छिड जानेपर युद्ध न रहकर विश्व-युद्धका रूप सदेह नही। *अत. समय* चाहिए। गत मास लदनमे ने इस दिशामें चिन्ता तो उठानेकी तरफ इगित नही तबकोंकी निगाह आज भारत नेहरूजी—पर लगी है। महीने हुई ब्रिटिश समस्याको शान्तिपूर्वक अमरीकाको ब्रिटेन और समझानेकी चेष्टा तो कर ह और उद्‌जन-बमोंके युद्धसे किया है और कडी भाषाका पूर्ण समझौतेका रास्ता पर इस सम्बन्धमे शीघ्र ही कम्युनिस्टोके अब तकके रुख-पूर्वक तो कुछ नही कहा नेहरूजी भी कदम उठानेमें समय रहते आसन्न चाहिए। नेहरूजी और जिम्मेदारी है।

समझौतेके मार्गकी

यद्यपि दोनो पक्ष मुँहसे तो कहते है, पर दोनोका

नहीं है; दूसरे उसमें च्यागके प्रतिनिधिके साथ बैठनेका अर्थ होता फारमोसापर च्यागका कब्जा मान लेना। अब जब हिन्दचीनके सम्बन्धमें संयुक्त राष्ट्रसंघसे बाहर जेनेवामें हुई कान्फ्रेंसके ढंगकी कान्फ्रेंस इस सम्बन्धमें भी करनेकी चर्चा उठी है, तब भी चीनने उसमें च्यागके प्रतिनिधिके शामिल न किए जानेपर जोर दिया है और अमरीकाका कहना है कि बिना च्यागके प्रतिनिधिके समझौता दोनों पक्षोंमें कैसे होगा? समझौतेकी भावनाके बजाय इस इसरारमें चीनकी यह राजनीतिक चाल है कि इस कान्फ्रेंसमें राष्ट्रीय चीनका प्रतिनिधित्व न होनेसे दुनियाकी निगाहमें फारमोसापर च्यागका अधिकार नहीं रहेगा, अमरीकाका उसपर सशस्त्र कब्जा साबित हो जायगा और इस प्रकार बिना लड़े ही फारमोसापर उसका अधिकार मान्य हो जायगा। यह बात तो बड़ी दूरदर्शिताकी है, पर है केवल एकपक्षीय ही। चीनवाले पता नहीं क्यों, यह नहीं सोचते कि इस जालमें च्याग और अमरीका फँसेंगे नहीं और चीनकी यह जिद समझौतेका रास्ता रोककर युद्धोत्तेजना बढ़ानेमें ही सहायक होगी। नेहरूजीने कहीं भी यह नहीं कहा है कि इस कान्फ्रेंसमें च्यागका प्रतिनिधि शामिल हो ही, केवल कान्फ्रेंसके प्रस्ताव-भरका समर्थन किया है। पर इसीपर रूसके मुख और गलतबयानीके प्रसिद्ध मुखपत्र 'प्रावदा'ने अपने गत १६ फरवरीके अंकमें लिख मारा है कि 'मि० नेहरूने शायद सर विन्स्टन चर्चिलसे प्रभावित होकर ही फारमोसाके सम्बन्धमें होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसमें राष्ट्रीय चीनके प्रतिनिधित्वके अधिकारका समर्थन किया है।' इसके खंडनमें गत १७ फरवरीको पालम (नई दिल्ली) के हवाई-अड्डेपर पत्र-प्रतिनिधियोंसे बात करते हुए नेहरूजीने कहा—"मैंने कभी भी इस बातपर जोर नहीं दिया है कि प्रस्तावित कान्फ्रेंसमें कौन उपस्थित हो या कौन न हो। मैंने तो महज यही कहा है कि इस मसलेपर शान्तिपूर्ण ढंगसे गौर करनेका रास्ता निकाला जाना चाहिए। और मेरे खयालमें बाकायदा ढंगसे गौर करनेके बजाय अनौपचारिक ढंगसे इस तरहकी कान्फ्रेंस बुलाना ज्यादा फायदेमंद साबित होगा।" 'प्रावदा'का मन तो रूस-चीनमें खूब प्रचारित हुआ ही है, पर नेहरूजीका प्रतिवाद शायद वहाँ नहीं पहुँचा होगा। इस दृष्टिसे रूस-चीनकी जनताको भारत तकके सम्बन्धमें जो भ्रान्त किया जा रहा है, वह क्या शान्ति-स्थापना और युद्ध टालनेके लिए ही? चीनका इस बातपर जोर देना कि चूँकि फारमोसा-अभियान चीनके गृह-युद्धका ही जारी रहना है, अतः इस सम्बन्धमें विराम-संधि करने या च्यागके प्रतिनिधिसे बात करनेके लिए वह तैयार नहीं, समझौतेके मार्गकी सबसे बड़ी कठिनाई और उसकी रीति-नीतिके खिलाफ भी है। क्या १९४८में याग्त्सी नदी पार करनेसे पहले, जबकि माओत्से-तुंगकी शक्ति और सफलता असंदिग्ध थी, माओने कुओमिन्तांगसे क्षणिक सन्धिकी बातचीत नहीं की थी? उनसे पहले तो कई बार ऐसी बातचीत हुई है। फिर अगर उसकी यही जिद है कि उसकी बातको ही सब राष्ट्र शिरोधार्य कर लें, तो यह सम्भव कम दिखाई पड़ता है और इसके पीछे समझौते या शान्तिकी अपेक्षा बल-प्रयोग और युद्धकी प्रवृत्ति ही स्पष्ट दिखाई पड़ती है। चीनको यह भूल नहीं जाना चाहिए कि अपनी मौजूदा हवाई और नौशक्तिसे तो अभी कम-से-कम १० वर्ष तक वह उसके और फारमोसाके बीच जो १००-१५० मील चौड़ा समुद्र है, उसपर नियन्त्रण नहीं कर सकेगा। तब शांति और समझौतेका मार्ग अपनानेमें यह अनिच्छा और आना-कानी क्यों?

रूस और चीनकी फौजी तैयारी

यह अब सबपर जाहिर हो चुका है कि पिछले अक्तूबरमें जो क्रूश्चेव और बुल्गानिन चीन गए थे, वहाँ उन्होंने १९५५-६०में छठी पंचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत रूस जो युद्धोद्योगीकी नीति अपनाने जा रहा है, उसमें चीन क्या सहायता देगा और रूस उसकी क्या सहायता कर सकेगा, इस सम्बन्धमें कुछ बातें तय हुई हैं। 'टाइम्स'के संवाददाताका कहना है कि इस अवसरपर चीनके नेताओंने यह स्पष्ट कहा कि उन्हें कम्युनिज्मकी ओर बढ़नेके लिए उद्योगीकरण और सामूहिक खेतोंकी जो व्यवस्था करनी होगी, उसके लिए रूस अथवा उसके अधिकृत पूर्वी यूरोपके देशोंसे उसे धन और आवश्यक सामग्री मिलनी चाहिएँ। बादमें चाऊने अपने एक भाषणमें स्वीकार भी किया है कि रूस चीनको सब तरहकी 'सात्विक मदद' भाईचारेके ढंगपर दे रहा है। १९५०-५४ तक रूस चीनको २२,३०० लाख रूपयेके लगभग कर्ज दे चुका है। ५० हजार एकड़के स्टेट फार्मके लिए आवश्यक यन्त्र तो वह उसे भेंट रूपमें ही दे चुका है। सोडाके तथा अन्यान्य उद्योगोंके लिए इसी तरह न जाने कितनी चीजें वह भेंट कर चुका है। फिर रूस और उसके अधिकृत पूर्वी यूरोपके अन्यान्य देशोंसे हुए व्यापारिक लेन-देनके 'समझौते' तो अलग हैं ही। चीनमें अनिवार्य सैनिक सेवाकी घोषणा हो चुकी है। इस प्रकार पैसिफिक सागरके किनारे तक जो लाल साम्राज्य फैला है वह धीरे धीरे और गुप्त रूपसे एक बहुत बड़ा युद्ध-कैम्प बन रहा है। लार्ड इस्मेने ३० जनवरीको पेरिसमें कहा था कि ६० लाख सैनिक तो रूसने केवल पूर्वी यूरोपमें तैयार किए हैं।

१९४७ तक उसके पास १७५ डिवीज़न थ और पूर्वी यूरोपके अधिकृत देशोंके केवल ८० ही। पर आज वह ३० दिनो के भीतर ४०० डिवीज़न तैयार कर सकता है। गत ३ वर्षोंम उसके विमानो आर विमान-वधी तोपोकी सख्या तिगुनी हुई है। आणविक और रासायनिक युद्धास्त्राम भी उसन अभूतपूर्व उनति की है। जिन्ह आज इसमेके इस कथनपर विश्वास न हो वे गत २१ फरवरीको मास्कोसे प्रचारित (और बादम सभी रूसी पत्रोंम प्रकाशित) जनरल ब्लाडीमिर कुरसोवकी उस फौजी विज्ञप्तिको पढ दख जिसम कहा गया है कि अमरीकी सनाकी तोपो आर टको के मुकाबलेम रूसके पास कही श्रेष्ठ तोप आर टक ह। मार करनकी दूरी और गोलाबारीकी शक्तिम भी य अमरीकी पद्धतिसे कही बहतर ह। दूसरे महायुद्धके बादसे बढी रूसकी फौजी शक्तिका वणन करनके बाद कहा गया है— आम तौरसे यह माना जाता है कि इन रूसी टकोम लडन की जो क्षमता है उसकी कोई बराबरी नही कर सकता। इसी प्रकार युद्धोत्तर वर्षोंम हमारी हवाई शक्ति भी काफी बढी है। उनके हथियाराम आधुनिक जट चालित यत्र ह जिनकी गति और ऊचाईकी सीमाम भी वद्धि हुई है। हमारी गौरवमयी नासेना भी समद्रकी सतहपर और भीतर-भीतर चलनवाले नए ढगके जहाजो नए हथियारो औजारो तथा सिपाहियोंकी सुदक्ष शिक्षासे लम्न हुई है। पर जो सफलताएँ हमन प्राप्त की ह उनसे हम सतोष नही है। आणविक और उदजन शक्तिम रूस अमरीकासे कहा आग है यह उसके विदेश मत्री मलोनेफ कह ही चुके ह। और यह सारी तयारी है पश्चिमके साम्राज्यवादी षड्यन्त्रकारियो तथा पूजीवादी लडाईखोरो की चालोको बेकार करनके लिए।

अणु उदजन आर शस्त्रास्त्र

पर कम्युनिस्टोके प्रोपेगडा टकनीककी सचमुच दाद देनी पडगी (यद्यपि दूसरोको धोखा देनकी अपेक्षा वे उनस अवसर स्वय ही धोखम पड जात ह!)। एक ओर तो रूसी साम्राज्य वादी रूस रेडीले साफ त्वापद रूपम लडाईकी पूरी तयारिया कर रहे ह और दूसरा ओर स्वतत्र जनतत्रवादी राष्ट्रोम फूट डालने तथा उन्ह विघटित और गाफिल रखनके लिए नए-नए शोश भी छोडत रहते ह। फारमोसाके प्रश्नको लेकर चीन द्वारा आरम्भ किए गए सशस्त्र आक्रमणके विश्व युद्धका रूप धारण कर लन और उसम अण उ ७

यह स्पष्ट अपनी लडाईको तै फारमोसाको लेकर चीन द्वारा जन साधारणका ध्यान हटान लडबडानेके लिए खला गया ७ पीछ तनिक भी हार्दिकता या जूनम लदनम हुई नि शस्त्र नही करता। जब गत वर्ष कैबिनेट एटलान चाहत अ र रूससे तो प्रावना न अमरीकी चाल थी। तब आज रूसकी बातपर करनीम आकाश पातालका विश्वास करेगा? पर अणु आर शस्त्रास्त्रोकी वृद्धिसे जो के लिए कुछ तो किया ही ७ पहले कदमके रूपम रसेलके इस कि निष्पक्ष राष्ट्रोकी एक स प्रयोगसे होनवाले सभावित और उसका सब देशोकी ज इससे कम से कम लोग इसके सोचग और तब शायद वे अपन इनकी और भावी युद्धको केवल राजनेताओंकी अपीलोंसे

दक्षिण-पूर्वी एशियाई सघ

चीन द्वारा ताचेन-द्वीपपर प्रतिक्रिया यह हुई है कि दर्जि निस्ट देश चीनके भावी इराद उठ ह। थाईलण्डम तो यह आम पर चीनी कम्युनिस्टोकी स० कम्युनिस्टोको आक्रमण (लिए तैयार किया जा रहा है। भी कम सतक नही ह। म पहलेसे ही सतक ह। कदाचित स लाभ उठानेके लिए दक्षिण एक सम्मेलन पिछले दिनो म हुआ जिसम सशस्त्र राष्ट्र विरोधी प्रचेष्टाओको रो का प्रधान कार्यालय रखन तय

'स्थानीय सोवियत' कायम करनेकी अपनी चेष्टामें विफल होनेके बाद उन्होने तूफानी प्रोपेगेंडा द्वारा दक्षिणके इन भागो की गरीबी और शिक्षितोकी बेकारीकी चिनगियोको हवा दे-देकर 'भारतीय येनान' कायम करनेका बीडा उठाया है। काग्रेसी, प्रजा-समाजवादी और अन्य ग़ैर-कम्युनिस्ट इनकी मौखिक आलोचना करके ही इस खतरेकी सभावनाको सफलतापूर्वक नही रोक सकते। इन सबको चाहिए कि अपने व्यक्तिगत और दलगत स्वार्थोसे ऊपर उठकर यहाँ की समस्याओका उचित हल निकालें।

समाजवाद और धाराशास्त्री

और यह प्रश्न केवल दक्षिण ही नही, समूचे देशका है। यह ठीक है कि बाँधो, नहरो, सडको, कल-कारखानो, रेलो, अधिक खेती आदिसे देशमें कुछ खुशहाली आई है , पर केवल इतनेसे ही सतुष्ट होकर गाफिल हो बैठना भी तो अक्लमदी नही है। गत २१ फरवरीको ससदके सम्मिलित अधिवेशन मे बोलते हुए राष्ट्रपतिने कहा—"देशकी अर्थनीतिक स्थिति मे निरन्तर और उल्लेखनीय उन्नति हुई है। पचवर्षीय योजनाके अन्तर्गत निर्धारित कई लक्ष्य तो तीन वर्षोंमें ही पूरे हो गए। १९५३-५४मे हुआ खाद्य-पदार्थोंका उत्पादन तो योजनाके लक्ष्यसे ४४ लाख टन अधिक हुआ है।" नि सदेह इस समृद्धिके चिन्ह देशमें नजर आ रहे हैं। पर विवेक और दूरदर्शिताका तकाजा यह है कि हम उन लक्ष्यो की ओर भी ध्यान दें, जो पचवर्षीय योजनाके तीन वर्ष पूरे होनेके बाद भी लगभग उपेक्षित ही हैं। उदाहरणके लिए स्वास्थ्य और शिक्षा विभागोको ही लें। जिस अबाध गतिसे हमारे देशकी आबादी बढ रही है, उसे रोकनेका यदि कोई प्रभावपूर्ण व्यापक प्रयत्न नही हुआ,तो खाद्यके उत्पादनमें होनेवाली वृद्धि एक दिन बढी हुई आबादीसे पिछड जायगी। इसे रोकनेको परिवार-नियोजनकी जो प्रवृत्ति अपनाई गई है, समस्याकी गभीरताके अनुपातमें उससे इस दिशामें लगभग कुछ नही हो रहा। इसी प्रकार शिक्षित बेकारोकी सख्या बढानेवाली अँगरेज़ोंके समयकी शिक्षा-प्रणाली अभी भी जारी है। ईंट-गारे और लोहे-लकडीके निर्माण-कार्यके साथ ही हमें राष्ट्र-मानवकी इन जडोको भी भूल नही जाना चाहिए। अबतक काग्रेस और केन्द्रीय शासनका लक्ष्य था जन-कल्याणकारी राष्ट्र, जिसमें अवाडी-काँग्रेसके बाद 'समाजवादी ढगकी व्यवस्था' और जुड गया है। राष्ट्रपतिने

लानेमें कहाँ तक धाराशास्त्री
भी देशमें समाजवाद या
धारा-सभाएँ नही बनाती।
उसके मार्गके अवरोधोको दूर
वे जरूर बनाती हैं। हमारे
और राजकीय धारा-स
इस दिशामें क्या-कुछ होता है,
आबादीका ७० प्रतिशत
पर सब धारा-सभाओने
कानून पास किए हैं, उनसे
सुस्पष्ट परिचय नही मिलता
के बारेमें भी कही जा
सुस्पष्ट अर्थनीतिक नीति
इसके बाद उसे कार्यान्वित

समाजवाद-सम्बन्धी आ

पर राष्ट्रपतिका सकेत
की धारा ३१ (ए) में
किया जानेवाला है, ससद
यदि ऐसी बात है, तो दो प्रश्न
मुआवज़ा देकर भूमि अथवा
जनतान्त्रिक उदार सिद्धान्त
वह पूर्णतया सभव नही। अत
समय—जबकि यह बात कही
क्यो की गई? दूसरा प्रश्न
और न्याय्य सशोधनके
जरूरी है? यदि इसके
या सभावना है, तो फिर यह
ससदमें भूखी-नगो जनताकी
प्रतिनिधि ही अधिक हैं, जिन
और समाजवादी कदम उ
का मतलब यह हर्गिज़ नही कि
प्रयोगके द्वारा ही सभव है।
सब साधनोपर समाजका
समानता और न्याय्य वितरण
आरभमें कुछ कायमी स्वार्थ
ढगसे कार्यान्वित करनेके
करें, पर इसके

रहा है। हमारी यदि सत्य, अहिंसा, नैतिकता, जनतन्त्र और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके प्रति तनिक भी आस्था है, तो हम बिना हिंसा और व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी हत्या किए भी समाजवादी व्यवस्थाको विकसित कर सकते हैं। कुछ सदस्यों का ऐसा खयाल जरूर है कि संविधानकी धारा ३१ (ए) में संशोधन करना व्यक्तिकी मौलिक स्वतन्त्रताके अधिकार का हनन करना है। फिर इसमें यह भेद किया गया है कि औद्योगिककी अपेक्षा स्थावर सम्पत्ति ही बिना मुआवजा दिए ली जा सकती है। कहनेके लिए संशोधनमें यह भेद जरूर है, पर हममें से प्रत्येक व्यक्तिको आज एक या मुट्ठी-भर व्यक्तियोंके हितों और अधिकारोंके नहीं, समाजके व्यापक हितकी दृष्टिसे ही सोचना सीखना चाहिए। इस दृष्टिसे धारा ३१ (ए) का संशोधन कोई बहुत बडा और डरानेवाला नहीं है और न ही उसका आशय धारा १ (एच) के द्वारा व्यक्तिको मिले वैयक्तिक स्थावर सम्पत्ति रखनेके अधिकारका अपहरण करना ही है।

पाकिस्तान और भारतके सम्बन्ध

इस बातसे बहुतोको निराशा हुई है कि राष्ट्रपतिके संसदीय भाषणमें भारत-पाक-सम्बन्धोंका कोई उल्लेख नहीं किया गया, जबकि कई ऐसे वैदेशिक और दूरके प्रश्नोका उल्लेख हुआ, जिनमें भारतीय जनताकी अपेक्षाकृत बहुत कम दिलचस्पी है। यद्यपि भारत-पाक-सम्बन्धोंके कोई २०० छोटे-मोटे प्रश्नोंपर विचार करनेको स्टीयरिंग-कमेटीकी मीटिंगमें भाग लेने भारतके जो प्रतिनिधि मार्चके आरम्भ में कराची जानेवाले थे, उनका जाना अभी स्थगित हो गया है, तथापि पाक-गवर्नर-जनरलकी पिछली भारत-यात्रासे दोनोंके सम्बन्धोंमें आशा और उत्साहका जो नया उदय हुआ है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जब-तब इस या उस ओरसे कही गई कटु और कडी बातोंके बावजूद गत जनवरीमें पाक-गवर्नर-जनरल और कई मन्त्रियोंने भारत आकर जिस उदाराशयताका परिचय दिया, सद्भावना और समझौतेकी जो आशा प्रकट की और दोनोंके आपसके झगडों को शान्तिपूर्ण समझौतेके द्वारा सुलझानेकी जो तैयारी दिखाई, उसका स्वागत किया जाना चाहिए। इस दिशामें पाक हाई-कमिश्नर राजा गजनफरअलीने जिस दूरदर्शिता एवं परिश्रमशीलताका परिचय दिया है, वह सराहनीय है। अमृतसर-लाहौर रेल-मार्गका खुलना तथा भारत-पाक जनताके आवागमनमें वृद्धि होना इस बातका द्योतक है कि दोनों ओर अब सद्भाव, विवेक और विश्वास लौट रहे हैं। हम दोनोंका झगडा दो भाइयोंके झगडे-सा है। दोनोंकी भलाई इसीमें है कि विदेशियों द्वारा जलील किए जानेसे पहले ही हम इसे निपटा लें।

वर्ण-भेदका भूत

भीकाभाई पटेल (२७) नामके एक भारतीयको बस-कंडक्टरोकी शिक्षाके लिए रख लिए जानेपर बर्मिंगमके बस-कर्मचारियोंके एक दलने 'काले' आदमीको रखे जानेके विरोधमें काम छोड दिया है। बर्मिंगम ट्रांसपोर्ट कंपनीने इस झगडेमें न पड़नेके खयालसे पश्चिमी ब्रोमविचकी सर्विस ही बन्द कर दी है। हडताल करनेवाले ५०० गोरे कर्मचारियोंका कहना है कि जबतक कमेटी यह आश्वासन नहीं देती कि वह 'काले' आदमियोंको नौकर न रखेगी, वे कामपर नहीं लौटेंगे! भारत स्वतन्त्र है और ब्रिटिश राष्ट्रमंडलका सदस्य भी। अफ्रीका या आस्ट्रेलियामें उसके नागरिकोंके साथ जैसा व्यवहार होता है, उसके लिए ब्रिटेन यह कहकर पिंड छुडा लेता है कि वे स्वतन्त्र देश हैं, अत वह उनके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पर स्वयं उसके घरमें जो यह अन्याय और अमानुषिकता हो रही है, उसके लिए कौन जिम्मेदार है? फिर भीकाभाई कहनेको ही भारतीय है। वह बाकायदा ब्रिटेनका नागरिक है। इस दृष्टिसे भी उसके साथ हुआ व्यवहार ब्रिटेन और उसकी जनतान्त्रिक प्रतिष्ठाके लिए कोई शोभाकी बात नहीं। पर ब्रिटेनमें यह बीमारी कुछ ऐसी व्यापक है कि भीकाभाईका उदाहरण कोई अपवाद नहीं है। गत १४ फरवरीको कार्डिफ (वेल्स)-विश्वविद्यालयके जिन कुछ छात्रोंने एक बेमर-अस्पतालके लिए चंदा जमा किया था, उनमें तीन नीग्रो भी थे। बाद में जब वे सब एक डांस-हालमें गए, तो संचालकने नीग्रो छात्रोंको उसमें नहीं घुसने दिया। गत ५ फरवरीको कवेंट्रीके एक होटलवालेने अपने दो खाली कमरोंमें दो काले आदमियोंको लेनेसे इन्कार कर दिया, जिसके विरोध-स्वरूप दूसरे दिन ५० लिबरलों और भारतीयोंने उसके आगे धरना दिया। यहींके एक दूसरे होटलवालेने भी दो नीग्रो लोगोंको खिलाने-पिलानेसे इन्कार कर दिया, जिसे उसका 'अधिकार' मानकर मजिस्ट्रेटने उसके लाइसेंसकी अवधि फिर बढा दी। यदि कोई गिनने बैठे, तो ऐसे उदाहरणों की संख्या बेशुमार होगी। क्या ब्रिटेनकी सरकार, शासनतन्त्र और जनता इस कलंकको शीघ्र-से-शीघ्र धोनेकी सक्रिय चेष्टा करेंगे?

रेल्वे-बजट

गत २२ फरवरीको लोक-सभामें १९५५-५६ का जो रेल्वे-बजट पेश किया गया है, वो अनेक दृष्टियोंसे गत वर्षके बजटसे अधिक आशाप्रद है। इसमें न सिर्फ आय और व्यय ही गत वर्षकी अपेक्षा अधिक होंगे, बल्कि सुविधाएँ, सेवा,

त्योहारों आदिके वापसी रियायती टिकट, प्लेटफार्म-टिकट का एक आना मूल्य, छात्रों, अध्यापकों, किसानों तथा राष्ट्रीय सेवा-कार्योंसे संबंधित स्वयंसेवकोंको विशेष रियायत, छोटे फासलेके भाड़े और माल ढुलाईकी दरमें कमी आदि कुछ ऐसी सुविधाएँ हैं, जिनसे जन-साधारणको कुछ लाभ पहुँचेगा। ७६ करोड़ रुपए रेलोंका सामान बढ़ानेके लिए रखे गए हैं। यद्यपि भारतीय रेलोंका रूप-रंग कुछ सुधरा है, तीसरे दर्जेके यात्रियोंको कुछ सुविधाएँ भी अधिक मिलने लगी हैं, पर अभी रेलें अपनी वांछनीय आवश्यकता पूरी नहीं कर पा रही हैं। मेल और एक्सप्रेसमें तीसरे दर्जों में जो भीड़ रहती है, वह काफी तकलीफदेह है। उन्नति-कोषमें जो ३६१ लाख रुपए रखे गए हैं, वे कई दृष्टियोंसे अपर्याप्त लगते हैं। पता नहीं किस आधारपर पहली पंचवर्षीय योजनामें रेलोंकी उन्नतिके लिए केवल ४०० करोड़ रुपए ही रखे गए। भारतीय जनताकी स्थिति और पिछले दो वर्षों में जिस तेजीसे रेल-भाड़ेमें वृद्धि हुई है, उसे देखते हुए इस बातका समर्थन नहीं किया जा सकता कि आय बढ़ानेके लिए इसमें तनिक भी और वृद्धि हो। हाँ, अभी भी जो माल सड़क और नदियोंसे जाता है, प्रतियोगी दरोंसे उसे प्राप्तकर तथा मेलों, त्योहारों, छुट्टियों, पहाड़ी स्थानोंकी यात्राओंको अधिकाधिक आकर्षक और रियायती बनाकर आय बढ़ानेकी चेष्टा की जा सकती है।

पश्चिम-बंगालका बजट

अपने आकार, आबादी और आय-व्ययकी विषमताके कारण पश्चिम-बंगाल भारतका समस्या-राज्य है। पिछले दो वर्षोंसे उसकी आय अनुमानसे कम और व्यय अनुमानसे अधिक होनेके कारण उसके बजटके आँकड़े भी बड़े चकरा देनेवाले रहे हैं। गत वर्ष उसमें १२.३२ करोड़ रुपएका घाटा था, जो इस वर्ष १७.१२ करोड़ हो गया है। पंचवर्षीय योजनाके अंतर्गत होनेवाला खर्च ६९.१० करोड़ था, जो यथार्थ में लगभग ७५ करोड़ होगा। १९५५-५६ में कुल आय ४१.६३ करोड़ रुपए होगी और व्यय ६२.८८ करोड़। इस संबंध में मुख्य मंत्री डा० विधानचंद्र रायका कथन है—"यदि राज्य की अर्थनीतिको एकदम छिन्न भिन्न नहीं होने देना है, तो उसमें बहुत अधिक रुपया लगानेकी जरूरत है। केन्द्रीय या राजकीय सरकार और खानगी पूंजीपतियोंसे कोई भी एक यह काम नहीं कर सकता। दोनों सरकारोंको मिलकर राज्यमें ऐसा वातावरण बनाए रखना चाहिए कि अधिका

१०.१ लाख शिक्षित बेकार हैं
वृद्धि होती रहती है; जिस
रही है, दूसरी पंचवर्षीय
लोगोंके लिए लिए म
रुपए आवश्यक होंग।
और अध्यापकोंके वेतन
कारण तो बंगालका ८
राजकीय कार्योंमें घाटा भी
है। उदाहरणार्थ इस वर्ष
१ करोड़ २ लाखका घाटा
पशु-पालन एवं नस्ल-सुधार,
मकान-योजना, वर्ष और
कारी संवहन, वल्घड़ियाका
बिहारका संवहन, रेशम-उत्पाद
कार्य आदिमें इस बार लाभ
सब नहीं कि जितनी बड़ी
हैं, उनके अनुपातमें इसकी ५
कारा केन्द्रीय है। राजकीय
का है, जो जमीन कम होनेसे
से यदि मानभूमका सम्पन्न क्षेत्र
आसपासके स्थानको रूर-क्षेत्रमें
इसकी अर्थनीतिका टिकाऊ
ही नहीं समूचे देशके हितका
गणपति सखाराम राजा०

गत ९ फरवरीको
वहाँके लोकप्रिय जज
५८ वर्षकी आयुमें देहान्त
कैम्ब्रिजमें शिक्षा प्राप्त करनेके
सिविल सर्विसमें भर्ती हुए और
डिप्टी-सेक्रेटरी, धारा-सभाके
आदिके रूपमें काम करनेके ब
के जज नियुक्त हुए। १९४०
पंचायती न्यायालयके सदस्य
१९४६-४७में रेल-विभागोंके
करनेके लिए भी आपको ही नि
समय आप आय-कर-जाँच-समिति
जाँच-समिति आदिके भी सदस्य
के रूपमें आपने जो महत्वपूर्ण